Social Changes As Depicted in the Astrological Texts of Ancient India

[In Hindi]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्. (D. Phill.) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
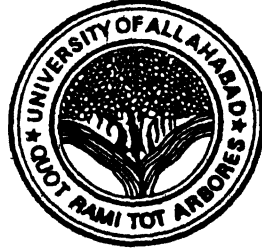
2002–2003

निदेशक
डा० हर्ष कुमार
वरिष्ठ प्रवक्ता
प्राचीन इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

शोधछात्रा
कु० रश्मि श्रीवास्तव
एम० ए०
प्राचीन इतिहास संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद

प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भवानी शंकरौ वन्दे, श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति, सिद्धाः स्वान्ता स्थमिश्वरम् ॥

समर्पण

परम पूज्य समर्थ सद्गुरू देव श्री भवानी शंकर जी
(चच्चा जी महाराज)

को

सादर समर्पित

Rashmi Srivastava
(रश्मि श्रीवास्तव)

विषय सूची

प्राक्कथन

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं समाज का आकलन करने हेतु इतिहास लेखन की आवश्यकता होती है। इतिहास में कोई भी उपलब्धि अन्तिम नहीं होती। ज्ञान क्षितिज के विस्तार के लिए किसी विशेष विषय पर शोध किया जाता हैं जो एक बौद्धिक प्रचेष्टा हैं शोध का अर्थ एक नवीन अविष्कार या अन्वेषण नहीं है, अपितु एक नवीन दृष्टिकोण का प्रस्तुतकीरण भी है। समय-समय पर उत्खनन से प्राप्त सामग्री अभिलेखीय साक्ष्यों तथा इतिहासकारों के अन्वेषणों से इतिहास में प्रगति होती रहती है। अत: शोध की प्रक्रिया सदा प्रवाहमान है।

हमारे शोध का विषय Social changes as depicted in the astrological texts of ancient India एक रूचिकर विषय है। प्राचीन भारतीय इतिहास में होने वाले परिवर्तनों को देखते हुए प्रस्तुत शोधकार्य में ज्योतिष ग्रन्थों धर्मशास्त्रों, पुराणों, स्मृतियों, अभिलेखों, शिलालेखों आदि में वर्णित परिवर्तन का वर्णन किया है। ज्योतिष से सम्बन्धित किसी भी विषय का वर्णन आचार्य वराहमिहिर के ग्रन्थों की सहायता के बिना सम्भव ही नहीं है अत: इस शोध प्रबन्ध की नींव मुख्यत: वराहमिहिर के ग्रन्थों पर ही आधारित है।

मैंने यह शोध कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के "प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग" के प्रवक्ता डा0 हर्ष कुमार के निर्देशन में पूर्ण किया है। अत: मैं इनकी सदैव आभारी रहूँगी, जिन्होंने अपने विद्वतापूर्ण कार्यों में अत्यन्त व्यस्तता से परिपूर्ण दिनचर्या के मध्य शोधकार्य हेतु निर्देशन का समय निकाला। उनके सुस्पष्ट निर्देशन एवं प्रोत्साहन से यह शोध कार्य एक सुस्पष्ट रूप ग्रहण कर सका एवं पूर्णता को प्राप्त हो सका। आदरणीय निर्देशक के मार्गदर्शन के कारण मुझे इस शोध कार्य में किसी भी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ। उनके संरक्षण में मेरा यह कार्य अत्यन्त सरलता एवं शीघ्रता से पूर्ण हुआ है, जिसके लिए मैं सदैव उनकी कृतज्ञ रहूँगी तथा मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य के पूर्ण कराने में प्रो0 बी0एन0एस0 यादव, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, "प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग" की सहृद्यता एवं स्नेहिल आशीर्वाद द्वारा विभिन्न रूपों में मेरी जिस प्रकार सहायता हुई उन्हें शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना सम्भव नहीं है। ज्ञान

के अथाह सागर प्रो0 बी0एन0 एस0 यादव के सम्बन्ध में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। अत: मैं सम्मानपूर्वक उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ।

मैं वर्तमान विभागाध्यक्ष सहित विभाग के समस्त गुरूजनों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनके सतत आशीर्वाद ने इस दुरूह कार्य को पूर्णता की ओर अग्रसर कराने में मुझे अप्रतिम ऊर्जा एवं शक्ति प्रदान की।

मैं अपने पूज्य माता-पिता के प्रति आजीवन ऋणी रहूँगी जिनके असीम स्नेह एवं आशीर्वाद की छत्रछाया में मैं शोध जैसे कठिन कार्य को पूर्ण करने की स्थिति में पहुँच सकी।

मेरे शोधकार्य में मेरे परिवारजनों का आशीर्वाद एवं असीम स्नेह के साथ-साथ पग-पग पर मुझे हर प्रकार का सहयोग एवं मार्गदर्शन मिला उनके इसी सहयोग के द्वारा ही मैं यह कार्य पूर्ण करने में सफल हो सकी हूँ अत: मैं अपने परिवार के सभी बड़ों तथा छोटों का हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

इस शोधकार्य में सर्वाधिक सहयोग मुझे मेरे जीजाजी श्री ओ0पी0श्रीवास्तव तथा भतीजे सद्गुरू पुष्पम् का प्राप्त हुआ। जिनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। अत: मैं इनका हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे इस शोध कार्य में अध्ययन की सामग्री की अनुपलब्धता से जो कमियां एवं त्रुटियां रह गयी हो उनके लिए मैं हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ।

Rashmi Srivastava

शोधछात्रा

रश्मि श्रीवास्तव

प्राचीन इतिहास संस्कृति

एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद

सहायक ग्रन्थों का संक्षिप्त रूप

ABORI	-	Annals of The Bhandarkar Oriental Research ınstıtute, Poona.
AR	-	Asıatic Researches
ASWI	-	Archaeological Survey of South India
BJ	-	Brhajjātaka
BS	-	Bṛahat samihıta
BY	-	Brhadyātrā
EI	-	Epigraphıa India
HDS	-	P.V. Kane's Hıstory of Dharmasāstra
JBBRA	-	Journal of The Bombay Branch of the Royal Asıatic Soceıty
JNSI	-	Journal of th oriental Institute, Baroda.
JRASB	-	Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal.
JUPHS	-	Journal of the united provınces Historical society
LJ	-	Laghujātaka
MASI	-	Memories of Archaeological Survey of India
M.P.	-	Matsya puran
S.S.	-	Samās samhita
TY	-	Tikanikayātrā
VIJ	-	Vishvesvaranand Indological Journal
VP	-	Vivahapatala
YY	-	Yogayatra

अध्याय 1

प्रस्तावना

1. प्रस्तावना

ज्योतिषग्रन्थो का इतिहास लेखन मे योगदान स्वय सिद्ध है। ज्योतिष का सम्बन्द्ध सीधे जीवन से है क्योकि कोई भी ज्योतिषी यदि कोई भविष्यवाणी करता है और वह जीवन में घटित नही होती तो उस ज्योतिषी का कोई सम्मान भी नही रहता अत. प्रत्येक ज्योतिषी का यही प्रयास रहता है कि वह घटित होने वाली भविष्यवाणियॉ करे। इस दृष्टिकोण से इतिहास लेखन में ज्योतिष ग्रन्थों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्राचीन भारतीय सस्कृति एव समाज का पूर्ववर्ती एव परवर्ती आकलन करने हेतु इतिहास की आवश्यकता होती है। इतिहास लेखन का लक्ष्य अतीत तथा वर्तमान के बीच ऐसे सेतु का निर्माण करना है, जिसके माध्यम से समसामयिक समाज को अतीत का अवलोकन कर अतीत के उद्धरणों द्वारा प्रशिक्षित करे तथा भविष्य का मार्गदर्शन करे अर्थात इस सेतु पर यह एक ऐसा चक्रीय प्रकाश स्तम्भ होता है जिसका उद्देश्य अतीत का अवलोकन कराना, वर्तमान को प्रकाशित करना तथा उज्जवल भविष्य के लिये दिशा निर्देश करना है। इतिहास लेखन की इस निरन्तर प्रक्रिया द्वारा ही इतिहास का उद्भव तथा विकास होता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में इतिहास को मानव सभ्यता के सभी पक्षो का दर्पण माना गया था। मध्यकाल में हमारे देश में इस्लामी इतिहास लेखन की की परम्परा आई जिसमें इतिहासकारो ने मुस्लिम आक्रमणकारियो और विजेताओ के धम्रान्धतापूर्ण कृत्यो का औचित्य सिद्ध करना अपना पवित्र कर्तव्य समझा आधुनिक काल में अंग्रेजों के साथ पाश्चात्य इतिहास लेखन की प्रवृत्तियो का अनुप्रवेश हुआ जिसकी विविध धाराओ मे नवीनतम धारा मार्क्सवादी इतिहास लेखन है।

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन प्रधानतः पाश्चात्य इतिहास लेखन का अनुगामी रहा है इसके परिणामस्वरूप भारत में वह सब प्रवृत्तिया आई जो यूरोपीय इतिहास लेखन मे दिखायी देती है। यूरोपीय इतिहासकारो ने जो यूरोप मे विभिन्न सम्प्रदायो के सघर्ष तथा फ्रांसीसी क्रान्ति के साथ धर्मनिरपेक्षता के उन्मेष की पृष्ठभूमि मे इतिहास के विकास को देखते आये थे, भारत मे भी ब्राह्मण क्षत्रिय सघर्ष, हिन्दुओ द्वारा बौद्धो के उत्पीडन और पाश्चात्य प्रभाव के साथ धर्म–निरपेक्षता की अवधारणाये रखी। इस सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकारो और विचारकों को आक्रामक नीति अपनानी होगी क्योंकि किसी के आक्रमण का जवाब केवल आत्मरक्षा ही नहीं होता, इसके लिये प्रत्याक्रमण भी जरूरी होता है। यह प्रत्याकमण कही–कही राष्ट्रवादी इतिहास लेखन मे मिलता है। जिसके कारण राष्ट्रवादी विचारधारा वाले भारतीय इतिहासकारों की रचनाओं में कभी–कभी पूर्वाग्रह झलकने लगता है। इसलिये इनका भारतीय इतिहास लेखन सर्वथा निर्दोष या निष्पक्ष है यह कहना पूर्ण सत्य नही होगा।

भारतीय इतिहास को साम्यवादी चिन्तन के ढॉचे मे ढालने के प्रयास के कैसी विकृतियाँ हो रही है यह कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है। भारतीय इतिहास पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखी गयी एक विख्यात पुस्तक है। एस०एडांगे की 'इण्डिया फ्राम प्रीमिटम कम्यूनिज्म टु स्लेवरी' – इसमें एक स्थल पर वह 'गीता' के निष्काम कर्मयोग की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि तुम्हारा अधिकार केवल काम करना है, वेतन की आशा करना नही। उनकी इस व्याख्या ने 'गीता' के निष्काम कर्मयोग की वास्तविक व्याख्या ही बदल दी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत का आधुनिक इतिहास लेखन अनेक चुनौतियों से गुजरा है। हमारे इतिहासकारो को न केवल साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक इतिहास लेखन के कारण उत्पन्न विकृतियों को दूर करना है वरन्

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के अनुचित पूर्वाग्रहो से भी बचना है। उन्हे यह भी स्मरण रखना है कि इतिहासकारो को एक जज की तरह निष्पक्ष तो रहना चाहिए परन्तु अब वह अपने को केवल 'शुष्क तथ्यो' की खोज तक सीमित नही रख सकता उसे उनकी व्याख्या भी करनी होगी। इसके लिए उसे एक वैचारिक पृष्ठभूमि की आवश्यकता होगी। शायद निकट भविष्य मे एक ऐसी सर्वांगीण इतिहास दृष्टि विकसित हो जाए जिसमे जीवन और सस्कृति के सभी पक्षो को यथायोग्य स्थान मिल सके।

अतीत का प्रत्यक्षीकरण सम्भव नही है। इतिहासकार न तो स्वय अतीत का अवलोकन कर सकता है और न समसामयिक समाज को उसका दिग्दर्शन करा सकता है। ऐतिहासिक साक्ष्यो के आधार पर इतिहासकार अतीत का अनुभव अथवा परिकल्पना करके समसामयिक समाज के लिए अतीत की मानसिक पुर्नरचना ही कर सकता है। अतीत से वर्तमान तक प्रगति के मापन का एक मात्रयन्त्र इतिहास है। इतिहास के अभाव मे समाज वैसा ही प्रतीत होता है जैसे स्मरण शक्ति के अभाव मे मनुष्य। यदि इतिहास मानव–समाज के लिए इतना उपयोगी है तो उसकी पुनर्रचना का स्वरूप ऐसा ही होना चाहिए, जो सभी के लिए ग्राह्य हो सके।

यह सत्य है कि अतीत के ऐतिहासिक तथ्य स्वयमेव इतिहास नही बल्कि निर्जीव अस्थिपजर मात्र उपादान होते है। सारनाथ, हडप्पा, मोहनजोदडो तथा द्वारका की खुदाई से प्राप्त ईट, पत्थर, बर्तन के टुकडे, निर्जीव, अस्थिपजर मात्र है, परन्तु यह इतिहासकार को कौशल है कि वह इन अस्थिपजर मात्र तथ्यो को मासल बनाकर उनमे रक्त सचार करता है तथा उन्हे सजीव बनाकर समसामयिक समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। काल्पनिक पुर्नरचना सम्बन्धी विधियो का प्रयोग नाटकार, उपन्यासकार की तरह इतिहासकार भी करता है।

इतिहास मे कोई भी उपलब्धि अन्तिम नही होती। किसी भी प्रदत्त समस्या के प्रति उपलब्ध साक्ष्य ऐतिहासिक विद्या मे परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते रहते है। कोई भी इतिहासकार कितने की दीर्घकाल तक तथा लगन से कार्य क्यो न करे, वह यह कभी भी नही कह सकता कि इस विषय पर उसका कार्य अन्तिम है। अत प्रत्येक इतिहासकार का यह कर्तव्य है कि पुरानी आवधारणाओ से सन्तुष्ट न हो कर नयी अवधारणाओ ज्ञान क्षितिज के विस्तार के लिये किसी विशेष प्रकार से शोध किया जाता है, जो एक बौद्धिक प्रचेष्टा है एव किसी विशेष क्षेत्र मे विशेषता की अपेक्षा करता है। शोध का अर्थ एक नवीन अविष्कार या अन्वेषण नही है अपितु एक नवीन विन्यास, एक नवीन दृष्टिकोण तथा एक नवीन साक्ष्य का प्रस्तुतीकरण भी है। शोध मात्र उसी विषय से सम्बन्धित नही होता जिस पर कोई कार्य न किया गया हो बल्कि किये गये कार्य पर समय समय पर उत्खनन से प्राप्त सामग्री अभिलेखीय साक्ष्यो तथा आधुनिक इतिहासकारो के अन्वेषणो को नये रूप मे प्रस्तुत करना एव उसे उन्नत करने से सम्बन्धित भी होता है।

हमारे शोध का विषय "Social Changes As Depicted in Astrological Text of Ancient India" के सन्दर्भ मे एक अध्ययन है। यह एक रूचिकर विषय है भारतीय इतिहास मे होने वाले परिवर्तन को देखते हुये प्रस्तुत शोध कार्य मे प्राचीन भारत के ज्योतिष ग्रन्थो मे वर्णित सामाजिक परिवर्तन का धर्मशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थो, पुराणो तकनीकी ग्रन्थो एव साहित्य के आधार पर वर्णन किया गया है। प्रस्तुत शोधकार्य का आधार आचार्य बराहमिहिर की बृहत्सहिता, बृहज्जातक, होराशास्त्र एव योगयात्रा पर रखी गयी है। आचार्य वराहमिहिर ज्योतिष शास्त्र के पोषक पिता (Father of Astrology) है। उनके समान अन्वेषक, युगपर्वतक व्यक्तितत्व फलित ज्योतिष मे आज तक भारत वर्ष मे नही हुआ ज्योतिष से सम्बन्धित किसी भी विषय पर कोई भी शोध कार्य आचार्य वराहमिहिर के ग्रन्थो सरक्षण के बिना अपूर्ण है। अत प्रस्तुत शोध कार्य मे

उनके ग्रन्थो से विशेष रूप से सहयोग लिया गया है। इसके अतिरिक्त पुरातात्वि स्रोत उदाहरणत अभिलेख मुद्राये स्मारक एव सर्वेक्षण तथा उत्खनन से प्राप्त सामग्री पर भी विचार विमर्श करके प्रस्तुत शोध पर कार्य किया गया है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनके ग्रन्थो का जगह जगह पर तथ्यो की प्रामाणिकता के लिये उल्लेख किया गया है। जिसमे मुख्य रूप से 'पच्च सिद्धान्तिका समाससहिता यवनजातक, वृद्धयवनजातक एव सारावली मुख्य है। मूल ग्रन्थो मे ऋग्वेद, अर्थशास्त्र, नारद सूक्त याज्ञवलक्य स्मृति, अग्नि पुराण, शतपथ ब्राह्मण, वायु पुराण, विष्णुपुराण, गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र आदि प्रमुख है। अन्य सम्बन्धित ग्रन्थो का विस्तृत विवरण इस शोध के अन्त मे सलग्न किया गया है।

अध्याय 2

सामाजिक परिवर्तन

2. सामाजिक परिवर्तन

प्राचीन भारत मे समय–समय पर ऐसे अनेकानेक साहित्य का निर्माण हुआ जिनसे भारतीय समाज पर विपुल प्रकाश पडता है, ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, धर्मप्रधान साहित्य तथा अनेकानेक ज्योतिष ग्रन्थो से तत्कालीन समाज की गतिविधियो का पता चलता है। अभिलेख, मुद्राऐ, अवशेष स्मारक आदि विविध पक्ष उद्‌घाटित होते है तथा इतिहास की प्रमाणिकता पुष्ट होती है। गार्गीसहिता, ब्रहत्सहिता आदि अनेक ऐसे ज्योतिष ग्रन्थ है जिनसे सामाजिक जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है और जिनकी प्रमाणिकता तत्कालीन समाज के विभिन्न पक्षो का दिग्दर्शन करने से पुष्ट भी हो जाती है। इस आधार पर हम ज्योतिष के ग्रन्थो पर आधारित तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को अधिक प्रमाणिक मान सकते है।

बृहत्सहिता तत्कालीन सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओ का सजीव चित्रण करती है। मानव जीवन के गूढ पहलू जो कि लेखो मे सामान्यत वर्णित नही हो पाते है, बृहत्सहिता मे उसका अत्यन्त सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है और इन्ही ज्योतिष ग्रन्थो के आधार पर अब हम तत्कालीन समाज की वर्णव्यवस्था का वर्णन करेगे।

वर्ण - भारत के सामाजिक इतिहास मे वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है जो वैदिक काल से आज तक निरन्तर प्रवाहमान है। वर्ण धर्म एव वर्ण कर्म का निष्ठापूर्वक पालन करने से त्यष्टि और समष्टि दोनो का उत्कर्ष होता है। व्यक्ति अपने धर्म का अनुसरण करके समाज निर्माण मे अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। निश्चय ही समुदाय, समाज एव देश के निर्माण एव अभ्युदय मे वर्ण व्यवस्था का योगदान अत्यधिक गरिमामय है। आर्यो ने इस विभाजन के अन्तर्गत यह व्यवस्था रखी थी कि कोई भी व्यक्ति कार्य पद्धति, रूचि और मन स्थिति के अनुसार वर्ण परिवर्तन कर

सकता था किन्तु ऐसी विकल्पना व्यवहार मे विरल ही थी तथा उत्तरवैदिक काल के परवर्ती युग आते–आते वर्णव्यवस्था का यह लचीलापन समाप्त हो गया था। उसमे कठोरता आ गई थी। यह सत्य है कि इसने समय–समय पर हिन्दू समाज की समस्त गतिविधियो को अपने विचारो तथा कार्यो से प्रभावित किया।

ऋग्वेद के पूर्ववर्तीकाल मे समाज मे तीन वर्णो, ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य का ही उल्लेख हुआ है। पहले दो वर्ग कवि–पुरोहित और वीर–नायक के व्यवसायो का प्रतिनिधित्व करते थे और तीसरा वर्ग सामान्य लोगो का समूह था, जिसमे समाज के शेष लोग सम्मिलित थे। ऋग्वेद के उत्तरवर्ती काल मे ये तीन वर्ग चार वर्गो मे विकसित होकर सुदृढ हो गये यद्यपि यह कहा जाता है कि पुरूषसूक्त फलत परवर्ती रचना है, वर्ण व्यवस्था ऋग्वेदिक न होकर परवर्ती काल की सामाजिक व्यवस्था है।[1] ऋग्वेद के मूल अश के लेखन तक सम्भवत वर्णव्यवस्था जैसी कोई सस्था विकसित नही हुई थी। कालान्तर मे प्रक्षेपित अशो के जुट जाने के कारण वर्ण–व्यवस्था का सूत्र पूर्व वैदिक काल से ही मान लिया गया इन वर्णो के कार्य और प्रस्थिति को देव समर्थित रूप मे ग्रहण किया गया, यद्यपि इनके कार्यो का सही प्रथक्कण इनके अन्य सम्बन्धो का मार्गदर्शन कराने वाले उपनियम तथा उनके लचीलेपन की सीमा चाहे ऋग्वैदिक साहित्य के मुख्य भाग मे न वर्णित की गई हो, तो निश्चित रूप से कर्मकाण्ड अथवा पूजा विधि के रूवरूप से सम्बन्धित थी।[2] अत भारतीय साहित्य मे 'वर्ण' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद मे हुआ है, जो पूर्ववैदिक युग का समाज रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है। उसमे वर्ण का प्रयोग रग अथवा आलोक के अर्थ मे है।[3] तत्कालीन समाज मे केवल दो ही वर्ण थे 'आर्य' और दूसरा अनार्य।[4]

1- दत्त, ओरिजन ऐड ग्रोथ ऑव फास्ट इन इण्डिया। प ०–3

2- धुर्ये, कास्ट क्लास ऐड आकुपेशन, पृ० 40, और वैदिक इण्डिया के कतिपय पृष्ठ, 1979।

3- ऋग्वेद 1 73 7, 2 3 5, 9 97 15, 9 104 4, 9 105 4, 10 1124 7

4- वही 2 4 4 यो दास वर्णमधर गुहाक

उत्तर वैदिक काल तक आते–आते आर्य और अनार्य का विरोध और द्विवर्ण का स्वरूप समाप्त सा हो गया है। इसके स्थान पर चार्तुवर्ण का उल्लेख प्रारम्भ हो गया।[5] यद्यपि ऋग्वेद के पुरूषसूक्त मे चारो वर्षो का उल्लेख अवश्य हुआ है, किन्तु उस वश की प्राचीनता उतनी नही है, जितनी ऋग्वेद के अन्य प्रारम्भिक ऋचाओ की।

हिन्दू सामाजिक जीवन का आधार चतुर्वण व्यवस्था थी। यह वर्ण[6] और जाति[7] दोनो कहलाई जाती है। शूद्रो के विपरीत प्रथम तीन वर्ण द्विज या द्विजाति[8] कहे जाते थे क्योकि इस वर्ण के लोगो को उपनयन सस्कार, जो कि दूसरा जन्म समझा जाता था, का अधिकार प्राप्त था, जो कि शूद्रो को प्राप्त नही था। हालाकि ब्राह्मणो को दूसरी जाति से प्रथक करने के लिए द्विज और द्विजाति का प्रयोग ब्राह्मणो के सन्दर्भ मे अधिक किया जाता था।[9] वर्णो का विवरण सामान्यत समाज मे उनकी स्थिति को प्रकट करते हुए घटते हुए क्रम मे किया जाता था।

उस समय वर्ण व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। वराहमिहिर का जाति व्यवस्था का विवरण चरम सीमा तक पहुॅच गया था। उन्होने क्रमश सफेद, लाल, पीले और काले रग को ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र से सम्बन्धित किया है। ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की, जिनका रग क्रमश श्वेत, लोहित (लाल), पीत (पीला) और काला था।[10] वस्तुत श्वेतरग का परिचायक सत्वगुण था लाल रग का

5- अथर्ववेद 3 5 7, श०ब्रा०5 5 5 4 9, 6 4 4 13,

6- III 19, XXXIII, 14 etc

7- VIII 10, XXXII 18, 18, BY, XXIII 7,YY, IX 2,4,etc

8- YY, IV4

9- IV,23, V20, 32,7176, IX39, XII 18, XVXVIII 4, XIX 13, XXIV7,XXXIII LY, LVIII 5 , LXVIII 38, LXXIX II, 2 LXXXVI 3 etc

10- महाभारत, शान्तिपर्व, 188 5
ब्रह्मणाना तु सितोक्षत्रियाणा तु लोहित
वैश्याना पीत को वर्ण शूद्रणाम सितस्यतया

रजोगुण, पीलेरग का रजोगुण और तमोगुण तथा कालेरग का तमोगुण।[11] चारो वर्णो से सम्बन्धित रगो के सम्बन्ध मे कुछ उदाहरण दिये जा सकते है। वर्षा ऋतु की सूर्य की सफेद लाल पीली और काली किरण चारो वर्णो का इसी क्रम मे विनाश करने वाली कहलाई जाती है। राहु का सफेद लाल पीला और काला होना क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो को पीडा देने वाला माना जाता था।[12] रगो के सिद्धान्त का प्रयोग घरो और मन्दिरो के स्थान का निर्धारण करने के लिए भी किया जाता था। दैनिक जीवन मे प्रयुक्त होने वाले रग वर्णो के आधार पर निर्धारित किये जाते थे। उदाहरणत चारो वर्णो के गदा–छाता, अकुश, बेत धनुष, माला पताका आकद की मूठ का रग क्रमश पीला yellowishred शहद का रग गहरे रग का होता था। ब्राह्मण एक विशेष प्रकार के छत्र का प्रयोग करते थे जो केवल उन्ही के लिए निर्धारित होता था। क्षत्रियो को लाल या yellow diamond, ब्राह्मणो को सफेद, वैश्यो को Sirish फूल का रग तथा शुद्रो को काला रग प्रयोग करना होता था।

इसी प्रकार चारो वर्णो के लिए क्रमश उत्तर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम दिशाओ का निर्धारण किया गया था।[13] नगर निर्माण योजना के अन्तर्गत यह कहा गया है कि चारो वर्णो के घर अपनी अपनी निर्धारित दिशाओ मे ही होने चाहिए।

विभिन्न वर्णो के लोगो के घरो का स्थान अन्य वर्णो से रग taste, smell and similar other matter के आधार पर अलग होता था। अलग–अलग वर्णो के निवास स्थान के लिए अलग–अलग माप निर्धारित थे।

11- वही 188 5, नीलकठ की टीका, सित स्वच्छ सत्वगुण प्रकाशात्मा रामदमादि स्वभाव। लोहितो रजोगुण प्रव्रत्थात्मा शौर्यतेज आदि स्वभाव। पीतक रजस्तमोव्यामिश्र कृ यादीनिहीन कर्म प्रवर्तक। असित कृष्ण आवरणात्मा तमोगुण स्वत प्रकाशप्रवृत्तिहीन शकतवत् परप्रेर्य।

12- AISO cf III, 19, X 21, XXX.17, XXXIII, 14, XXXV 8, XXXVI , LI 1

13- Also see V 32, XXX 16, XXXI 3-4 , XXXIII 15, XXXVI 1 1 XLII 65 ,

इसी प्रकार से मूर्तियो के लिए प्रयुक्त लकडियॉ भी वर्ण के आधार पर निर्धारित की जाती थी। इन वर्णो द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले यज्ञो मे ब्राह्मण के लिए पलाश की लकडी क्षत्रिय के लिए न्यग्रोध की और वैश्य के लिए अश्वत्थ की।[14]

वर्ण भेद को कुछ ज्योतिषीय सिद्धान्तो पर भी लागू किया गया है इसलिए उत्तरी व दक्षिणी सक्रान्ति के समय होने वाला ग्रहण क्रमश ब्राह्मण और क्षत्रिय या वैश्य और शुद्रो को कष्ट देने वाला माना जाता था। इसमे यह वर्णित है कि जब सूर्य और चन्द्रमा को आकाश के कुछ निश्चित भागो मे ग्रहण लगता है उस समय विभिन्न वर्णो को कष्ट होता है। ये भी माना जाता था कि विभिन्न ग्रह और artrısm इनको नियन्त्रित करते थे और यह भी कहा जाता है कि जब ऐसा परिवेश होगा तो माह के प्रारम्भिक चार दिन क्रमश चारो वर्णो के लिए बर्बादी लायेगा यदि एक टूटा हुआ तारा इसके सिर छाती और पूछ या कोई तारा सीधा, चमकदार बिना टूटा हुआ नीचे गिरता है तो कहा जाता है कि वह चारो वर्णो को अलग–अलग नुक्सान पहुँचायेगा। एक इन वर्णो के भेद या महत्व के विषय मे कोई विश्वसनीय वर्णन नही मिलता है।

ब्राह्मण धार्मिक आचार विचार[15] तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान[16] जैसे शान्ति, इन्द्रपूजा, ग्रहप्रवेश, निराजना, पुष्यस्नान, राज्याभिषेक तथा मूर्ति स्थापना[17] आदि अनुष्ठानो के लिए वेदो तथा वैदिक मन्त्रो मे निपुण माने जाते थे। ब्राह्मणो के विषय मे यह वर्णन मिलता है कि वे फल–फूल हवा तथा पानी के सहारे ही जीवित रहते थे तथा आजीवन तपस्या किया करते थे। प्रधानत उनके छ कर्म थे– वेद पढना, वेद पढाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना।[18] धार्मिक अनुष्ठान

14- श० ब्रा०, 5 3 2 11

15- XIX13, XLII 26, XLIII 6, XLVII 49

16- XXIV6, XLII 30, YY, VIII 2, 3, 8, 12 etc

17- Chs XLII, XLIII, XLV, XLV, XLVII, LII 1234, LIX

18- अर्थशास्त्र, 1 3 स्वधर्मो ब्राह्मणस्मरध्ययनमध्ययनमध्यापन यजन दान प्रतिग्रहश्चेति,मुन० 188, याज्ञ० 5 188, शख० 1 2, गौ०ध०सू० 10 1 बौ०ध०सू०, 110, 182 कृत्यकल्पतरू, 185 86, समरागज सूत्रधार, 7 70, यजनाध्ययननेदान याजनाध्यापनार्थिता

की समाप्ति पर उन्हे दक्षिणा और विभिन्न उपहारो आदि से सम्मानित किया जाता था तथा भोजन आदि के लिए आमन्त्रित किया जाता था।[19] लोगो का यह विश्वास था कि ब्राह्मणो को दान आदि देकर वे बुरे ग्रह, नक्षत्रो, अपशकुन आदि से अपनी रक्षा कर सकते है।[20] ऐसा माना जाता था कि ब्राह्मण Santıs द्वारा देश को उसी प्रकार शक्ति प्रदान करते है जैसे एक वैद्य विष तथा अन्य बिमारियो से शरीर की रक्षा करता है।[21] ब्राह्मणो को भगवान के समान समझा जाता था तथा लोग अपनी सेवा द्वारा उनके प्रति समर्पित होते थे। ब्राह्मणो का सम्मान करने वाला नृप सुख समृद्धि प्राप्त करता था तथा उसके इस व्यवहार से पृथ्वी उसके प्रति उदार होती थी और स्वय उसके सम्मुख नत होते थे।[22] समाज मे ब्राह्मण देवता के समान आद्रता था।[23, 24] मनु के अनुसार मूर्ख और विद्वान दोनो ही प्रकार के ब्राह्मण देवता के समान महत्वशाली थे।[25] ब्राह्मण अपनी शिक्षा और अध्ययन से समाज की बौद्धिक क्षेत्र मे अग्रणी करता था। निरूक्त मे कहा गया है कि विद्या अपने ऋण के लिए ब्राह्मण के निकट आई।[26] समाज मे वेदो का प्रचार और प्रसार ब्राह्मणो के कारण ही सम्भव था।[27] वे ही वेद और शास्त्र के प्रवर्तक थे[28] रूचक और मण्डालका प्रकार के लोग ब्राह्मण, शिक्षक, भगवान, ध्यान आदि क्षेत्रो से सम्बन्धित थे। इन लोगो का आशीर्वाद किसी भी कार्य के प्रारम्भ से पूर्व मिलना एक अच्छा शकुन[29] माना जाता था। जिस राजा की सेना ब्राह्मणो से घृणा करती थी उस पर आसानी से आक्रमण किया जा

19- XLII, 38, XLV, 17, 24, 32, 37, 45, 53, 57-8, 64, 71-2, LII a

20- – – – न तेषा भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रूद्ध IXLV 17

21- रोगाभिभूत विषदूषित वा यथा विनाशभिमुख शरीरम्।
वैद्य प्रयोगै सुदृढ करोति राष्ट्र तथा शान्तिमिरग्रजन्मा।।

22- ऋग्वेद, 4 50, 8

23- तै० स० 1 7 11, एते वै देवा प्रत्यक्ष यद्र ब्राह्मणा ।

24- वही 3 200 88

25- मनु० 9 317 अविद्वाश्चैव विद्वाश्च ब्राह्मणो दैवतमहत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाऽग्निदैदतमहत्।।

26- निरूणन्त – 2 4

27- वायु०पु० 57 60, सहिता च ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्राह्मणेस्तुत

28- मत्स्य पु०, 21 31, काण्डरीकोऽपि धर्मात्मा वेदशास्त्र प्रवर्तक ।।

29- BY, XV 15, XVI 30, TY, IX 2, YY, XIII 1

सकता था।[30] ऐसा उन लोगो का विश्वास था कि ब्राह्मणो के तेज तथा मन्त्रोचार के द्वारा विजय आसानी से मिल जाती थी। ब्राह्मणो गाय और राजाओ के लिए युद्ध हुआ करते थे।[31] राज्य को जीतकर भी जीतने वाला राजा वहा के ब्राह्मणो को बन्दी नही बना सकता था।[32] शत्रु के आक्रमण के समय वह अपने राजा के साथ यह युद्ध भूमि मे जाकर सैनिको का उत्साहवर्द्धन करता था।[33] राज्याभिषेक के पूर्व ब्राह्मण पुरोहित राजा से कहता था –"तू वीरता की योनि और नाभि है। कोई तेरी हिसा न करे और न तू हम लोगो की हिसा करे। नियमो का पालन करने वाला तथा विद्या का निवारण करने वाला व्यक्ति प्रजा मे स्वैर्य प्राप्त करता है। सुकमा व्यक्ति ही साम्राज्य के योग्य होता है। मृत्यु से रक्षा करता है। सूर्यदेव के प्रकाश अश्विनी कुमारो की भुजाओ पूषा के हाथो और अश्विनी कुमारो की औषाधियो से (राष्ट्र के) बल, श्री और यश के लिए इन्द्र के इन्द्रिय (शक्ति) से मै तेरा अभिषेक करता हूँ।[34] कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार उन्नत कुल से उत्पन्न, शील तथा सदाचार सम्पन्न, सभी वेदो और व्याकरण आदि वेदोगो मे पारगत, दैवी विपत्तियो एव शकुन शास्त्र मे विज्ञ दण्डनीति (राजनीति) शास्त्रो मे निपुण और दैवी तथा मानवी आपदाओ को अथर्ववेदोक्त मत्रो द्वारा हटा देने कुशल ब्राह्मण व्यक्ति को ही राजा पुरोहित बनाए। जैसे शिष्यगुरू को, पुत्र पिता को तथा सेवक स्वामी को मानता है, ठीक उसी प्रकार राजा भी पुरोहित को अपना पूज्य मानकर उसका अनुसरण करे।[35]

ब्राह्मणो को वेदो मत्रो के उच्चारण के आधार पर विभक्त कर दिया गया

30- सग्रामे वयममरद्विज प्रसादाज्जेष्यामो रिपुष्लमाश्वसशयेन।
BY, XXXI,2 TY, IX. 28

31- स्वाम्यर्थगोद्विजहिते त्यजता शरीरम् IYY, XVI 4
स्वाभिगोब्राह्मणार्थे त्यक्तासूनाम् IYY, XVI 26

32- YY, XVII 9, By, XXXIV8, TY, IX 22

33- ऋग्वेद 10 71 9, 1, 164 45, 7 103 7 8, 10 71 9 आदि

34- यर्जुर्वेद (शुक्ल), 20 14

35- अर्थशास्त्र, 1 9, पुरोहितमुदितकुल शीलशड्डगे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्या च अभिविनीतमापदा दैवभानुशीणामथर्वभि रूपार्ये च प्रतिकर्त्तार कुर्वीत। तमाचार्य शिष्य पितर पुत्रो भृत्य स्वामिनमिव चानुवर्तेत।

था। जैसे अथर्ववेद सामवेद ऋग्वेद के ब्राह्मण। पुरोहित के रूप मे वे राज्य के समस्त धार्मिक कृत्यो को सम्पन्न करता था। श्रोत यज्ञो मे उनकी सहायता अनिवार्य मानी गयी थी। देव–स्तवन के लिए भिन्न–भिन्न ऋचाऐ थी जिन्हे ब्राह्मण सम्पन्न करते थे। प्रारम्भ मे मत्रो की सहायता से यज्ञ किया जाता था। किन्तु बाद मे मत्रोच्चार के साथ–साथ हाथो के माध्यम से यज्ञ किया जाता था।[36] वैसे ब्राह्मण चारो वेदो मे निपुण होते थे। गुप्त काल मे चर्तुविद्या निपुण ब्राह्मणो को भू–स्वामित्व भी दिया जाता था।[37] वैखानसग्रह्यसूत्र के श्रौत्रिय शब्द ब्राह्मण की किसी भी वेद मे निपुणता सूचित करता है। गोत्र इन्हे अन्य से पृथक करने का एक और आधार है। वशिष्ठ गोत्र के ब्राह्मण का V-72 मे वर्णन है। इनके लिए ब्राह्मबन्धु[38] शब्द जो कि ध ीरे–धीरे कम होता जा रहा है या वह BY, XVIII 24 मे मिलता है। जो ब्राह्मण उपनयन सस्कार को सम्पन्न कराने मे असफल होता है। वह अपनी व्रात्य जाति से अवनत हो जाता है (LXXXVI 39)।[39]

ब्रह्म हत्या एक बहुत बडा घ्रणित कार्य समझा जाता था और इसमे प्रायश्चित के लिए अनेक प्रकार की तपस्या निर्धारित की गई थी। वराहमिहिर ने प्रायश्चित का तरीका कपालव्रत बताया है। उनके अनुसार जब रोहिणी वीनस द्वारा तोडी जाती है और उसकी हड्डियो के टुकडे आदि पृथ्वी पर बिखर जाते है। इस कष्टकारी क्रिया को ही कपालव्रत कहते है।[40] मानव धर्मशास्त्र के अनुसार ब्रह्महत्या करने वाले की

---

36 ऋग्वेद, 1 2 9 2

37- CII, III, P 70 1 6,179, II65-6, P 238, I, 25 , EI, X V P 307 The legend chaturvidyarya is found on ———
———
वेदमधीत्य शारीरैरापाणिग्रहणात् सस्कृत , पाकयज्ञेरपि यजन् श्रैत्रिय

38 cf Brahmabandhur = adhıksope, Amara, III 3 194
यावदुपनयन न कृत स व्रात्यो द्विज ।

39- प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातक वसुधा।
केशास्थिशकलवला कापालमिव व्रत धत्ते।।

40- ब्रह्महा द्वादशव्दानि कुटी कृत्वा वने बसेत्।
भैक्ष्याश्यात्मवि शुद्ध्यर्थ कृत्वा शवशिरोरूहम्।। [Maner, XI 72]

स्वय की आत्मबुद्धि के 12 वर्ष वन मे कुटी बनाकर रहना भिक्षु बन कर तथा मृतक के समान जीवन व्यतीत करना चाहिए होता था।[41]

क्षत्रिय – भारतीय समाज मे क्षत्रियो की स्थिति ब्राह्मणो के बाद थी किन्तु उनका मान और महत्व ब्राह्मणो से कम नही था। देश और समाज की रक्षा व्यवस्था का भार क्षत्रियो पर ही था। अपने युद्धकौशल और प्रशासन से वे समाज को रक्षित और पोषित करते थे। क्षात्र शासक वर्ग का[42] प्रतिनिधित्व करता है (in VIII 30)। नरेन्द्र शब्द क्षत्रियो के लिए ही प्रयुक्त होता था (in V32)। यह राजकीय शक्ति केवल द्वितीय जाति तक ही सीमित थी। वास्तव मे कुछ बाते इससे अलग थी। जैसे युवानच्वाग के अनुसार थानेश्वर और परयात्र[43] मे वैश्य राजा तथा मतीपुर और सिन्ध[44] मे शूद्र तथा उज्जैनी, जीठोती तथा माहेश्वरपुर मे ब्राह्मण शासक थे।[45]

पहले दो वर्ण अर्थात् ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के वर्ग होते थे जैसे ब्रह्मशास्त्र, द्विजक्षात्र, द्विजक्षत्रिय, द्विज नरपति। इनकी एकता सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आवश्यक समझी जाती थी।[46]

युद्ध मे जीति गई सारी वस्तुए क्षत्रीय शासक की होती थी, जो उसके विशेष अधिकार को व्यक्त करता है। मनु के अनुसार रथ, घोडा, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु (गौ, भैस आदि), स्त्रिया (दासी आदि) दस तरह के द्रव्य (गुड, नमक आदि) और कुव्य (सोना–चादी के अतिरिक्त ताबा–पीतल आदि धातु) योद्धा जीतकर लाता था, उसी का होता था।[47]

41- Ksatram tada sastı ca bhutadhatrım

42- Oh yuan chwang 1 pp 300, 343

44- Ib, I, p 322 , II, p 252

45- 16 , II, pp 250-257

46- cf Manu, IX 322

47- मनु० 7 96 रथा व हस्तिन छत्र धन धान्य पशून्स्त्रिय।
सर्वद्रव्याणि कुप्य च यो यज्जयति तस्य तत्।।

यही नही विजित राजाओ और अधीनस्थ राजाओ से मिलने वाले उपहार राजा की विशेष सुविधाए थे। सम्राट चन्द्रगुप्त को ऐसे ही अनेक राजाओ से उपहार मे बहुमूल्य धन–सम्पत्ति और राजव्यस्थाऐ प्राप्त हुई थी। प्रयाग प्रशस्ति इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

क्षत्रियो के लिए दण्ड व्यवस्था-

वर्ण के क्रम के अनुसार क्षत्रियो के लिए दण्ड की व्यवस्था भी क्रमानुसार की गई थी। ब्राह्मणो को सबसे कम दण्ड मिलता था और शूद्र को सबसे अधिक सभी धर्मशास्त्रकारो और स्मृतिकारो ने इसी सिद्धान्त के अनुसार क्षत्रियो के लिए भी दण्ड का विधान किया था। गौतम के अनुसार ब्राह्मण का अपमान करने वाले क्षत्रीय को 100 कार्षापण अर्थदण्ड देना पडता था और वैश्य को 150 कार्षापण।[48]

क्षत्रीय के निषिद्ध कर्म -

समाज मे कुछ ऐसे कार्य थे जो क्षत्रीयो के लिए वर्जित थ। वेद पढाने यज्ञ कराने और दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणो का था, यद्यपि वैदिक युग के अनेक क्षत्रीय शासको ने पढानि का भी कार्य किया था। मनु के अनुसार ब्राह्मणो के कर्मो मे से क्षत्रीयो के लिए ये कर्म अविहित थे–पहला पढाना, दूसरा यज्ञ कराना और तीसरा दान लेना।[49] क्षत्रिय वेद पढ सकते थे पढा नही सकते थे। पढने का अधिकार केवल ब्राह्मणो को था।[50]

वैश्य - पाणिनी ने वैश्यो के लिए "अर्थ" शब्द प्रयोग किया है। समाज मे वैश्यो का

48- गौ० ध०सू०, 2 36-7 शतक्षत्रियो ब्राह्मणो कोशे। अध्ययर्थ वैष्य ।

49- मनु० 10 77 त्रयो धर्मा निवर्तन्तेब्राह्मणसत्रिय प्रति।
अध्यापन याजन च तृतीय च प्रतिग्रह ।।

50- वही, 10 1, अधीयीरस्त्रयो वर्णा स्वकर्मस्था द्विजातय ।
प्रबूयाद्ब्रह्मणरूत्वेशा नेतराविति निश्चय।।

स्थान क्रमानुसार तीसरा था। व्यापारिक व्यवस्था और कृषि का समान्त भार उसके ऊपर निर्भर करता था। राज्य और देश की आर्थिक स्थिति उसी के सत्यप्रयास से सुदृढ होती थी। अर्थ सम्बन्धी नीतियो का सचालन वैश्य वर्ग ही करता था। अध्ययन, यजन और दान उसका परम कर्तव्य था।[51] कौटिल्य के अनुसार उसका प्रधानाचार्य था, अध्ययन करना, यज्ञ करना और दान देना।[52] कालान्तर मे चलकर वैश्यो ने शिक्षा ग्रहण करने का कार्य त्याग दिया और अपने को पूर्णरूप से व्यापार और वाणिज्य मे लगाया। इस तरह आध्यात्मिक और बौद्धिक उन्नयन का मार्ग उनसे छूट गया। अध्ययन, यज्ञज आदि दानादि के कर्मों को त्याग कर वैश्य कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और ध्नार्जन के कार्यो मे लग गये।[53] पशुओ का रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढना, व्यापार करना, ब्याज लेना और कृषि करना वैश्यो के कर्म थे।[54]

गुप्त युग मे उन्हे श्रेष्ठि[55], वणिक[56] सार्थवाह[57] आदि नामो से सम्बोधित किया जाता था। हेमचन्द्र ने उनके लिए छह शब्दो का प्रयोग किया है—अर्था, भूमिस्पर्श वैश्य, अख्या, अरूजा और विश।

51- गौ० ध० सू०, 10 1-3

52- अर्थशास्त्र, 3 7 नैश्पस्थस्याध्याययन यजन दान।

53- गौ० ध०सू०, 2 1 50, वैश्यस्याधिक क्रषिवणिक्यषाशुपात्यकुसीदम्

54- मनु० 1 90, पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च।
वाणिक्पथ कुसींद च वैश्यस्थ कृषिमेव च ।।

55- शाकुतलम् पृ० 219

56- मालविकाग्निमित्र, 1 7

57-

साम्माश्रत या वर्णसकर जाति

(Mixed Castes)

भारतीय जाति व्यवस्था हिन्दू सामाजिक सगठन का एक विशिष्ट रूप है, जो हिन्दू समाज को अनेक समूहो मे विभक्त करता है। जातियो के रहन–सहन, स्तर, व्यवहार और आचरण मे सम्यक् अन्तर है। समाज का स्तर जाति द्वारा निर्धारित किया जाता है। (Sarthe pradhanam samye syaj = jati-vidya-vayo = dhikam, LXXXV11, BY XXIII 7), जाति के प्रधान[58] जाति के सगठन के अस्तित्व को प्रस्तुत करते है।

उपनिषदो और महाभारत से विदित होता है कि चातुर्वणो के अतिरिक्त समाज मे अनेकानेक जातिया थी, जिनकी उत्पत्ति अनुलोम और प्रतिलोम जैसे अर्न्तजातिय विवाह से हुआ था।[59] ऐसी विभिन्न जातिया तत्कालीन समाज मे सवर्णता या अवर्णता का बिना ध्यान रखे ही कुछ लोगो द्वारा विवाह सम्बन्ध स्थापित करके उत्पन्न हुई थी।[60] फलत प्रजातीय भेदो और सामाजिक अन्तरता के कारण समाज मे इनकी सख्या बढती गई और इनका एक बहुत बडा वर्ग हो गया। ऐसे बहिर्विवाह से समाज मे सकरता इतनी बढ गई कि व्यक्ति की सही जाति का पता पाना असम्भ सा हो गया।[61] धर्मसूत्रो मे भी ऐसी विभिन्न जातियो का उल्लेख है जो अनुलोम–प्रतिलोम से उत्पन्न हुई थी।[62] पूर्वमध्ययुग तक आकर वर्णसकर जातियो की सख्या 64 हो

58- jati-srestha (VIII 10) Utpala - jathinam ye sresthah pradhanah,Rajanaya mukhyan (IV 24), utpala kstriya pradham cf pada taditaka (chaturbhani edited by Motichandra), p 156, which refers to the brahmanapithika for deciding matters relating to their caste

59- छा०उ० 5 10 7, रमणीयचरणा रमणीया योनिमाधेरन् ब्राह्मणोयोनि स्वा क्षत्रिययोनिष्वा वे ययोनिवा। कपूयचरणा कपूयायोनिमापधेरन् वयोनि वा सकस्योनि वा चाण्डालयोनि वा।, महाभारत, 12 296 5-9

60- महाभारत, वनपर्व, 80 31-33

61- वही

62- गौ० ध० सू० 21 6-10, 18 24, 4 14, बौ०ध०सू० 1 9 3 आ०ध० सू०, 1 2 4 9 5,

गयी।[63] बृहद्धधर्मपुराण मे उल्लिखित है कि वर्णसकर जातियो की तीन श्रेणिया थी—(1) उत्तम सकर, जिनकी सख्या बीस थी, (11) मध्यसकर, जिनकी सख्या बारह थी और (111) अधमसकर या अन्त्यज, जिनकी सख्या नौ थी।

वर्णसकर जातियो का भी आपस मे मिश्रण होने से अनेक सताने उत्पन्न हुई जो विभिन्न निम्न जातियो के अन्तर्गत गृहीत की गई। इस प्रकार भारतीय समाज मे जातियो और उप जातियो का विशाल समुदाय हो गया। मिश्रण से बनी हुई ये जातिया आपस मे ऊच नीच की भावना से ग्रस्त थी जबकि वर्णसकर जातिया स्वय अस्पृश्य और निम्न श्रेणी की थी।

वराहमिहिर ने बृहत्सहिता मे नयी मिश्रित जातियो के विषय मे वर्णन किया है जैसे विवर्ण और अवर्णज। स्मृति के दृढ निर्देश को वराहमिहिर जानते थे कि केवल चार वर्ण ही होते है। धर्मशास्त्र द्वारा ज्ञात होता है कि अर्न्तजातीय विवाह जैसे अनुलोम[65] तथा प्रतिलोम[66] विवाह द्वारा मिश्रित जातिया उत्पन्न होती है।

चाण्डाल -यह प्रतिलोम विवाह द्वारा उत्पन्न छ जातियो मे से एक है। समाज मे चाण्डल जाति अत्यन्त निम्न मानी जाती थी। यह जाति शूद्र पुरूष तथा ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न सन्तान होती थी।[67] चाण्डाल जाति गाव के बाहर रहती थी, कुत्ते और गधे उनकी सम्पत्ति होती थी। वे मृतको के वस्त्र पहनते थे, टूटे फूटे बर्तन प्रयोग करते लोहे के जेवर पहनते थे तथा इधर से उधर घूमते रहते थे। उन्हे कस्बे तथा गाव मे आने की अनुमति नही थी। वे जब भी गाव मे रात्रि या दिन मे जाते तो उन्हे

63- हिस्ट्री अव बगाल, प ० 567

64- ब्रहदुधर्मपुराण, उत्तरकोड प ० 33-48

65- 1 e union of a male of higher caste with a female of lower caste

66- 1 e union of a man of lower caste and a women of higher caste

67- Manu, X 12 , yajnvalkya, 1 93, Arthasastra, III 7, Amara II 10 4

एक विशेष प्रकार की आवाज करते हुए आना पडता था।[68] जिससे की उनकी उपस्थिति का लोगो को पता चल जाये। जिन मृतक का कोई जानने वाला या रिश्तेदार नही होता था उनका दाहसस्कार ये ही करते थे तथा राजाज्ञा[69] द्वारा किसी को फासी की सजा देने पर जल्लाद का काम भी करते थे। फासी देने के पहले उसे कपडे जेवर, शय्या आदि पर इन्ही का अधिकार होता था।

डोम - इसी प्रकार डोम एक जाति होती थी जो शमशान के कार्यो को ही किया करती थी। यह अस्प्रश्य जाति बहुत पहले से भारत मे रहती आ रही है। इसके विषय मे अरब लेखको का भी विवरण मिलता है। वैसे डोमो को आज भी निम्न कार्य करते हुए देखा जा सकता है। इनका मुख्य पेशा गाना बजाना था। अल्बरूनी के अनुसार ये बासुरी बजाते और गाते थे।[70] किन्तु आजकल डोमो का पेशा बास की टोकरी आदि बनाना है। कल्हण ने इसके निम्नतम पेशे का उल्लेख किया है।[71] चर्यापद मे डोमो का उल्लेख हुआ है, जो शहर के बहार रहते थे।

निषाद - बौधायन के अनुसार ब्राह्मण पुरूष और वैश्य[72] या शूद्र[73] स्त्री से निषाद की उत्पत्ति हुई थी।[74] अमर शब्द भी निषाद जाति के लिए ही प्रयुक्त होता था। निषाद अत्यन्त निम्ना कोटि की जाति थी। रामायण मे निषाद जाति का विस्तृत वर्णन है। मनु ने भी निषाद जाति का उल्लेख किया है।[75] ये जाति नाविक का कार्य करती

68- cf Fa-hian (H A Giles, Travels of Fa-hsien, p 21, "These (candelas) live away from other people, and when they approach a city or market, they beat a piece of wood, in order to distinguish themselves Then people know who they are and avoid coming in to contact with htem" Aslo cf जर्जरितमुख–भागा वेणुलतामादाय नरपतिबोधनार्थ सकृत्समाकुटटिममाजधान (चाण्डालकन्यकावर्णनम्) kadambri, Purrabhaya, p 20

69- cf Mrcchakatika, Act X, where we meet two chandalar acting as having man

70- ग्यारहवी सदी का भारत, प ० 126

71- राजतरगिणी, 6 69, श्रेत्रियेणेव तेनापि म दम्भ शौचाशालिना
डोम्बोच्छि टभुजो भृत्या पार्श्वात्र परिजहिरे।।

72- बॉ० ध० सू० 1 95

73- Haradatta on, Gautama smrti, IV 14 Mentioned in HDS, II, p 86

74- Arthasastra, II, 7Ip 16y , Manu X 8, Yajnavalkya 1 91

75- मनु०, 10 48 मत्स्यधातो निशादाना ------ ।

थी। विष्णुपुराण मे[76] इसे विन्ध्याशैल का निवासी और पापकर्मा कहा गया है तथा इसकी उत्पत्ति राजा वेन का जघस्थल से मानी गई है। नाविक का कार्य तथा मछली पालन इनका मुख्य व्यवसाय है।

पाराशव –ब्राह्मण पिता तथा शूद्र स्त्री से पाराश्व जाति का उदय हुआ था।[77] पुराणो मे भी पाराश्व का उल्लेख हुआ है।[78] विदुर एक पाराश्व थे। उनका विवाह भी पारश्वी पुत्री से हुआ था। वाण के दो पाराश्व भाई थे चन्द्रसेन तथा मात्रसेन।

(श्वपाकी) सोपाक - स्वपाक जाति अधिकतर उग्र पुरूष क्षात्र स्त्री[79] तथा उग्र स्त्री[80] चाण्डाल पुरूष तथा ब्राह्मण स्त्री तथा चाण्डाल पुरूष वैश्य[81] स्त्री की सन्तान होती थी। वराहमिहिर ने स्वपाक जाति को अन्त्यजाति के अन्तर्गत माना है और वे समाज से बहिष्कृत होते थे तथा गाव के बाहर की निवास करते थे। मनु ने उनकी तुलना चाण्डाल से की है।[82] इनका प्रधान कार्य था प्राणदण्ड प्राप्त पापियो को वध करना।[83]

उग्र - गौतम ने इस जाति को वैश्य पुरूष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न माना है।[84] परन्तु बौधायन ने इसके विपरीत विचार व्यक्त किया है उनके अनुसार इस जाति का जन्म क्षत्रिय पुरूष और शूद्र स्त्री से हुआ।[85] स्मृतियो के अनुसार भी उग्र जाति की

76- विष्णुपुराण, 1 13 33 36,
मप्यमानात्समुत्तस्थौ तस्योरो, पुरूष किल। दग्धस्थूणाप्रतीकाष खर्व्वाटास्योऽपि हत्स्वक।।
कि कसेमीति तान्सर्वान्सविप्रानाह चातुर। निशीदेति तमूचुस्ते निशादस्तेव सोऽभवत्।।

77- मनु० 10 8 ब्राह्मण द्वै यकन्यायामम्ब ठो नाम जायते। निषाद शूद्रकन्याया य पाराराण उच्यते।।
स्त्रियान अम्बश्ठ शूद्रया निषादो जात पारशवोऽपि वा।।

78-

79- Arthasastra, III 79 p 163

80- Manu X 19

81- HDS, II P 97

82- Amara, II 10 19-20, dentıfices the candelas and svapacas

83- वही 10-38, चाण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनव त्तिमान्। पुक्कस्या जायते पाप सदा सजानगर्हित ।।

84- गौ०ध० सू० ज० 16

85- लौ० ध० सू० 1 95

उत्पत्ति क्षत्रिय पुरूष और शूद्र स्त्री से हुई थी।[86] इस जाति का प्रमुख कार्य भूमि के अन्दर बिल मे से जानवरो को निकालकर जीवन यापन करना था।

यवन पहलव शक हूण और Magas आदि विदेशी जातियो को उनकी जटिलता के साथ हिन्दू समाज मे मिला लिया गया और वे मैखास के नाम से जाने गये। यवन भी यही कहे जाने लगे। वे मिश्रित जाति के कहे जाते थे। ब्राह्मण लेखको के अनुसार उन्हे समाज मे उच्च तथा सम्मानिय स्थान प्राप्त नही था।

आश्रम - प्राचीन हिन्दू समाज मे आश्रम–व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मनुष्य के जीवन को सुसस्कृत, सुगठित और सुव्यवस्थित करने के निमित्त भारतीय समाज मे आश्रम व्यवस्था जैसी सस्था की नियोजना की गई थी। मानव जीवन को समग्रता पूर्वक व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए उसे आश्रमो के अन्तर्गत विभाजित किया था। द्विजो के जीवन के अनुरूप ही आश्रम को भी चार भागो मे विभाजित किया गया है। इनमे ब्रह्मचारी या विद्यार्थी, ग्रहस्थ वनप्रस्थ, सन्यासी थे। वराहमिहिर के अनुसार, वानप्रस्थ जैसे वन्यासन अर्थात ये लोग वन मे उत्पन्न कन्दमूल आदि पर जीवन व्यतीत करते थे (BJ XV1) तथा तपस्या करते थे, और सन्यासी जैसे भिक्षु, प्रवरांजित पारिव्रत, सुपरिव्रत और यति। यह वर्ण मिलता है कि सन्यासी पारिवारिक बन्धनो से मुक्त होते थे तथा अपना जीवन किसी एक निश्चित स्थान पर व्यतीत नही करते थे। उत्पल के अनुसार–आश्रम का अर्थ सन्यासी होता है। तपस्वी के विषय मे यह जानकारी मिलती है कि उनका सिर मुडा हुआ होता था तथा वे लाल रग के वस्त्रधारण (Kasayın, YY, XIII,14Ty, IX 15) करते थे। तपस्वीनी, भिक्षुनिक (bhıksunıka pravrgjıta LXXVII 9)[87] प्रवरजिता

86- मनु० 10 49 क्षत्रुग्रपुक्कसाना तुबिलौकावध बन्धनम्।
धिग्वणाना धर्मकाय वेणाना भाण्डवादनम्।।

87- cf Bj XXIV 16, which states that women born ın certaın contınuatıons of planets and stars will undoubtedly take to arcetie lıfe (pravrajya)

के विषय मे भी वर्णित है।

कायस्थ वर्ग - पूर्वमध्यकाल मे राजाओ द्वार पुरोहितो, मन्दिरो और अधिकारियो के नाम भूमि या भू–राजस्व का निरन्तर हस्तातरण होते रहने के चलते लिपिक या कायस्थ समुदाय का उत्थान और विकास हुआ। भूमिसमनुदेशन का लेख्य तैयार करने के लिए तथा भूमि, ग्राम और अनुदान मे दी जाने वाली राजस्व की क्रमश बढती मदो का लेखा जोखा रखने के लिए बहुत बडी सख्या मे लिपिक और अभिलेखपाल रखने पडे होगे। गुप्त काल से ही भूसम्पत्ति के बटवारे की विधि (कानून) चली। इसके कारण भूमि के टुकडो मे बटने की शुरूआत हुई और इसक चलते ही अलग–अलग प्लाटो के ब्योरे रखना आवश्यक हुआ। विधि ग्रन्थो मे सीमा–विवाद एक महत्वपूर्ण अध्याय है। अभिलेखो की सहायता के बिना आसानी से इन विवादो का निपटारा सम्भव नही था। आगे, सामान्तोपसामतीकरण के कारण कभी–कभी एक ही प्लाट के चार पाच दावेदार बन जाते थे। पहला उस पर स्वामी के रूप मे दूसरा स्वामी के अधीनस्थ के रूप मे तीसरा उप अधीनस्थ के रूप मे और चौथा वास्तविक कृषक के रूप मे, दावेदार हो जाता था[88] इसलिए गाव और जमीन का अभिलेख सावधानी से रखना होता था ताकि भूमि का विवाद, जो अवसर हुआ करता था, रोका और तय किया जा सके।

अभिलेख सम्बन्धी यह कार्य एक लिपिक वर्ग द्वारा सम्पन्न होता था जो अनेक नामो से जाना जाता था जैसे कि कायस्थ, करण करणिक, अधिकृत, अक्षरचण, पुस्तपाल, चित्रगुप्त, लेखक, दिविर, अक्षरचण, धर्मलेखिन, अक्षरचचु, अक्षपटलिक अक्षपटलाधिकृत आदि। जिस प्रकार वैदिक काल के सोलह प्रकार के पुरोहितो से एक ब्राह्मण वर्ग बना उसी प्रकार प्रारम्भ मे कायस्थ भी करीब करीब बारह प्रकार के

88- इण्डियन फ्यूडॉलिज्म, प ० 15-3-154

लिपिको और अभिलेख पालो से बना एक वर्ग था। कालक्रम मे अन्य प्रकार के अभिलेखपालो को भी कायस्थ कहा जाने लगा। प्रारम्भ मे उच्च वर्णों के साक्षर लोग जनसमुदाय की राजस्व और प्रशासनिक जरूरते पूरी करने के लिए कायस्थ या लिपिक के रूप मे बहाल किए जाते थे। कल्हण ने लिखा है शिवरथ नाम का एक ब्राह्मण कायस्थ अधिकारी के रूप मे बहाल किया गया था।[89] यह भी ज्ञात होता है कि लोकनाथ जो पिता के पक्ष मे ब्राह्मणवशी था, करण था।[90] लेकिन धीरे–धीरे विभिन्न वर्णों से आये इन लिपिको के अपने–अपने मूल वर्ग से वैवाहिक और अन्य सम्बन्ध विच्छिन्न हो गए और ये लोग इस नए समुदाय तक ही अपने सारे सामाजिक सम्पर्क रखने लगे। उन्होने वर्गाभ्यन्तर असगोत्र विवाह–प्रथा चलाई। वर्ण व्यवस्था मे कायस्थो के लिए स्थान खोजने की समस्या से ब्राह्मण स्मृतिकार (विधिनिर्माता) दुविधा मे पड गए और उन्होने कायस्थो को शूद्र और द्विज दोनो ही वर्णों से जोड दिया। चूकि कायस्थो की उत्पत्ति के विषय मे धर्मशास्त्र के वचन अस्पष्ट है, और ऐतिहासिक उदाहरण ऐसे नही है, जिनसे उन्हे किसी एक वर्ण मे रखा जा सके, इसलिए हाल मे कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इन्हे शूद्र और इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ब्राह्मण कहा है।

पेशेवर शिक्षित जाति के रूप मे कायस्थो के उदय से स्वभावत लिपिक और कातिब के रूप मे ब्राह्मणो का एकाधिकार नष्ट हो गया। मध्यप्रदेश मे चदेल और कलचुरि राजाओ तथा कर्णाटक और उडीसा के राजाओ के यहा कायस्थ मत्री थे। ब्राह्मणो को इससे रोष हुआ, क्योकि ऐसे उच्च पदो पर अधिकतर वे ही रखे जाते थे। वे कायस्थो से भी नाराज हुए क्योकि वे ही भूमिदान का अभिलेख रखने लगे जिनसे ये ब्राह्मण मुख्यत सम्बद्ध थे। लिपिक और अभिलेख पाल के रूप मे कायस्थो ने ब्राह्मणो को सदा तग किया होगा, जो दानग्रहीताओ मे भारी सख्या मे थे। इसलिये

89- काणे, पूर्वोद ध त, ii, 77।

90- ए०ई०, XV, स० 19।

ब्राह्मणो के ग्रन्थो मे कायस्थो का गुण वर्णन नही हुआ था। यद्यपि इनका सर्वप्रथम उल्लेख ईस्वी सन की चौथी शताब्दी मे ही स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने किया है।[91] लेकिन वहा भी इनका चित्रण प्रजापीडक के रूप मे ही है। बारहवी शताब्दी आते–आते कायस्थो को बदनाम करने की प्रवृत्ति पराकाष्ठा पर पहुच गई। इनकी निन्दा कल्हण की राजतरगिणी[92] की प्रिय विषय वस्तु है जिसकी पुनरावृत्ति थोडे से हेरफेर के साथ अनेक परवर्ती ग्रन्थो से भी हुई है।

दासता - भारत मे दासप्रथा का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से है। सम्भवत इसका प्रारम्भ–प्रौगतिहासिक काल मे ही हो गया था। समय और परिस्थिति के अनुसार भारतीय समाज मे अनेक प्रकार के दास हुआ करते थे। कौटिल्य ने ऐसे अनेक प्रकार के बातो का उल्लेख किया है जो अपनी कठिनाइयो और मजबूरी के कारण दास बन जाते थे –

(1) आत्मविक्रयी – (जो परिस्थितिवश अपने को बेचकर दासता स्वीकार करते थे)

(2) उदरदास – (जो अपना पेट पालने के लिए अपने को बेच देते थे)

(3) प्रेक्षपानुरूप दास – (जो अपने को बन्धक रखकर धन लेते थे)

(4) दण्डप्रणीत दास – (जो राज्य द्वारा अर्थदड से दडित होने पर और इस आर्थिक दड को न चुका सकने के कारण दास होते थे)

91- I, 322

92- ıv 620 एव आगे , vııı 560 एव आगे।

(5) ध्वजाहत्त दास — (जो युद्ध मे बन्दी होने के कारण दासता स्वीकार करते थे)

(6) दाय भाग मे प्राप्त दास — (जो दास दाय भाग के कारण दूसरे के पास हो जाते थे)

(7) गर्भवती दासी से उत्पन्न दास[93]

मनु ने भी सात प्रकार के दासो का वर्णन किया है-[94]

(1) ध्वजाहत्त — (युद्ध मे जीता गया)

(2) भक्तदास — (भोज प्राप्ति के लोभ मे बना हुआ दास)

(3) ग्रहज — (दासीपुत्र)

(4) क्रीत — (मूल्य देकर क्रय किया हुआ)

(5) दत्त्रिम — (किसी के देने से प्राप्त)

(6) पैत्रिक — (पिता की परम्परा से चला आता हुआ।)

(7) दडदास — (दड या ऋण आदि न चुका सकने के कारण)

नारद ने अन्य प्रकार के दासों का वर्णन किया है-

(1) प्राप्त किया हुआ दास (उपहार मे या अन्य किसी प्रकार प्राप्त किया हुआ)

93- अर्थशास्त्र, 2 13, आत्मविक्रयिण प्रनोदरदासाहितयौ
– प्रखेवानुरूप चास्य दण्डप्रणीत ध्वजाहत्त
ग्रहजातदायागतलब्ध दासी वा सगभौम

94- मनु०, 8 415,
ध्वजाहत्तो भक्तदासो ग्रहज क्रीतदात्त्रियौ।
पैत्रिको दण्डदास च सप्तैते दासमोनय।

(2) स्वामी द्वारा प्रदत्त

(3) ऋण न चुका सकने के कारण बना दास

(4) जुए मे दाव पर लगाकर हारा गया (पासे अथवा दाव पर अपने स्वामी द्वारा लगाकर हारा गया)

(5) स्वय दासत्व ग्रहण करने वाला

(6) अपने को दास बनाने वाला

(7) आत्मविक्रयी (अपने को बेचने वाला) दास।[95]

इन प्रकारो से ज्ञात होता है कि दास बनने के अनेक कारण रहे होगे। याज्ञवल्क्य और नारद ने यह मत व्यक्त किया है कि वर्ण के आधार पर और उसके अनुसार ही व्यक्ति अपने स्वामी का दास बन सकता था। उदाहरण के लिए ब्राह्मण के क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दास हो सकते थे, क्षत्रिय के वैश्य और शूद्र तथा वैश्य के शूद्र। किन्तु ब्राह्मण अपने से निम्न तीनो वर्णो का दास नही हो सकता था। इसी प्रकार न क्षत्रिय अपने से निम्न वर्णो का दास बन सकता था और न वैश्य अपने से निम्न वर्ण का।[96] अत इस विवरण से ज्ञात होता है कि दास का आधार भी वर्णगत था। कात्यायन के अनुसार ब्राह्मण किसी ब्राह्मण का भी दास नही हो सकता।[97]

दास तथा पूजी इन दो को समृद्धि तथा एश्वर्य के दो आवश्यक कारक माना गया था। प्राचीन काल मे दासता सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व था, भारत इससे अलग नही था। वराहमिहिर के अनुसार पुरूष दास

95- नारद०, V 38-39

96- वही याज्ञवल्वल्य 2 183

97- कात्ययन० 5 722

और स्त्री दास तथा मुख्यत निश्चित तारो तथा ग्रहो की स्थिति मे उत्पन्न कन्या दासी होती थी। गर्भवती दासी से उत्पन्न दास को गर्भदास कहा जाता था जो कि कौटिल्य, मनु तथा नाटक द्वारा वर्णित उदरदास के समान ही है।[98] दासो के पास अपनी निजी सम्पत्ति होती थी।[99] मेधातिथि के अनुसार स्वामी को अपने दास, उसकी पत्नी और पुत्र से अच्छा व्यवहार करना चाहिए। उसने लिखा है कि मनु ने जो यह लिखा है कि दास का भी सम्पत्ति पर अधिकार है।[100] उसका यह आशय है कि वह अपने स्वामी की अनुमति से उस सम्पत्ति का उपभोग कर सकता है। ध ान से खरीदे हुए दास अर्थात् क्रीत दास राष्ट्र की सम्पत्ति को बढाने मे महत्वपूर्ण योगदान देते थे।[101] ये लोग कमाई करने के लिए शिलप कला का सहारा भी लेते थे (antyavartı, BJ, XII 15, antyasılpa, BJ, XVIII 11) तथा निम्न कर्मो को भी करते थे (hıcakrt, BJ, XVIII 3), अन्य कर्म भी करते थे।[102]

विवाह - विवाह एक सर्वव्यापी और सार्वभौम सस्था है, जो सभी समाजो मे विद्यमान है किसी देश की सस्कृति का अध्ययन करने के लिए विवाह के महत्व को समझना आवश्यक है क्योकि सामाजिक सगठन पर इस सस्था का व्यापक प्रभाव पडता है। वश, कुल और परिवार की निरन्तरता विवाह–सस्था से ही बनी रही है तथा जीवन के विविध पक्ष उससे अनुप्राणित होते रहे है। सही अर्थो मे विवाह परिवार का प्रधान आधार रहा है। इन कारणो से विवाह को एक अत्यन्त उच्चकोटि का कार्य माना गया है। हिन्दू विवाह–सस्था मे धार्मिक विश्वास, स्थायित्व और सामाजिकता इसकी प्रधान विशेषताए है।

98- Arthasastra, III 13) Manu VIII 15, Naradua V 26
99- cf Arthasastra, Dasakalpa section
100- मेघातिथि टीका मनु 8, 416
101- cf Arthaptır ————bhrtakajanat, Bj X 1
102- LXVII, 26, 36, Bj, XVIII 1

हिन्दू मतानुसार पुत्र प्राप्ति द्वारा ही ऋषि, ऋण, देवऋण तथा पितृऋण से मुक्त हुआ जा सकता है।[103] यह केवल विवाह द्वारा ही सम्भव है। पत्नी पति की अर्द्धांगिनी समझी जाती थी। धार्मिक यज्ञो को सम्पन्न करने मे मनुष्य के साथ उसकी पत्नी का होना अनिवार्य बताया गया है। ऋग्वेद के अनुसार विवाह ही व्यक्ति को ग्रहस्थ बनाता है तथा देवताओ के निमित्त यज्ञ करने की योग्यता प्रदान करता है।[104] देवताओ के पूजन मे पति पत्नी एक दूसरे के सहायक माने गये है।[105] तैत्तिरीय ब्राह्मण मे उल्लिखित है कि पत्नी रहित व्यक्ति यज्ञ सम्पन्न करने का अधिकारी नही होता था।[106] शतपथ ब्राह्मण मे कहा गया है कि पत्नी पति के आधे भाग की पूरक है।[107] वस्तुत पत्नी को पाकर ही पति पूर्ण होता है।[108] अत पत्नी पति के बिना किसी धार्मिक क्रिया व बलिदान के योग्य नही थी।[109]

हिन्दू समाज मे विवाह एक अनिवार्य सस्कार है, जिसका उद्‌देश्य अत्यन्त पवित्र और गौरवशाली है। इसके माध्यम से मनुष्य अपने समस्त अपेक्षित कर्तव्यो और उत्तरदायित्वो का निर्वाह करता है।

विवाह का मुख्य उद्‌देश्य सन्तानोपत्ति, धर्म सम्बन्धी अधिकार तथा सासारिक सुख माना जाता था।[110] वराहमिहिर के अनुसार पुरूष धर्म, अर्थ, काम तथा सन्तान के लिए पूर्णत स्त्री पर निर्भर होता था।[111]

103- Taittiriya samhita, VI 3 10 5, Manu-Smriti, IX 106
104- ऋग्वेद, 8 30 ।
105- वही, 5 3 2 , 5 28 3 ।
106- तै०ब्रा०, 2 2 2 6,3 3 3 1, अयज्ञियो वा ए ायोऽपत्नीक ।
107- शा०प्रा०, 5 2 1 10, अर्धो दृ वा एव आत्मनो यज्जाया।
तस्माधवज्जाया तर्हि हि सवा भवति।
108- ऐ०ब्रा० 1 3 5 तस्मादपि पुरू ाे जाया वित्वा क त्सनतरमिनात्मान
109- cf satapatha Braahmana, V2,1 10, Taittiriya Brahmana
11 22 6 Manu, IX96
110- vide HDS, II, PP 428-29
111- तदर्थ धर्मार्थो सुतविशय सौरख्यानि च ततो LXXIII 4 ,
धर्मार्थकामाप VP, 15

धर्म - हिन्दू समाज मे धर्म का अत्यधिक महत्व है। वैदिक युग से यज्ञ की महत्ता और उसमे प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग अपेक्षित था। देवपूजन और यज्ञ क्रिया धर्म का आधार स्तम्भ रही है। सभी सस्कार यज्ञ हवन और देवपूजन प्रभावित रहे है। इसके बिना सस्कारो की सम्पन्नता अधूरी मानी गई है। अत विवाह सस्कार भी धर्म के निर्देश पर सम्पन्न किया जाता रहा है। विवाह का सर्वप्रथम उद्‌देश्य है। धार्मिक कृत्यो का सम्पादन, जो कि पत्नी के रहने पर ही व्यक्ति कर पाता है। बिना पत्नी के व्यक्ति का कोई भी धार्मिक कृत्य पूरा नही माना जाता। इसलिए सभी धार्मिक कार्यो मे पत्नी की उपस्थिति आवश्यक थी। धार्मिक कार्यो मे यज्ञो का सर्वाधिक महत्व है। यज्ञ पाच प्रकार के कहे गये है– ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ और अतिथि यज्ञ।

पुत्र की प्राप्ति - विवाह का दूसरा उद्‌देश्य है पुत्र की प्राप्ति मनुष्य की स्वभावत बलवती आकाक्षा होती है। सन्तान सम्बन्धी यह आकाक्षा अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद मे एक स्थल पर कहा गया है कि पाणिग्रहण उत्तम सन्तान के लिए था।[112] विवाह सम्पन्न होने पर पुरोहित वर–वधू को अनेक पुत्र पैदा करने का आशीर्वाद देता था।[113] ऐसे आशीर्वचन की मनुष्य सदा से अपेक्षा और आकाक्षा रखता रहा तथा सन्तानोपत्ति के लिए अनेक धार्मिक कृत्य भी सम्पन्न करता था। क्योकि हिन्दू समाज मे पुत्र की अपार महत्ता है। पुत्र के उत्पन्न होने से पिता अमर होता है तथा पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। पिता के लिए पुत्र आलोक है तथा ससार सागर से पार करने की अतितारिणी (नौका) है।[114] पुत्र हीन व्यक्ति का समाज मे कोई स्थान नही होता था। इसलिए पुत्र को दूसरा लोक बनाने वाला भी कहा गया है।[115] मनु

112- ऋ० 10 85 36

113- वही 10 85 45

114- ऐ० ब्रा० 33 1-4।

115- तैत्ति० ब्रा०, 3 7 7 10, वसिष्ठ ध०, 17 2।

के अनुसार पिता पुत्र से स्वर्ण आदि उत्तम लोकों को प्राप्त करता है। पौत्र से उन लोको मे अनन्त काल तक निवास करता है तथा प्रपौत्र से सूर्य लोक को प्राप्त करता है।[116] पुत्र के उत्पन्न होने से पिता को दस अवश्मेघो के स्नान का फल प्राप्त होता था।[117]

रतिसुख - विवाह का एक उद्देश्य रति सुख भी था जिसे प्राचीन व्यवस्थाकारो ने आवश्यक बताया है जो व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक सतुलन को बनाये रहता है तथा वह स्वस्थ और मच्चरित्र आधार पर समाज का निर्माण करता है। हिन्दू समाज मे हीन ही अपितु सभी समाजो मे विवाह का यही स्वभाविक उद्देश्य है। परन्तु इसे तीसरा स्थान प्रदान किया गया है। इससे स्पष्ट है कि यह विवाह का कम अपेक्षित उद्देश्य है। कौटिल्य का मत है कि धर्म और अर्थ से विरोध न रखने वाले काम का सेवन करना चाहिए।[118] मनु ने धर्मविरूद्ध काम का परित्याग करने की सलाह दी है।[119] विवाह के उद्देश्य व्यक्ति को अत्यन्त शालीन और सदाचारी बनाते है तथा उसे नियमित और नियत्रित करते है। यदि ऐसा न हो तो समाज अनियन्त्रित और अनियमित हो जायेगा तथा उसका नैतिक पतन हो जायेगा अत विवाह नामक सस्था व्यक्ति को सन्मार्ग का दिग्दर्शन कराती है।

विवाह सम्बन्ध स्थापित करने मे वर–वधू के कुल कर निर्धारण सबसे पहले किया जाता था। वर वधू के निर्वाचन मे एक निश्चित सीमा तक वर और कन्या का उत्तम कुल और परिवार का होना आवश्यक माना गया था। आश्वलायन के अनुसार

116- मनु०, 9 137, पुत्रेण लोकाजयति पौत्रेणानन्त्यम नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रहनस्याप्नोति वि टपम्।।

117- ब्रह्मपुराण, 104 7-14।

118- कौ०आ०, 1 7,धर्मार्थविरोधेन काम न सेवेत।

119- मनु०, 4, 176, परित्यजे दर्थ कामौ यौ स्थाता धर्मवर्जितौ।
धर्म चाप्यमुखोदक लोकविक्रु टतमेव च।।

सर्वप्रथम मातृ और पितृ दोनो पक्षो से कुल की परीक्षा करनी चाहिए।[120] विष्णु के अनुसार तो ब्राह्मण का केवल कुल देखना चाहिए, सक्रमपद वेद का अध्ययन नही, क्योकि कन्यादान और श्राद्धकर्म मे विद्या कारण नही है।[121] याज्ञवल्क्य का मत है कि दशपुरूष विख्यात श्रोत्रियो का महाकुल, अर्थात् जिस कुल मे दस पीढियो तक निरन्तर वेदाध्ययन हो, वह कुलीन कहलाता था। इस पर विज्ञानेश्वर ने भाष्य करते हुए कहा कि 'पुरूष का अर्थ है पीढी। दस पीढी मातृ–पक्ष से तथा पाच पितृ–पक्ष से विख्यात परिवार को कुलीन कहा जाता है।[122] वस्तुत कुल का निर्धारण प्रजनन के आधार पर होता था और यह माना जाता था कि सन्तान की उत्पत्ति कुल और वश के अनुरूप होती है। कुल, यश, प्रतिष्ठा, सदाचार, ज्ञान, सम्पत्ति आदि का मानदड होता था। जिस कुल मे व्यवहार, सदाचार, विचार आदि नही थे वह दुष्कुल कहा जाता था और उसका सदस्य दुष्कुलीन।

प्राचीन इतिहासकारो के अनुसार किसी भी व्यक्ति को अपनी पुत्री का विवाह बुद्धिमान[123] अच्छे परिवार के सच्चरित्र, विद्वान स्वस्थ और गुणवान युवक के साथ करना चाहिए।[124] मनु, यम आदि स्मृतिकारो के अनुसार उत्कृष्ट, (श्रेष्ठ, अभिरूप, सुन्दर) और योग्य वर मिल जाये तो कन्या की अवस्था विवाह–योग्य न होने पर भी उसका विवाह कर देना चाहिए।[125] शील, कुल (वश), सुदरता, यश, विद्या (विद्वता), सनाथता (मा–बाप या अन्य बधु–बाधवो की विद्यमान), वित्त (धनाढ्यता) जैसे सात गुण वर के लिए आवश्यक माने गये है। धर्मसूत्रो मे वर के लिए उसका अखड

120- आ० ग्रा०सू०, 1 5, कुलमग्रे परीक्षेत् मात त पित चेति।

121- मनु० 4 244, उत्तमैरूत्तमैर्नित्य सम्बधानाचरेत्सह।
निनी J कुलमुत्क मिधमानधमास्त्यजेत्।
वि णु०वी०मि० स० भा० 2, प ० 588 पर उद्धत।

122- याज्ञ० 1 54, दशपुरू ाविख्याताच्छोत्रियाणा महाकुलात्।, विज्ञाने वर का भाष्य।

123- आ वलायन ग्रहसूत्रा 1, 5, 2

124- आपस्तम्ब ग्रा० सू० 3, 20

125- मनु० 9 88 उत्क टायामिरूपाय वराय सदशाय च।
अप्राप्तामति ता तस्मै कन्या दघाघायाविधि ।। यम स्म ति० 1,1 78

ब्रह्मचारी होना भी एक गुण स्वीकार किया गया है, जो सम्भवत उसके प्रधान गुण के रूप मे था। उसके चरित्रगत वैशिष्टय का प्रकरण उसका ब्रह्मचर्य माना गया है।[126] पति के गुणो पा जोर देते हुए कहा गया।[127] वर की अन्य योग्यताओ के विषय मे वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसकी आयु की परीक्षा भी होनी चाहिए, पीछे अन्य लक्षणो की। आयुहीन मनुष्यो के अन्य लक्षणो से क्या लाभ।[128]

विवाह के योग्य कन्या मे भी अनेक गुणो की प्रधानता आवश्यक बताई है। कन्या को गुणी, शीलवान, मागलिक शरीरिक, सौन्दर्य से युक्त[129] होना चाहिए। वधू को कुवारा (कुमारी[130], कुमारिका[131], कन्या[132] कन्यका[133]) तथा युवा (यौवनास्था, VP, 8) होना चाहिए। वराहमिहिर के अनुसार कन्या, सुन्दरता आकषर्ण वस्त्राभूषण तथा वार्ता द्वारा पुरूष के हृदय को वश मे कर लेती थी इससे ज्ञात होता है कि विवाह के सूय तक कन्याऐ शारीरिक तथा मानसिक स्थिति से विवाह के योग्य हो जाती थी।

ब्रहत्सहिता के कन्यालक्सन्ध्या मे दिया गया कन्या के रूप रग का विवरण हमारे मत को सुनिश्चित करता है। (ch LXIX)। सस्कृत ग्रन्थो की नायिकाये व्यस्क होती थी जो कि प्रेम के क्रिया कलापो (क्रीडाओ) को किया करती थी। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मशास्त्र के लेखको के द्वारा व्यस्कता के पश्चात् विवाह का निषेध उनका अपना व्यक्तिगत मत था। न कि वास्तविक स्थिति थी।

126- बौ०ध० सू० 4 1 1, मनु० 3 2, याज्ञ० 1 52,
अविलुत ब्रह्मचर्यो लक्षण्या स्त्रियमुद्वद्वेत्।
अनन्थपूर्विका कान्तामसपिडा यवीयसीम्।।

127- गुणै समस्तैरपि सम्प्रयुक्ता कन्येव यात्रा विगुणाय दत्ता।
करोत्यकीर्ति सुखक्तिहानि पात्रान्तरज्ञानजस्थ दातु YY, II 14

128- वी०मि०स० भा० 2, प ० 752 पूर्वआयु परीक्षेत् प चाल्लक्षणमादिशेत्। ————

129- See LXIX 1-9 for auspicious characteristics and LXIX 15 23 , LXXVII 16-18 for inauspicious ones Also cf visnu-purana III 10 16-23, III 4 ff

130- LXIX 1

131- VP, 64

132- Ib, 10, 13, YY, 11 14

133- VP, 8, 20

लोगो का विवाह सामान्यत अपनी जाति मे होता था,[134] किन्तु पाराशव, उग्र, निषाद, चाण्डाल, स्वपाक आदि शब्द जो कि अर्न्तजातिय विवाह से उत्पन्न सन्तान के लिए प्रयुक्त किये जाते थे[135] यह प्रमाणित करते है कि इस काल मे अर्न्तजातिय विवाह का प्रचलन था। इस प्रकार के विवाह को सिद्ध करने के प्रमाण हमे साहित्यो शिलालेखो अभिलेखो आदि से प्राप्त होते है। उदाहरण के लिए वाकाटक वश का रूद्रसेन II जो कि विष्णुवृद्ध गोत्र का एक ब्राह्मण था, ने चन्द्रगुप्त II की पुत्री प्रभावती गुप्त से विवाह किया था। कदम्ब शासक काकुस्त्थवर्मन मयूरशर्मन, इस वश का ब्राह्मण सस्थापक था, का चौथा वश था, ने अपनी पुत्रियो का विवाह गुप्तो तथा अन्य शासको से किया था।[136]

वैवाहिक सस्कार - वराहमिहिर वरण विवाह यात्रा, मधुपर्क और परवर्ती सस्कार जो कि अग्नि के समक्ष सम्पन्न किये जाते थे, का उल्लेख करते है। बरातियो के साथ वधु के घर जाने पर वर का जो सत्कार सम्मान किया जाता था उसे मधुपर्क कहा जाता था। इस आव भगत के बाद वर और वधू को एक दूसरे के समक्ष लाकर दर्शन कराया जाता था, जिसे परस्पर समीक्षण कहते थे। पिता आमन्त्रित वर की अपनी कन्या दान मे देता था और वर से यह आवश्वासन प्राप्त करता था कि वह पत्नी का कभी परित्याग नही करेगा इस प्रक्रिया को कन्यादान नाम दिया गया था। विवाह के सभी कृत्य अग्नि के सम्मुख सम्पन्न किये जाते थे, जो साक्षी के रूप मे विवाह को

134- Malauka in the Malavikagnimitra, sakuntala in the Abhijana sakuntala, Malati in the Malati-Madhava and Rajyastri in the Harsa-caria may be named in this connection

135- cf vasistha-dharmosutra, XVII 18, Manu smriti, IX 94, Baudhs yana dharma sutra, IV 1 12, Visnu purana, III 10 16 Also cf HDS, II, pp 439-446, A S Altekar, position of women in Hindu civilization, pp 49ff

Varahamihira mentions vrsali-pati as the recipient of daksina the propitiation of satura (By, XVIII 18-20) Parasara defines vrsali-pati as a Brahmana marrying a women who has attained puberty (parasara-smriti, VII 8-9) Varahmilira does not seen to have employed the word in its technical case It may refer to the marriage of a Brahmana with a sndra women

136- The lowering of the marriagreble age of girls was accelerated, among othe thing, by the desifre to mainlain aplotute physical chastity of women and to avoid even their theoretical enjoyment by the divine husbands, some gandharva and agni Cf samvarta, verses 64, 67, HDS, II, P443, Altekar, Position of women, pp 57-8 varahamihir refers to this my in slightiy different words -

सोमस्तासामदाच्छौच गन्धर्व शिक्षिता गिरम्।
अग्नि च सर्वभक्षित्व तस्मान्नि कसमा स्त्रिया।। LXXIII 7

अटूट और अविच्छेद रूप प्रदान करती थी। इसके अन्तर्गत होम किया जाता था तथा आहुति द्वारा अग्नि का आशी प्राप्त किया जाता था। इसे अग्निस्थापन और होम कहते थे। वर द्वारा वधू के हाथ पकडने के सस्कार को पाणिग्रहण सस्कार के अन्तर्गत निहित था विवाहपटल के अनुसार वर विवाह के पूर्व कुछ मागलिक कार्य जैसे कौतुकमगल करता था।[137] हर्षचरित मे ग्रहवर्मन का विवाह के पूर्व स्थानीय सस्कारो का पालन करते हुए वर्णन है।[138] यह प्रथा अभी भी पजाब मे प्रचलित है जबकि मेरठ मे जहा स्थानीय सस्कारो का पालन होता है, परिवर्तित हो गई। इसी प्रकार वधू को इन्द्राणी की पूजा करनी होती थी। नदी के किनारे अथवा जहा स्त्रिया स्नान करती थी वहा मिट्टी की इन्द्राणी की मूर्ति बनाती थी, जिसकी, वधू पूजा करती थी जो वह अपने घर मे ले आती थी तथा दिन मे तीन बार प्रात काल, अपराह्न तथा सायकाल विवाह होने जाने तक पूजा करती थी (VP, 9-14)। कालीदास के रघुवश से इन्दुमती के स्वयवर के विषय मे ज्ञात होता है। यह सस्कार बाण के हर्षचरित मे भी वर्णित है। आतस्तम्ब ग्रहयसूत्र के टीकाकार सुदर्शनचार्थ के अनुसार इन्द्राणी की पूजा का सस्कार बिना मन्त्रो के सम्पन्न होता था। यह सस्कार महाराष्ट्र मे अभी भी माना जाता है। Varahmıhır further recommends the observance of local practıces.[139]

137- क तकौतुकमगलो वरो मधपर्काधशनादनन्तरम्।।
ज्वलितग्निसमझामगना यदि वाप्नोति शुभाशम तत ।। Vp, 96

138- परिहासस्मेरमुखीभि च नारीभि कौतुकग हे यद्वत्
कार्यते जामाता तत् तत् सर्वमतिपेश ल चकार
क तपरिणयानुरूपवेशपरिग्रहो ग्रहीत्वा करे वधू निर्जगान।

139- देशाचारस्तावदादौ विचिन्त्या।
देशे देशे या स्थिति सैव कार्या।
लोकद्वि ट पण्डित वर्जयन्ति।
दैवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात्।। VP, 79।

A master dıvıner as he was, varahamıhıa naturally streser astrologıcal factors ın selectıng an auspıcıous moment for connubıal sıtes As theses consıderatıons have an ımportant bearıng on the then practıces, we may set them out here 'Marrıge' says our author, should be celebrated ın the constellatıons Rohını, the three uttaras (ı e uttarasadha, uttara bhadrapada, uttaraphal gunı), Revatı— ———took place ın uttaraphalgunı (Mahabharata, Adı, VIII 16) Also of HDS II DR 511-515

बहुविवाह - प्राचीन काल मे भारतीय इतिहास मे बहुविवाह का प्रचलन था वैसे तो सामान्यत लोग एक ही विवाह करते थे किन्तु विशेष परिस्थितियो मे अमीरो मे बहुविवाह का प्रचलन अधिक था धर्मशास्त्रो के अनुसार पुरूष एक से अधिक पत्निया रख सकता था। तैत्तिरीय सहिता मे कहा गया है कि "एक यूप मे दो रशनाऐ बाधी जा सकती है। अत एक पुरूष दो पत्निया रख सकता है लेकिन एक रशना दो यूपो मे नही बाधी जा सकती इसलिए एक पत्नी दो पति नही रख सकती।[140] साधारणत चार प्रकार की पत्नियो का विवरण धर्मशास्त्रो मे दिया गया है– 'महिषी (प्रधानरानी) 'परिवृक्त' (प्रभावशाली) वावार्ता (व्यक्तिगत रूप से प्रिय) तथा 'पालागली' (सबसे निम्न व्यक्ति की कन्या)।[141]

इक्ष्वाकु वश - शासक हरिश्चन्द्र राज्य को कोई पुत्र नही था, जबकि उसकी सात पत्निया थी।[142] मनु के कई भार्याऐ थी और याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी और कात्यायानी नामक दो विदुषी पत्निया थी।[143]

वैश्य - राज्य को अधिकाधिक कर प्रदान करने वाला वर्ग वैश्य ही था, जो अपनी वस्तुओ के विक्रय की आय मे से राजा को कर देता था। वैश्य अपने लाभ मे से राजा को कर के रूप मे बीसवा भाग मिलता था।[144]

कुछ ऐसी वस्तुए थी जिन्हे वैश्यो के लिए बेचना वर्जित था। मद्य, मास लोहा और चमडा जैसी वस्तुए बेचना उनके लिए निषिद्ध किया गया था।[145]

140- तै० स०, 6 5 4 1 एकस्मिन्यूपे है र ने परिव्ययति तस्मादेको द्वै जाये विन्दते।
यन्नैका र ाना इयोर्चपयो परिव्ययति तस्मार्नेका द्वौ पति विन्दते।।

141- श०ब्रा० 5 2 3 1 10, 13 4 1 7, चलस्त्रो जाया उपक्लृप्ता भवन्ति।
महिशी वात्राता परिवृक्ता पालागली।।

142- मनु० 8 398, शुल्कस्थानेशु कुशला सर्वपर्व्याचक्षणा ।
कुर्युरर्थ यथापण्य ततो विश न पो हरेत्।।

143- महाभारत, 12 295 5-6 मद्यमासोपजीव्यञ्च विक्रय लोहचर्मण ।
अपूर्विणा न कर्तव्य कृतपर्व तुल्यतो महान।।

144- अभिधानचिन्तामणि, 3 894, शूद्रोद्रन्त्यवर्णो वृशल पद्य पजोजधन्यज ।

145- शर्मा शूड्राज इन एशिएट इण्डिया, द्वितीय सस्करण 1980

शुद्र - समाज मे शूद्र का स्थान अत्यन्त निम्न था। हेमचन्द्र ने शूद्रो के छह नाम निर्दिष्ट किए है शूद्र, अन्त्यवर्ण, वृषल पध, पञ्ज और जघन्य।[146] वह पतित तथा हेय भी माना जाता था।[147] मनु का कथन है कि श्रद्धायुक्त होकर अपनी अपेक्षा नीच व्यक्ति (शूद्र) से भी उत्तम विद्या ग्रहण करनी चाहिए।[148] मेधातिथि का भाष्य है कि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को आवश्यकता पडने पर नीच शूद्र से भी निरन्तर श्रद्धापूर्वक मोक्ष–धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।[149] कुछ समय पश्चात् शूद्रो की स्थिति अत्यन्त सकुचित और दयनीय थी। वे अनाथ और दास के सम्मिलित रूप थे। अधिकार और प्रतिष्ठा से पूर्णत वचित थे। उनकी तुलना पशुओ से की गई थी।[150] वाणिज्य–व्यापार उद्योग और पशुकर्म करने के लिए उन्हे अनुमति मिल गई थी।[151]

वैवाहिक जीवन- एक सुखी एक समूह वैवाहिक जीवन के लिए यह आवश्यक था कि पति पत्नी अपने व्यक्तित्व को पूर्णतया विलीन कर दे। यदि एक पत्नी अपने पति की इच्छा के विरूद्ध कार्य करती है तो वह समाज मे घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। और यदि पत्नी परिवार की समृद्धि मे वृद्धि करती है तो उसे उच्च नैतिक आदर्श वाली समझा जाता था। वैवाहिक जीवन का मुख्य उद्देश्य सन्तान की प्राप्ति तथा इन्द्रियो–सुख ही माना जाता था। पुत्र को पिता का ही प्रतिरूप माना जाता था।

वराहमिहिर ने स्पष्ट सुझाव दिये है कुछ प्रकार की स्त्रिया जैसे धोबिन, मालिन,

---

146- मनु० 2 238, श्रद्धधान शुभा विद्यामाददीतावरादयि।
अन्त्यादपि पर धर्म स्त्रीरत्न दु कुलादपि।

147- मेधातिथि, मनु 2 238, ——— प्राप्य ज्ञान ब्राह्मणात्सत्रिया–
ईश्याच्छूदादयि नीचादभीस्ण श्रद्धातत्य,
श्रद्धधानेन नित्यम्। न श्रद्धिन प्रति जन्मम त्युविशेषता।

148- बौ० ध० सू० 2 10 19 1-6

149- वही, 12 292 2-4

150- ऐ०ब्रा० 12, 11, तस्मोदको वहवीर्जाया विन्दते।
तस्मादेकस्थ वह्वयो जाया भवन्ति नैकस्ये वह्व सह्पतय ।।

151- मै०स०, 1 58 , व हदारण्यक उपनिषद 4 5 1-2

दुष्चरित्र औरते, ये परिवार को भ्रष्ट कर सकती है।[152] इसी प्रकार की वर्णन वात्सायन के कामसूत्र मे भी मिलता है।[I 5, 37-39, 111 39, 38, V4 42-62][153]

सतीप्रथा - वराहमिहिर के अनुसार सती शब्द की व्यजना इसके ऐतिहासिक विकास, प्रचलन और प्रसार से है, जिसमे मृत पति के प्रति विधवा स्त्री का अनुपम अनुराग, त्याग और बलिदान परिलक्षित होता है। सती होने वाली स्त्री से कोई पुरूष प्रशसा पूर्ण शब्द केवल उसी के लिए प्रयुक्त नही कर सकता था जब वह मृत पति के साथ चिता पर बैठी हो।[154] वात्सायन[155] तथा कालीदास[156] का भी यही मत है परन्तु बाण ने उत्सुकता पूर्वक इसका विरोध किया है।[157]

सम्बन्ध विच्छेद-पति पत्नी के सम्बन्ध विच्छेद का तात्पर्य है कि पति और पत्नी के वैवाहिक सम्बन्ध को सामाजिक, धार्मिक और वैधानिक रूप से समाप्त कर दिया जाये। यह ज्ञात होता होता है कि स्त्री पति द्वारा परित्यक्त कर दी जाती थी। (BJ, XXIV 8, 9)

इतिहासकारो के अनुसार जो पुरूष अपनी निर्दोष पत्नी को त्याग देता था उसे पाप का भागी समझा जाता था तथा उसे 6 महीने गधे की खाल ओढकर भिक्षा द्वारा जीवन पालन करना पडता था।[158] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार पाप करने वाले को

152- भिक्षुणिका प्रव्रजिता दासी घात्री घुमारिका रजिका।
मालाकारी दुष्टाङ्गना सखी नापिती दूत्य ।।
कुलजनविना ाहेतुर्दूत्यो यस्मादत प्रयत्नेन।
ताम्य स्त्रियोऽडमिरक्ष्या व ाय ाेमानव द्ध्यर्थम् ।।LXXVII 9 ।।

153- cf sankha cited by vijnanesvara on yajnavalkya, 1 81 and by Apararka on yajnavalkya 1 83 HDS, II, p 564, fn 1311 cf Arthasastra, I 10 7-8 , 1 20 18, V1 9, 50, V2 52, padma-prabhrtaka (caturbhani edited by motichandra), pp 29-30, 32 ff , ubhayabhisarika (ibid), pp 129-33

154 पुरूष चतुलानि कामिनीना कुरूते यानि रहो न तानि पश्चात्।
सुक तज्ञतायाङ्गना गलासूनवगूह्य प्रवि ान्ति सप्तजिह्वम्।। [LXXIII 16 cf शुक्रनीति IV4 29]

155- H Chakladar, Social life in Ancient India,pp 129-130

156- Kumara sambhava, Iv, 21-2, 33-6, 45

157- Yad = ctad = anumaranam namatad = atinisphalam, kadambri, purvabhaga In Harsacarita (V) we see yasomati burning he self before, her husband, death because she wanted to die as

158- बहिलौम्ना तुशण्मासान् बेब्टित खरचर्मणा।
दारातिक्रमणे मिक्षा देहीत्युक्त्वा विशुध्यति।। [LXXIII 13]
The reading in the printed editions is daralikramine, which it is proposed to change in to daratikramine for the saker of better meaning It would then also accord with the Apastamba-dharmasastra passage (quoted below) on which our verge is based

सात घरो से भिक्षा मागना पडती थी।[159] वराहमिहिर ने स्पष्ट किया है कि यदि स्त्री और पुरूष दोनो की बराबर गलती होती थी तो भी पुरूष अपनी गलती नही मानता था।(LXXIII 12)

विधवा पुर्नविवाह - विधवाओ के अनेक उदाहरण मिलते है।[160] एक स्थान पर एक स्त्री का वर्णन मिलता है जो बाल्यावस्था मे ही विधवा हो गयी थी। (balye vıdhava, Bj XXIV), विधवाओ का पुर्नविवाह ब्राह्मणो द्वारा निषेद किया जाता था अर्थात ब्राह्मण विधवा पुर्नविवाह के पक्ष मे नही थे परन्तु वृहत्सहिता मे कई स्थानो पर विध ावापुर्नविवाह तथा उनके पुत्रो का वर्णन मिलता है। (Punarbhu,[161] XXXI 3,Bj, XXIV 4,9) (Bj XIV 2)

सामान्य विचार-एक पुत्री को पुत्र की अपेक्षा समाज मे कम सम्मान दिया जाता था। जो स्त्री केवल पुत्रियॉ ही जन्म देती थी उसे लोग हीन भावना से देखते थे।[162] कुद सभ्य परिवार मे पुत्रियॉ को भी शिक्षा दी जाती थी। उनमे से कुछ उच्च शिक्षा भी ग्रहण करती थी। वराहमिहिर ब्रह्मवादिनी स्त्रियो का सभी विज्ञान मे प्रवीण होने का सकेत देते है। (Bj, XXXIV 15) धार्मिक साहित्यो के अनुसार ब्रह्मवादिनी नैषाथिक के समान आजीवन ब्रह्मचारी रहती थी।[163] वराहमिहिर कहते है कि स्त्री को भाग्य धन एव एश्वर्य की देवी माना जाता था। स्त्री द्वारा की गई गलतियो का फैसला पुरूष किया करते थे परन्तु बाद मे स्त्रिया गुणो मे पुरूष से उत्तम समझी

159- दाख्यतिक्रमी खराजिन बहिर्लोम परिधाय दाख्यतिक्रमिणेभिक्षमिति
सप्तागाराणि चरेत्, साश्वशन्ति शमासान्। Apdstamba-dharmasutra, 1 28 19

160- LXXXV 79 , VP, 33,49,59, etc

161- Punarbhu ıs varıously defined ın dıfferent works, utpala takes ıt to mean arenarrıed women whose first marrıage was not consummatd alcsata-yomıtrad = yapunar = uhyate sa punarbhuh (on XXX1 3) Vastsyayana, who does not contemplate a second marrıage for women, defines punasbhıa a wıdow, who beıng of weak character and unable to control here desıres, associates herself wıth a man seakıng pleasure and ——————

162- L II 70, VP, 34, 69

163- The whole of the chapter LXXII styled strı-prasamadhyaya contaıns ınterestıng remarks on women hood

जाने लगी। पुरूष एक पत्नी मा तथा सन्तान के लिए स्त्री पर पूर्णतया आश्रित होता था। स्त्री मे अत्यन्त साहस तथा सहनशीलता होती थी। (LXXIII 4,6,11,14)

भक्ष्य और अन्न - भक्ष्य और अन्न विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थो के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द थे। उत्पल के वर्णनानुसार मोदक, लेपिक और अपुय भक्ष्य के उदाहरण है तथा ओदन और पयास अन्न के। यह ज्ञात होता है कि सामान्यत ये ठोस भोज्य पदार्थ थे।[164]

अनाज - चावल के कई पकार मिलते थे जैसे साली, ससटिका, यवक। जौ और गेहूँ तत्कालीन लोगो के मुख्य अनाज थे। दाले कई मिली जुली रूप मे होती थी जैसे सेम, चना मटर Ervum Hersutum, Dolichos uniflorus विभिन्न प्रकार के तेलो के विषय मे जानकारी मिलती है।[165] जैसे सीसम का तेल तथा अलसी का तेल जिसे भोज्य पदार्थ को बनाने मे प्रयोग किया जाता था।

भोजन को मसालेदार भी बनाया जाता था जिसके लिए नमक (लवण)[166] सेधा[167] बडी मिर्ची (पिपली), काली मिर्च (मरिका), सोठ इलायची (Suksmaila), जीरा तथा जायफल प्रयुक्त होता था।[168] छोटी इलायची और लौग के विषय मे यह जानकारी मिलती है कि यह दक्षिण पश्चिम मे सागर के तट पर उपजाई जाती थी (XXVII 5)[169] ग्रन्थो मे यह वर्णित है कि तीखा और मसालेदार भोजन आखो के लिए हानिकारक होता था।(LXXV 12)।

दुग्ध उत्पादन -सामान्य पच्य भोजन मे दूध के उत्पादनो का एक महत्वपूर्ण स्थान

164- Panini walkes similar distinction, vide V S Agrawala, India as known to Panini, p 101
165- X V G; XVI 19, XI 8, XLI 3
166- X 8, XV 9, 25, XVI 7, XXVIII 4, XL 6, LIII 122, LXXV 11 etc
167- XVI 24, L 32
168- L 15, LXXVI 32, 33
169- According to utpala, the chapter containing this ——————

था। शक्तिवर्धक द्रव्यो के सन्दर्भ मे दुग्ध एक महत्वपूर्ण पदार्थ माना जाता था।[170] गाय के दूध[171] तथा बकरी के दूध का उपयोग भी होता था (LXXV 9)। दूध से बने खाद्य पदार्थों को मीठा बनाने के लिए उसमे शक्कर मिलाई जाती थी। (LXXV 5)। दूध के उत्पादनो मे मुख्यत –

(1) दही[172]	–	मुख्य रूप से गाय के दूध से बनता था। (YY VII 16)
(2)तक्र (takra)	–	ये एक चौथाई[173] या आधे[174] पानी मे मक्खन युक्त दूध मिलाकर बनाया जाता था।
(3) मट्ठा	–	(XLIX 26)–ये बिना पानी का मक्खन युक्त दूध होता था।[175]
(4) नवनीत (LXXX 4)	–	ताजे मक्खन युक्त दही को फेट कर यह निकाला जाता था।[176]
(5) घृत[177] अज्य[178]	–	ये दही को मथकर निकाले हुए मक्खन को पकाकर निकाला जाता
सर्पिषा[179](saipis)		था जो खाद्य पदार्थों को तलने के लिए प्रयुक्त होता

170- L 31, LIV 7, CIV8, XVII 23, XXXIV, 4, etc
171- cf XIX 5, XXXII 29 XLIV7, XLV6,
172- IX 45, XXX.18, XLII 60, XLIV6, XLVII 35, LVIII 8, LXXVIII 7 LXXX.5, LXXXVI 14, XCII 8, LXXXV45, XCIV22
173- AMARA, 11 9 53, Takram Pada-jalam proktam caraka, vol VI, p 331
174- Susruta, sutrasthana, xlv 85 According to Hemodri, the commentator of the Astangasangraha, takra denotes churned curds, - mathilam dadhi takram, caraka, vol vi, p 345
175- Susruta, sutrasthana, XLV 86, Amara, 11 9 53
176- Amara, 11 9 52
177- V60j XVI 19, xli 5, XLIX, 21, LIII.108, LIV7, LXXV9, XCVI 10 etc
178- XLVII 32, L 37, LVIII 12, LXXV6, etc
179- XLVII 50, LXXV 8 Great sanctity was attached to ghee and it was used in ceremonial bath-
आज्य तेज समुद्धि टमाज्य पापहरपरम्।
आज्य सुराणामाहार आज्ये लोका प्रतिष्ठिता ।।
भौमान्तरिक्ष दिव्य वायत्ते कल्मशमागतम्।
सर्व तदाज्यसस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छत् । XLVII 52-3 ।।

था। (LXXV 9)

(6) पय सर्पिषी — ताजे दूध से मक्खन निकाला जाता था, यह तलने के (Payahsarpıs (LXXV 4) लिए प्रयुक्त होता है।

मिष्ठान- वराहमिहिर ने अनेक मिष्ठान पदार्थो का वर्णन अपने ग्रन्थो मे किया है-

(1) मधु[180] — मधु छोटी मक्खियो द्वारा बनाया जाता है जैसे (ksudıa) क्षौद्र। मक्षिक (maksıka) तथा सुश्रुत (susruta) (sutrasthana, XLV 133) मधु की आठ मे से दो प्रकार है।

(2) गुड[181] — इससे विभिन्न प्रकार के पदार्थ बनाये जाते थे।

(3) फनित (Phanıta) (XLI 5)- यह शक्कर का गाढा घोल होता था।

(4) शर्करा–(LXXV 5) — यह साफ की हुई शक्करा होती थी जो सफेद रग की होती थी इसे सीता (LXXV 6, LXXVI 11) भी कहते थे।

त्रिमधुर - उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि मुख्यत तीन प्रकार के मिष्ठान होते थे

(1) साफ किया गया मक्खन

(2) मधु

(3) शक्कर

180- Monnıer-wıllıams, sanskrıtı - Englısh dıctıonary P 375

181- X 8, XVI 13, XL 4, XLII 38, LXXXVIII 1

भोज्य पदार्थो के प्रकार - ग्रन्थो और साहित्यो से तत्कालीन समाज मे जो भोज्य पदार्थ बनाये जाते थे उनका वर्णन मिलता है। जैसे –

(1) **ओदन** - (XLVII 30, LVIII 8, YY, VI 12,18), यह उबले हुए साली तथा सस्तिका चावल से बनता था (L 30,LXXVC 8,XCIV 20,YY,VII 17, ByXVIII 9-10)। कभी–कभी इसे मीट के साथ मिलाकर भी बनाया जाता था। तिलोदन दूध चावल तथा सीसम द्वारा तैयार किया एक प्रकार था। ओदन भी मछली (YY, V 14), दही (XCIV 51), ददयोदन (VP,13)[182], दूध (ksırandana, YY, VI 5), तथा घी का प्रयोग कर बनाया जाता था। विशेष रूप से ओदन सूप, विभिन्न प्रकार की दाले तथा काले चने से खाया जाता था (LXXV 8)।

(2) **मोदक** - (LVIII 8, LXXXVIII 1) - उत्पल के अनुसार मोदक के लिए लड्डूक शब्द प्रयुक्त किया जाता था बाद मे इसे लड्डू कहा जाने लगा। उत्तरी भारत मे लड्डू और मोदक एक दूसरे के समानार्थी शब्द की तरह प्रयुक्त होते है।

(3) **पलाल** - (LVIII 8, XCIV 22,YY, VI 199) – यह मीठा होता था, जो सीसम तथा गुड या शक्कर मिलाकर बनता था, जो अब तिलकुट नाम से जाना जाता है। अब मुख्य रूप से मकर सक्रान्ति मे खाया जाता है।

(4) **पयास[183], परमन[184]** - यह आजकल की खीर के समान था जो दूध मे चावल उबालकर तथा शक्कर मिलाकर बनाया जाता था। कभी–कभी इसमे घी भी मिलाया जाता था (XLV 32, XLVII 36) उत्पल इसे श्रिनी तथा पयास कहते थे। (oh XLV 32)।

(5) **पूप** -यह मीठा के केक या ब्रेड होती थी जो गेहूॅ के आटे, शक्कर या गुड तथा

182- Also cf YY, VL L8

183- XLL 38, XLIII 11,XLV 32, XLVII 36 YY, VI 19,By, XV 2

184- XII 16,XLV 642 -2 VIII 8 , XCIV 23

मक्खन मे भूनकर बनाई जाती थी, जो पुआ नाम से जाना जाता था। उत्पल के समय यह चावल[185] से बनता था।

(6) **Yavagu यवागू (L 31)** - यह जौ से बनता था जो आजकल की लपसी या रबडी के समान था।

(7) **यवक** - (XLIII 11,YY,VL19,BY, IV 23-7) उत्पल[186] इसे यवगु के समान ही मानते थे।

(8) सक्यु – (XLV 63),

(9) ससकुलिका – (LXXV 9)

(10) उलोपिक – (LVIII 8)[187]– यह भक्ष्य के समान ठोस खाद्य पदार्थ था।

(11) सूप – (LXXV 8) – यह विभिन्न प्रकार की दालो से बनता था, जो ओदन के साथ खाया जाता था।

फल और सब्जिया - फलो तथा लताओ के विषय मे वर्णन मिलता है जैसे अमलक, लोधरा, श्रगटक, बिलवा, अमरटक, आम कदली, कपिथा, बीजापुर, ददिम, द्रक्ष, जम्बू, श्रिक नलीकेर, पीलू, पनस, खरजुरा तथा तिनतीडी, फल ज्यादा खाये जोते थे।[188] कन्दमूल का अत्यधिक उपभोग था। पत्ती वाली सब्जिया अत्यधिक खाने से आखो तथा मनुष्यत्व पर कुप्रभाव पडता था।[189]

मासमदिरा - भोजन मे मास का प्रयोग अत्यन्त सामान्य था कसाई (सौनिक), मछली पकडने वाले (मतस्यबन्ध कैवर्त) तथा शिकारी विभिन्न प्रकार के मास लाकर बेचा

185- Pupa mudga - krto misnto va tandulena viha utpala on XLII 38

186- On L 31

187- Kern (JRAS, 1873, P 328, fn-2) Vagrely takes it to be, a sort of sweet meat

188- for references see infra ch. V Section

189- for the meaning of ksara-saka see utpala on LXXV 12

करते थे। जानवरो मे जिनका मास उपभोग किया जाता था उनमे हाथी, भैस, भेड, भालू, गाव, बैल, हिरन छिपकली तथा मछली[190] आदि थी। पक्षियो का मास भी खाया जाता था।

मास के ही भाति मदिरा पीना भी बहुत सामान्य था। न ही केवल पुरूष बल्कि स्त्रिया भी मदिरा पीती थी। मदिरा मे कमल के फूल की महक डाली जाती थी।[191]

इस प्रकार ज्योतिषीय ग्रन्थो द्वारा हमे तत्कालीन भोज्यपदार्थो के विषय मे जानकारी मिलती है। (वराहमिहिर (YY,VII 22, BY, IV29)।

स्वास्थ्य, रोग तथा औषधियाँ

प्राचीन काल मे भारत मे चिकित्सा विद्या अत्यधिक उन्नत अवस्था मे था। वराहमिहिर की ब्रहत्सहिता से ज्ञात होता है कि उन्हे रोग, चिकित्सक, चिकित्सा तथा चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्त से परिचित थे। वह चिकित्सक (वैद्य[192], आयुष्याजन[193], भीषज[194]), घोडे के चिकित्सक (तुरग–भीषज)[195], शल्यचिकित्सक (Salyahrt)[196], रसायन कुशल[197] तथा विषघटक[198] को निर्देश देते थे। शलक्य शब्द एक प्रकार से शल्य चिकित्सा को सूचित करता है। इसका वर्णन XV12 मे मिलता है। शरीर के तीन तत्वो का वर्णन मिलते है।

190- cf XVI 34, where eaters of the flesh of a jackal (gomayn-bhaksa) are mentioned A preperation of blood called rudnira-vilapana payase is mentioned in YY, VII 17

191- for referenees to this practice see dhurtavita - samvada (srngarahata edited by motichandra and V S Agrawala), pp 71-72 88, Padatadītaka verse 106, Nagananda, 111 2, gathasaptasati 535 vide also my paper in 701B, XIV Pp 123-124

192- V41,3, XV26, XXXIII 11, CIII 61, YY, 111 23

193- XVI 17 utpala takes it to mean experts in chemicals and erctic remedies - ayusya rasayana-rajikaran-adi

194- V80, VII 6, IX 32, 43, X 9, 16, 17, XV7, 17, CII 6 62

195- XLIII 13

196- V80

197- XVI 19

198- LXXXV32

(1) वायु (वात, वायु, मरूत, अनिल, पवन)

(2) पित्त

(3) फ्लेगम (स्लेम, कफ)

इन्ही तीनो की अव्यवस्था के कारण मनुष्य को कष्ट होता है। धातु मे उत्पन्न अव्यवस्था तथा गडबडी के कारण रोग उत्पन्न हो रहे है।[199] बीमारिया जलवायु तथा मौसम के अव्यवस्था से होती है। जैसे असमय बारिश, सर्दी गर्मी, मे अनिस्तरता, असामान्य मौसम (XLV38, 39), तथा सूर्य तथा चन्द्रमा के अप्राकृतिक कारण। बीमारियो के कारण लोग ग्रहो, नक्षत्रो तथा ज्योतिषीय शास्त्र पर विश्वास करने लगे थे। सुश्रुत के अनुसार, दैवी सकट, सर्दी गर्मी हवा तथा पानी के असमान्यता के कारण दवा और पानी से उसके तत्व समाप्त हो जाते है तथा इसके प्रयोग से महामारी फैलती है।[200] इसे इलाज के लिए अपने भोजन के नियन्त्रित करना होगा। (CIII 55)।

बीमारियॉ - बीमारियो को रोग[201], रूज[202], अभय[203] व्याधि[204] गद[205] तथा अकालय[206] कहते थे तथा स्वास्थ्य के लिए कालय[207] तथा अरोग्य[208] माना जाता था। औषध[209] तथा भेषज[210] औषधि के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द थे। वराहमिहिर ने पागलपन का

199- VII 5 (dhatee-sanksaya), CIII 16 (dhatee klama), Bj XXK (Dhatukopa) cf Ib , XXV 3,8, By, for death and direase due to vitiated blood

200- तेशा पुनर्व्यापदोऽद्र टकारिता शीतोष्णवातवर्शाणि खलु विपरीतानि, ओशधीर्व्यापादयन्त्यप च तासामुपयोगाद् विविधरोगप्रादुर्भावो मरको वर भवोदति। तत्रान्यापन्नानामोशधीना चोपभोग ।

201- V72, VI. 2, VII 2, IX 18, 23, 43, VIII 32, 34, XI 31,36, 48, XII 19, XXXIX 7, XXXII 18, XLII 27, XLIV 8, XLV 27,38,39, XLVI 5, LIX 6, LXXI 5 , LXXVI 35, LXXVIII 11 36, LXXX1 6, XC1 1, XCIV 5, C 4, CII 5

202- V82, XIX 9, XXXVII 13 (Var), LII 60, LXXXVIII 6, CII 7

203- IV29, VII 7, VIII 42, V51

204- V56, VIII 4,17, IX 33, 44, XXIX 12, XXXIV 15, XXXV 5, XXXVII 25, XLV 25, L 14 , LXXXVIII 5, 29, CII 7

205- VIII 51, IX 40,42, XII 17, XVI 40, XLV 60, XCIV 40

206- LVII 50

207- CIII 5

208- VII 15, XXIX 11, XLIX 22 , LXXVIII 21, LXXXIV 5 , LXXXVIII 10, CII 13

209- XCIX 5, LXXV 5

210- XV 17 , XVI 5 , XIX 1

उल्लेख भी किया है। (उन्माद) XXXII 11,Bj, XXIII 13 मृत्यु के कई कारण थे जैसे घाव का सडना (Bj XXV 7) बदहजमी (मन्दाग्नित, LXXV 10 से LXXVIII 28), रक्तस्राव (LXXXVI 35), क्षतजसथ विश्रुति (LXXXVI 30) अस्रग–उद्भव (III 13) गर्भपात (LXXXVIII 5 C f V 79, 85,L 35,38), पेट की बीमारियॉ (कुकस्यामय V 51), उदररोग (LXXVIII 29, CIII 10,16), जठरगद (CIII 6,13), हृदय रोग[211] (CII 44,) कुष्ठरोग[212], CIII 5), मुख रोग (V 82,V 83,VI 4) बदन रोग, (XXXII 18), वक्ररोग, (Bj XX 1), दन्तरोग (Bj ,XXIII 11 Cf dıbıd, XXIII 15), अक्षरोग (IX 40,LII,CIII 16) दृग रोग (CIII 6), दृग रोग (Bj, XIX 1 of CIII 18, BJ, XXIII 10,12,13) शीर्षरोग (LII 109), गले (IX 42), गुह्य रोग (V 86, Bj, XXIII 7) बवसीर या नासूर तथा श्रवण व्याधि (IX 33 Cf Bj XXIII 41)

मुख्य रोग - इन ग्रज्या द्वारा जिन रोगो के विषय मे जानकारी मिलती है उनमे प्रमुख है –

(1) **गलाग्रह (XXXII.18)** - चरक सहिता के अनुसार कफ के कारण होता है।

(2) **स्वयायु - (XXXII.10)** - इसमे त्वचा मे सूजन आ जाती है। ये दो और तीन प्रकार के होते है। इसका कारण शरीर के तीन तत्व होते थे, वायु, पित्त, फ्लेगम (चरक, सूत्रस्थान, XVIII 3)

(3) **प्रमेह (LXVII.7) -** यह शर्करा की बिमारी होती थी।

(4) **चारदी (Charde XXXII.18) -** यह वायु पित्त और फ्लेगम की अधिकता के कारण होता है, जिसमे जी मचलाता था।

211- It ıs mentıoned to the Rgveda In the medıcal samhıtas, ıt probably denotes angına pectorıs, cf vedıc ındex, 11 p 507 It may be the same as Hrdyota of the Arthar vaveda

212- It may also denote abdomınal offectıons

(5) **कस (IX.44; XXXII 10) -** इसका कारण कफ था जिसमे खासी आती थी।

(6) **स्वास** **(VIII 48, IX 44,XXXII 10, BJ, XXII 8),**

(7) **मसाय** - **(VIII.49,BjXXIII.8.17)** इसका तात्पर्य क्षयरोग से था।

(8) सोस – (BJ XXII 8) तपेदिक (T B)

(9) पाण्डु रोग (XXXII 4)

(10) कमल (IX 43) यही भी पाण्डु रोग का एक प्रकार था इसमे शरीर मे त्वचा, आख, नाखून चेहरा सभी पीले रग का हो जाता है तथा बहुत कमजोरी भी आ जाती है।[213]

(11) कुष्ठ रोग (BJ, XXIII, 9)

(12) स्वीत्रा (BJ XXIII 7)

(13) विचारिका (XXXII, 14), यह त्वचा का रोग होता था त्वचा पर गीले दाग पड जाते थे। [214] (विचारिका रोग–विशेष पडजान त्वचा = विकार)

(14) दादरू (XXXII 14) – यह भी त्वचा का रोग होता था।

(15) विडाधि (BJ XXIII 8)

(16) गुलम (BJ XXII 8) इसमे हृदय तथा नाभि बीच सूजन आ जाती है।

(17) खालती - (BJ XXIII 15) गजापन

(18) अपसमार (LII 76,BJ, XXIII,17) मिर्गी

213- Idly, Indian medicine p.128

214- Ibid, p 143

विसूचिक (LXXXVI, 44) उदरशूल उत्पल के अनुसार इसमे पेट मे दर्द होता है।

अतिसार – (XXXII 18)

जलोधर – (BJ XXV3)

ज्वर (XXXII, 10, 14, XCIV35,CIII 13),

प्लीहक (BJ, XXIII 8)– तिल्ली के रोग

निशान्धता (BJ, XX 1)– रतौधी, इसके रोगी को निशाध कहते थे। हमारे पास महामाई, (जैसे–मरक, मार, मार्रा) के फैलने के अनेक विवरण है।

कन्दर्पिक (Erotic Remedies) - व्रहत्सहिता के 75वे अध्याय 'कान्दर्पिकम' मे यौन चिकित्सा का विवरण है।[215] उल्लेखनीय है कि लगभग सभी चिकित्सीय सहितार्थ मे इस चिकित्सा पद्धति की उत्पत्ति का मुख्य कारण पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा तथा बहुविवाह था। (LXXV1, 5)। वराहमिहिर ने स्वय इस अध्याय के उद्देश्य का उल्लेख किया है। यदि सहवास के समय स्त्री का रक्त शुकाणुओ से अधिक होता था तो कन्या पैदा होती थी यदि शुक्राणुओ की सख्या स्त्री के रक्त से अधिक होती थी तो पुत्र पैदा होता था यदि दोनो बराबर होता था तो समलिगी सन्तान पैदा होती थी। इसलिए पुरूष को ऐसी औषधि लेनी चाहिए, जिससे उसके शुक्राणुओ की सख्या मे वृद्धि हो सके।[216] हमे निम्नलिखित दस नुस्खो का विवरण प्राचीन ग्रन्थो से प्राप्त होता है–

1- माक्सिक धातु, पारद, लौहकण, हारितक, शिलाजतु को समान भागो मे शुद्ध मक्खन और शहद के साथ मिलाकर इनकी गोलिया बनाई जाती थी जिनका 21

215- These remedies were also known as visya CIII 63 and vajkarana

216- Manu, III 219

दिनो तक सेवन किया जाता था। (LXXV3)

2- कपिकाचु की जडो को दूध मे उबाल कर (cf Vat syayana VII 1 38)।

3- फली के छ टुकडो को दूध से निकाले गये शुद्ध मक्खन मे पकाकर।

4- विदारिका के चूर्ण को उसके सार मे उबालकर सूरज की रोशनी मे सात बार सुखाकर शक्करयुक्त दूध के साथ खाना चाहिए।

यह तरीका उन पुरूषो के लिए था जिनकी कई पत्निया होती थी। सुश्रुत के अनुसार इसे मक्खन और शहद के साथ भी खाया जा सकता था। (IV26-23)

5- हर के चूर्ण को उसी के सार मे उबालकर शहद, शक्कर तथा शुद्ध मक्खन मे मिलाकर दूध के साथ एक बार लेना चाहिए। सुश्रुत मे इसका वर्णन मिलता है। (IV26-24)

6- सीसम के दानो के साथ दूध मे सात बार उबालकर सुखाने के बाद खाया जाता था उसके बाद दूध पिया जाता था। कामसूत्र (VII 1 39) के अनुसार भी बकरी या भेड के दूध मे इसे उबालकर शक्कर के साथ शक्ति प्राप्त करने के लिए खाया जाता था।

7- उबले सात्तिका चावल का बना भोजन शुद्ध मक्खन के साथ तथा काले चने के सूप और दूध के साथ शाम को लेना चाहिए। (LXXV8)

8- ससकुलिक - ये सीसम के बीच, अश्वगन्ध की जड, कपिकाचु, विदारिका तथा ससतिका चावल का आटा को बकरी के दूध मे मिलाक शुद्ध मक्खन मे भूनकर लेना चाहिए।(LXXV9)।

9- दूध को गोकसुरक के साथ उबालकर पीना चाहिए। (LXXV.10 cf Susruta,

IV26 33,35)

10- विदारिका की जड को दूध मे उबालकर खाना चाहिए (2XXV10, cf susruta, IV 26 25, kamasutra, VII 138)

पाचक चूर्ण - अजमोद, नमक, पीली हर्र, सोठ तथा मिर्च सबको बराबर मात्रा मे मिलाकर मदिरा मक्खन युक्त दूध या गर्म पानी के साथ लेना चाहिए। इससे पाचन शक्ति बढती है। (LXXV11)।

वस्त्रभूषण - भोजन के पश्चात् वस्त्र जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता थी। वस्त्र कई प्रकार के सूतो से बनता था जो निम्न है –

(1) करपासिका (XLVII 72,XVIV15), सूती वस्त्र

(2) **ओढनिका** (XVI 29,LXXXVI 12,CIII,12,61, By, XVIII, 9-10), ये वह वस्त्र थे जो ऊनी होते थे। अविका (XL 2,6, L 19) भेड के बालो से बनने वाले ऊनी वस्त्र थे कुटुप भेड के बालो से बनने वाला ऊनी वस्त्र था। (XL 2)[217] ऊनी वस्तुओ कम्बल का वर्णन सर्वाधिक मिलता है। (XLI 8,XLVII 50, 54)[218]

(3) **कसौमा** - (XXVI 6,XLVII 50,LIII,108,CIII 61) लिनेन के कपडे यार्न के बनते थे। कौटिल्य, पासी, पुन्दरा के समय कसौमा बहुत प्रसिद्ध था।[219]

(4) **दुकूल** - (LXXII 1,By, XVI 1), ये कपडे दुकूल पौधे[220] के रेशो से बनता था। कौटिल्य के अनुसार वन्ना, पुन्दरा तथा सुवर्णकुद्या कई प्रकार के दुकूल होते थे।

217- Chaga-loma taatu krtam vastram utpala on XL 2 Kulluka (on Minu, w-120) explain katupa as nepala kambala

218- Also cf By, XVII 8

219- Artgasastra, II 11, p 80

220- According to the nisitha curhi, however, dukula cloths, weve made from the cotton produced in guada cf J C Jain, life in ancient India as depicted in the Jaina canons, p 128, fn 71 As for the etymology of the word dulcula VS agrawala (NPP LVII No 4, P 313) suggests that the word kuta in promitive language probably signified cloth and as it came to the market in two folds it was called dukula

वना सफेद मुलायम दुकुल के लिए पुन्दरा नीले तथा सुवर्णाकुड्य लाल दुकूल से सम्बन्धित थे।[221]

(5) **कौशेय** (XVI, 29, CIII, 61 VI), यह यह सिल्क का कपडा होता था जो सिल्क के कीडे से बनता था।[222]

(6) **पत्रोरण** - (XVI 29) अमरकोश के अनुसार यह भी सिल्क का वस्त्र था। कौटिल्य के अनुसार पत्रोरन मगध पुन्दरा तथा सुवणकुड्य मे बनता था। नाग वकुल, Lakuca तथा Banyan के वृक्षो से यह प्राप्त होता था।

वस्त्र - पुरूषो के वस्त्र जोडे मे होते थे उत्तरीय जो ऊपर का वस्त्र होता था अन्तरीय जो नीचे पहना जाने वाला वस्त्र होता था। उत्तरीय एक दुपट्टा के समान था जो कन्धे पर डाला जाता था। सोने वाला वस्त्र एक ही होता है था। यह नियम था कि सोते समय राजा को एक वस्त्र मे होना चाहिए, जिससे जब वह सोने जाये तो सपने मे अनिश्चित अच्छी या बुरी भविष्यवाणिया हो (By, XVI 7)। नीचे का वस्त्र धोती के समान था। जिसे मेखला से बाध कमर के चारो तरफ लपेटा जाता था (LV6)[223]। उस निस मुख्य रूप से उत्सव मे पहना जाता था। वराहमिहिर कचुक के विषय मे भी वर्णन करते है। यह वस्त्र सूर्य (LVII 48) द्वारा धारण किया जाता था वैसे यह उत्तरी लोगो का परिधान था। (उदीक्य–वेश) यह चोली पूरे शरीर को गर्दन से पैर तक ढकती थी जैसा कि कुषाण कालीन सूर्य की मूर्ति मे दर्शित होता है। वह पैरो मे पादुकाये भी पहनते थे। (पादुका, LXX 9, उपानह, LXXXVIII 1,12,XCIV 14)। यहा पर स्त्रियो के परिधान के विषय मे अनिश्चित निर्देश मिलते है। (LV6,LXXVII 3)

221- Arthasastra, II, II, p 80 Amarakosa II>6 113, however takes ksauma and dukala to be synonymous

222- According to the commentator of the Annyogadvara-sutra, patta cloth was produced from the insects that iathered round the flesh stored for the purpose in the jungle cf J C Jain, op cit, p 129 fn 72

223- मेखला वस्त्रस्योपरि बंध्यते, नीविति लोकप्रसिद्धा। तथा च। नीविराग्रन्यने नार्या जघनस्थस्य वासस–इति।

रगीन वस्त्र - लोग रगीन वस्त्रो को भी पसन्द करते थे। हमे कपडो मे विभिन्न रग तथा उनके पहनने वालो के वर्णन मिलते है (LXXXVI 15,40,C 8) जैसे पीले रग (XXIV18,LVII 32, LXXXVI 25), नीले रग (LXXV79) तथा लाल रग (LXXXVI 19) मे वस्त्रो के वर्णन मिलते है। सफेद कपडे को लाल, काले आदि अन्य रगो मे रगना आसान था YY, II 1 । वधू तथा विवाह तथा अन्य उत्सवो उपस्थित अन्य स्त्रियो के वस्त्र कुसुम्भ फूल के रग के होते थे। (VP, 10, 12) साध्वियो के वस्त्र केशरिया रग के होते थे। कपडो को रगना एक प्रकार का व्यवसाय हो गया था। (रागयुक्ति XVI 17)।

यद्यपि यह उल्लिखित है कि धार्मिक क्रियाओ मे सफेद नये बिना धुले हुए वस्त्र पहने पाते थे। सफेद नये वस्त्र से इन्द्र के ध्वज के दण्ड को लपेटा जाता था (XLII 24)। निराजन अनुष्ठान मे भी घोडे और हाथियो का सफेद नये वस्त्र से ढका जाता था (XLIII 15)। होम के समय पुरोहित भी श्वेत वस्त्र धारण किया करते थे। युद्ध के आरम्भ के समय राजा श्वेत वस्त्र तथा श्वेत पगडी पहनता था और सफेद छत्र धारण करता था (XLIII 24, 27,By XX 1 2)। धार्मिक कार्यों के समय नये वस्त्र धारण करना अनिवार्य था। (LXXXVII 40,By , XV3) किसी यात्रा के प्रारम्भ मे सफेद वस्त्रो को देखना शुभ माना जाता था (YY,XIII 11)। राजा को भी प्रात काल मे श्वेत वस्त्र धारण करना अनिवार्य था (YY II 25)।

वराहमिहिर निर्देश देते है कि विवाह के अवसर पर राजा के स्वागत के समय ब्राह्मण के अनुमोदन के समय[224] नये वस्त्र पहनने चाहिए। (LXX 8, 14)।

आभूषण - भारतीय प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार के आभूषण प्रत्येक अगो के

224- Verse14 is not found in s Dvived's edition for astrological beliefs regard ————

लिए प्रयुक्त करते थे (अलकार[225], आमरण[226], भूषण[227], विभूषण[228])। स्त्री तथा पुरूष दोनो ही अपने लिए अलग–अलग आभूषण का प्रयोग करते थे। नि सन्देह आभूषणो को प्रयोग करने मे स्त्री[229] पुरूषो से बढकर थी। सैनिक अपने विरोधियो की पत्नियो के जेवरो को लूट कर अपनी पत्नियो को देकर प्रसन्न करते थे। (YY,IV19)। साज सवार मे अच्छे कपडो के साथ जेवर भी मुख्य स्थान रखते थे। स्त्रिया इस क्षेत्र मे बढकर थी (LXXVII 13)। वात्सायन ने कामसूत्र मे आभूषण पहनने की अगविद्या (1 3 16) के 64 तरीके बताये है। पत्नी अपने पति के पास बिना जेवर पहने नही जाती थी (IVI 13) आभूषणो से इतना लगाव होने के कारण आभूषण एक व्यवसाय बन गया। कई आभूषण निर्माता (भूषणज, XV12) भी हो गये थे। देश देश मे आभूषणो के तरीके बदले होना चाहिए।

सिर के आभूषण

(1) **सिरोमणि** - यह सिर मे पहनने वाला आभूषण था जो सामान्यत राजा द्वारा पहना जाता था। वराहमिहिर के अनुसारा राजा शिरोमणि धारण कर सूर्य की तरह चमकता है।

(2) **उत्तमसक** - यह कान का आभूषण होता था।[230]

(3) **मुकुट** - यह विभिन्न प्रकार के तथा रत्नो से जडित होता था जो राजा द्वारा पहना जाता था जो ईश्वर के समान लगा था (LVII 47)[231] मानसार मुकुट के कई

225- XLVII 74, LVII 29, LIX 14, LXXXVI 8 etc

226- XIX 16, L 19, YY, 11 26, IV 19, VI 24, BY, XV 12

227- XLII 41, 43, XLVII 33, L1 3,5, LVII 29, LXVII 112, LXXVI1XCVII 10 etc

228- XVI 29, XLII 49, LXXVII 3

229- cf XIX 16, LXXIII 1 Also cf LXXIII 2 which says that damsels impart beauty to jewels and are not adorned by the grace of the latter and that ladies captivate men's hearts even without jewels byt the latter cannot do so unless that come into contact with the limbs

230- cf Amarakosa, III 3 227 and utpala's comm on XII 6 and LV 6 where uttamsaka in explained as siro-mala and karna-puspam munda male Va respectively

231- cf XII 1which represents gods as wearing mukuta

प्रकार वर्णित करते है जैसे जटामुकुट, किरितमुकुट, करन्दमुकुट तथा सिरास्त्रक। वराहमिहिर के अनुसार मुकुट तथा किरित समान रूप से सूर्य (मुकुटाधारी, LVII 47), कुबेर (वामकीर्ति, LVII 57) तथा भूतगण (By, XV12) के लिए प्रयुक्त होता है।

(4) **पट** -यह एक सुनहरा पट्टा था जिसे कि लोग व्यवस्थित करके पगडी का नाम देते थे। जिसका उपयोग राजा तथा राज्य के कुछ निश्चित पदाधिकारियो द्वारा ही किया जाता था जो कि समाज मे उनके स्थान को बताता था। वृहत्सहिता के पट्टलक्षसनाध्याय (ch X2VIII) राजा, रानी युवराज तथा मुख्य सेनाध्यक्ष के पट्टो के सम्बन्ध मे 5 प्रकार का वर्णन है और एक जिससे कि राजा प्रसन्न होता था उसको दिया जाता था। ये सारे पट्ट स्वर्ण निर्मित होते थे।[232]

मोती के हार - हार को सामान्य नेकलेस के नाम से भी जाना जाता है।[233] वराहमिहिर ने मोतियॉ के हार के कई प्रकार का वर्णन किया है। जो निम्न है–

(1) **इन्दुचन्दा** - एक 1008 मोतियो की माला होती थी जो 4 या 6 हाथ लम्बी होती थी। इसे भगवान को चढाया जाता था।

(सुरभूषण लतानम सहास्रम–अस्तोत्म

चर्तुहस्तम् इन्दुचन्दो नामना–LXXX 31)।

---

२३२ विस्तरशो निर्दिष्ट पट्टाना लक्षण यदाचायै।
तत्सक्षेप क्रियते मयाऽत्र सकलार्थ सम्पन ।।
पट्ट शुभदो राज्ञा मध्येड टावङ्गलानि विस्तीर्ण।
सप्त नरेन्द्रमहिष्या षड् युवराजस्य निर्दिष्ट ।।
चतुरङ्गलविस्तार पट्ट सेनापतेर्भवति मध्ये।
द्वे च प्रसादपट्ट पञ्चैते कीर्तिता पट्टा।।
सर्वे दिगुणायामा मध्यादर्धेन पा र्वविस्तीर्णा ।
सर्वे च शुद्धकाचनविनिर्भिता श्रेयानो वृद्धयै।।
पचशिखो भूमिपतेस्त्रिशिखो युवराजपार्चिवमहियो ।
एकशिख सैन्यपते प्रसादपट्टी बिना शिख्या।।

233- eg , IV32, XLII 32 cf Amarakosa, 11 6 105

अर्थशास्त्र मे इन्दुचन्दा का इन्द्रचन्दा नाम मिलता है। वराहमिहिर के अनुसार इसका ईश्वर से तात्पर्य है। अजन्ता की न०–२ की गुफा मे बुद्ध के जन्म दृश्य मे इन्द्र ने इसे पहना हुआ है।

(2) **विजयचन्दा** – यह इन्दुचन्दा की आधी होती थी–इसमे 504 भातियो का लड होती थी। 2 हाथ लम्बी या डेढ फुट लम्बी होती थी। (विजयचन्दा–तद = अर्द्धेन–LXXX 31)[234]

(3) **देवचन्दा** -यह 81 मोतियो की लड होती थी। यह दो हाथ लम्बी या डेढ इच लम्बी होती थी (देवचन्द है = सितिर = एकयुत, LXXX 32)

(4) हार 188 लडियो की होता था दो हाथ लम्बा होता था (सत=मस्तयुतम् 2xxx 32)

(5) **अर्द्धहार** - 64 लडियो का होता था यह दो हाथ लम्बा होता था। (अस्आस्तको = ऋधाहार, LXXX 32)[235]

(6) **रास्मिकल्प** - यह 54 लडियो की होती थी (रास्मिकल्पास= का नव सतकह, LXXX 32)[236]

(7) **गुच्छा** - यह 32 लडियो का होता था (द्वात्रिमसता तु गुच्छो, 2XXX 33)[237]

यह अमरकोष के गुत्स के समान ही थी। (II 6 105)

(8) **अद्वगुच्छा** - यह 20 लडियो का होता था।

234- cf Arthasastra, p 76

235- cf Arthasastra, p 76

236- cf chatupanchasad = rasmikalapah, asthasastra, p 76

237- cf Dvatrimsad = gucchah, Bhanuji Dik sita on Amaratosa 11 6 105

(9) **मानवक** - यह 16 लडियो से बना होता था। (सद्समीर = मानवक, 2XXX 33) परन्तु अर्थशास्त्र के अनुसार 20 लडिया होती थी।

(10) **अर्द्धमानवक** - वराहमिहिर के अनुसार इसमे मोतियो की 12 लडिया होती थी। (द्वादसमिस = अर्द्धमानवक LXXX 33) कौटिल्य के अनुसार यह मानवक की आधी होती थी।[238]

(11) **मन्दर** - इसमे मोतियॉ की 8 लडिया होती थी।

(12) **हारफलक** - यह पाच लडियो की माला होती (पचलता हारफलकम् = इति =युक्तम्, LXXX 34)[239] । अजन्ता के चित्रो तथा मूर्तियो मे इसका वर्णन है। (Fig 11)

(13) **नक्षत्रमाला** - कौटिल्य के अनुसरा यह 27 मोतियो की लडियो की माला होती थी, गुप्तकाल मे यह एक लडी म 27 मोतियो की माला होती थी। नक्षत्रमाला हाथी को पहनाया जाने वाला हार भी माना जाता था।

(14) **मणिसोपानक** - यह एक लड मे सोने मे बहुमूल्य पत्थरो को जड कर बनाया जाता था। (अन्तर मणिसम्युक्ता मनिसोपानम सुवर्ण गुलिकर = 91 LXXX 35) सोने के तार मे बना हार सोपनक होता था, यदि बीच मे मणि पडी हो तो उसे मणिसोपानकम कहते थे।

(15) **चातुकार** - यह मणिसोपानक के समान था इसके बीच मे तरलक मणि पडी होती थी (तरलक–मणि–मध्यम तद = विजनयम् चातुकारम, इति LXXX 35)

238- According to kautilya, the manavaka neaklace with a gem at the center bore the home of that gam with word manavaka suffixed to it tata = rdham = ardhamanavakah1eta eva manimadhyas = fan = manavakah bhavati, Arthasastra, II 11, p, 76

239- It is different from kautilya's phlkahara which has three or five plaques (phalakas) cf MASI, No 73, p, 57

(16-17) एकवली तथा यस्ती - एकवली मोतियो की एक लडी वाला ही होता था जो एक हाथ भर की लम्बाई का होता था इसमे कोई बहुमूल्य रत्न नही होता था। (एकवली नाम यथेस्त–सख्या हस्त–प्रमाण मणि विप्रयुक्ता, LXXX 36)[240] अर्थशास्त्र तथा अमरकोश मे भी यही वर्ण मिलता है।[241] कुषाण तथा गुप्त कालीन मूर्तियो मे एकावली दृष्टिगत होती है जिसे गले के चारो तरफ लपेटा जाता था तथा बीच मे एक बडा बहुमूल्य रत्न लगा होता था। बराहमिहिर तथा कौटिल्य के अनुसार यस्ति एक लडी की माला होती थी, जिसके बीच मे एक बहुमूल्य रत्न होता था। (सम्योजिता या मणिना तू मध्ये यस्त इति सा भूषण विद्भीर = युक्त LXXX 36,5 = एव मणि – मध्या यस्ति, अर्थशास्त्र, II 11) मोती की माला को नीलम के साथ कालीदास ने यस्ति और मुक्तगुण के नाम से सम्बोधित किया है। एकावली और यस्ति गुप्त तथा परवर्ती काल मे बहुत लोंकप्रिय थे। वाण ने राज्यश्री, जो कि प्रकाकरवर्धन तथा यशोमति की एकमात्र पुत्री थी, की तुलना एकावली से की थी जो कि वक्षस्थल पर लटकी होती थी।[242] अजन्ता की कुछ चित्रकारियो मे यस्ति को देखा जा सकता है। मूर्तिकला, टेराकोटा और चित्रकारी के साक्ष्य इन दोनो हार के व्यापक लोकप्रियता मे कोई सन्देह नही छोडते।

अन्य आभूषण- अन्य आभूषणो का उल्लेख भी मिलता है जो निम्न प्रकार है–

(1) ग्रह्यवयक (XLII 46)[243]

(2) कुण्डल (XLII 25,XLIX 2,LVII 32, 36, 47)

(3) केयूर (XLII 44,45[244] angada XLIII 25)[245]

240- In XIII 1, the northern quarter with saptarsıs great
241- Sutram = ekavalı suddha, arthasastra, p 76, ekavaly = ekayastıka, Amara, 11 6 106
242- Hosha carıta, IV, p 192
243- cf Vohal, catalogue of the Arch Museu at mathura Pls, X, XII, XVb
244- Of varıegated colours and made of peacode feathers
245- Decked with multı-coloured gems and dıamonds

(4) वलय (XII 10)

(5) नुपुर (XLVII 14,LXXVI-1-3)

(6) haımakaksya (XXXIV17)

(7) रसना (X2II 32, 42,YY, IV14L VIII 13) रसमा कलाप (LXIX 4,) काची कलाप (XLVII 14,LV6)[246]

एक स्थान पर अतरौटा का बाधने वाले मखेला का आभूषण वाले मेखला से अन्तर बताया गया है। तत्कालीन मूर्तियो मे कई प्रकार के मेखले पाये गये है।

धार्मिक सस्कारो को करते समय आभूषणो को धारण करना शुभ माना जाता था (LXXXII 1,By, XVI 1) बहुमूल्य रत्नो को धारण करने के लिए उनमे छेद करके उन्हे धागो मे पिरोया जाता था।

व्यक्तिगत सज्जा की कुछ अन्य वस्तुऐ

गुप्तकाल मे जीवन स्तर अत्यन्त उच्चकोटि का था। वराहमिहिर के अनुसार छत्र, गदा, छडी, अकुश, भाले ध्वज, चदवा तथा कामर आदि वस्तुए समाज के सभी वर्ग के द्वारा प्रयोग की जाती थी। इनके मूठ का रग विभिन्न जातियो के लिए अलग–अलग होता है इनमे से कामर और छत्र के लिए मुख्य रूप से अलग–अलग अध्याय है (LXXI-LXXI)।

246- Accordıng to averge cıted by Bhanıhjı on Amara, 11 6 108 09, a gırdle wıth 16 strands rasana and that wıth 25 cords, kalapa—

गन्ध युक्ति तथा प्रसाधन

गन्धयुक्ति - ब्रहत्सहिता के गन्धयुक्ति नामक भाग मे प्राचीन भारत के सौन्दर्य प्रसाधन के इतिहास का विस्तृत वर्णन मिलता है। गन्धयुक्ति शब्द से तात्पर्य सौन्दर्य प्रसाधन तथा गन्ध द्रव्य को बनाने तथा लगाने की कला से था। (XV 12,XVI 17) इसका अर्थ 'विभिन्न गन्धो का मिश्रण' है।[247] वात्सायन के अनुसार यह रति की 64 सहायक कलाओ मे से एक है। सुगन्ध बनाने मे प्रयोग होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओ मे निम्नलिखित उल्लेखनीय है।

(1) पक्व (LXXVI 2)

(11) तप्त (LXXVI 6)

(111) सम्युत (LXXV 12, 16)

(1v) प्रधुपद, धूपयित्व 8, 26, 30, धूप्य 16

(v) सिक्त

(v1) बोध, प्रबोध उद्बोध, बोधित[248]

उत्पल के अनुसार दो अन्य प्रक्रियायें और भी है।

(v11) द्रव्य सस्कार

247- एकाश्यष्टिर्भवेत् काञ्ची मेखला त्व टयष्टिका ।
रसना षोडश ज्ञेया कलाप पञ्चविशक।।

248- cf Gandha yuktıjna bahubhıa = dravyaır = mıstrıtaır = vısıstataram sygasdha dravyam ye utpadayantı, Utpala on XV 12, Sudraka (Mrcchakatıka, VIII 13) employs gandhayuktı to dodenote a cosmetıc preparatıon made by comtrınıng certaın fragrant substances and meant to sweeten the speech

(viii) वेध[249]

अन्य स्थानो पर भावन का भी प्रासागिक उल्लेख किया गया है।[250] सुगन्ध का अत्यधिक प्रयोग होने के कारण कारीगर इसको बनाकर सौन्दर्य प्रसाधन का व्यापार करते थे। (गन्धयुक्तिज, XV12, गन्धयुक्तिविद् XVI 17, काच्चीक, (LXXXVI 41)। वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थो मे विभिन्न प्रकार की सुगन्धो का वर्णन किया है। जो निम्न है।

केशस्नान (Hari bath) - केशो को धोने के लिए बराबर मात्रा मे, त्वक, कुस्थ, रेनू नलिका, स्पर्क्का, रस, तगर, बालक, केसर तथा पत्र (LXXVI 5) को मिलाकर सुगन्धित जल से केशो के धोया जाता था।

केशतेल (Harioil) - केश तेल को सुगन्धित बनाने के लिए चम्पक फूल की सुगन्ध मिलाई जाती थी। यह तेल, मनजिसथा, व्यागहरनख, सूक्ति कसिया बर्फ, कोटस, रेसिन का पाउडर सीसम के तेल मे मिलाकर उसे सूर्य की रोशनी मे गर्म करके (LXXVI 6)[251], बनाया जाता था। अग्निपुराण मे सुगन्ध बनाने के अन्य कई प्रक्रियाये दी गयी है। सीसम के दानो को सुगन्धित फूल के साथ मिलाकर कुचलकर

249- This definition of bodha is based on the following distils cited by utpala (on LXXVI 11) from Isvara's praknit work gandhayik
ओल्लमि ओल्लओ जो दिज्जइ वेह इति सो मणिओ।
वोही उण जो चुण्णो चुण्णविणि अच्छगन्धो सो।।
its Sanskrit rendering given by sudhakara dvivedi is as follows -
आद्रे आद्रो सौ दीयते वेध इति स मणित ।
बोध पुनर्य चूर्ण चूर्णिते अच्छगन्ध स ।।
for a discussion on bodha and vedha and the identification of isvera with lokesvara mentioned is padmasri's Nagarasarvasva iv 2 see, my paper in ————

250- पाकवेधगन्ध धूपनानि लोकतो ज्ञेयानि। आचार्यण नोक्तानि।

251- cf Agni Purana, CCXXIV 20-21 which gives the following eight process -
शीचमाचमन राम तथैव च विरेचनम्।
भावन चैव पाक च बोधनधूपन तथा।।
वसन चैव निर्दिष्ट कर्मा टकमिद स्म तम्।
The visnudharmotlra II 64 178 has the same eight process save the replacement of sauca and acamana by sodhana and vasana Gangadhara's gandha sara mentions six processes
भावन पाचन बोधो वेधौ धूपनवासन।
एव षडत्र कर्माणि द्रव्येशूक्तानि कोविदै ।।

उसमे तेल निकाला जाता था। जिससे यह तेल उसी फूल की सुगन्ध से युक्त होता था।[252]

सुगन्ध - सुगन्ध बनाने की प्रक्रिया हमे प्राचीन ग्रन्थो से प्राप्त होती है। वत्र, तुरूष्क, वाल तथा बिगनोनिया चेलोनोयडीस (समरोधिपन) को बराबर मात्रा मे मिलाकर बनाया जाता था।

वकुल फूल से सुगन्ध बनाने म 84 तरीके ज्ञात होते है (LXXVI, 29-30),नौ सुगन्धित उत्पादनो के नाम इस प्रकार है – रोधक, उस्त्र बिगनोनिया चेलोनोयडीस, अगुरू, मुस्त, पत्र, प्रियान्गु, वन तथा[253] पथ्यु[254]। इनमे से किन्ही तीन को लेकर चन्दन तथा तुरूष्क के साथ मिलाकर आधा भाग सुक्ति तथा एक चौथाई सतपुष्पा तथा कुटुका की सुगन्ध को मिलाने से 84 प्रकार की सुगन्ध बन सकती है।

252- 2XXVI 5-6 are borrowed ad verbatım by gangadhar ın his gandhasara, but without havıng the source cf PK Gode ın BV, 1945, P 150 note

253- तैल निपीडित राम तिलै पुष्पाधिवासितै ।
वासनात् तत्पु पसदश गन्धेन तु भवेद् ध्रुवम्।।
Agnı Purana CCXXIV33

254- रोध्रोशीरनतागुरूमुस्तापत्रप्रिय गुवनपथ्या ।
नवको ठात्कच्छपुटाद् द्रव्यत्रितय समुद्ध त्य।।
चन्दनतुरू कमागौ शुक्त्यर्ध पादिका तु शतपुष्पा।
कटुहिगुलगुडधूप्या केसरगन्धा चतुरशीति ।।
LXXVI 29-30

255-

rathra	usıra	nata
aguru	musta	pattra
Prıyangu	vana	pathya

Borrowed from utpala,s glass

9		
8	36	
7	28	84
6	21	56
5	15	35
4	10	20
3	6	10
2	3	4
	1	1

Borrowed from BS, II 1 p 957, note 1

अध्याय 3

आर्थिक परिवर्तन

3. आर्थिक परिवर्तन

प्राचीन काल मे समाज का उत्कर्ष मनुष्य के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति और सुख सुविधा पर निर्भर करता रहा है। व्यक्ति का भौतिक और लौकिक सुख उसके जीवन के आर्थिक विकास से प्रभावित होता रहा है।

यह भी सही है कि समय–समय पर मनुष्य के आर्थिक कार्यक्रम उसकी आवश्यकताओ के अनुरूप घटते–बढते और कभी–कभी परिवर्तित भी होते रहे है, किन्तु आर्थिक जीवन का मूल आधार,कृषि,पशुपालन और व्यापार तद्वत रहा है, जिन्हे भारतीय शास्त्रकारो ने वार्ता के अर्न्तगत विवेचित किया है। आज भी विश्व का समाज इन्ही आधारो पर टिका हुआ है।

भारतीय समाज का आर्थिक विकास 'पुरूषार्थ' के जीवन –दर्शन के माध्यम से हुआ है जिसमे 'अर्थ' एक प्रधान तल के रूप मे स्वीकार किया गया है।व्यक्ति की मन काक्षा प्राय अनेकानेक वस्तुए प्राप्त करने की होती रही है। अत 'अर्थ' मनुष्य के भौतिक और लौकिक सुख को प्रदान करने वाला विशिष्ट तत्व मानना गया है। महाभारत मे उच्चतम धर्म मानकर इसकी प्रतिष्ठा और महत्ता स्वीकार की गई है, साथ ही उसे त्रिवर्ग के प्रधान आधार तत्व के रूप मे माना गया है।[1] प्राचीन कालीन अनेक शास्त्रकारो ने धर्मशास्त्र के साथ अर्थशास्त्र की भी उपादेयता की है। कौटिल्य[2], याज्ञवलक्य[3] नारद[4] आदि विचारको ने धर्मशास्त्र के व्यवहार मे अर्थशास्त्र की भी

1- महाभारत, उद्योगपर्व, 72 23-24

2- अर्थशास्त्र, 1 70 10 - 11, सस्थाया धर्मशास्त्रेण शास्त्र वा व्यावहारिकम्।
यस्मिन्नर्थे बिरूध्येते धर्मेणार्थ विनिश्चयेत्।।

3- याज्ञ०, 2 21 स्मृत्योविरोधे न्यायस्तु बलवान व्यवहारत ।
अर्थशास्त्रातु बलवद्धमशास्त्रमिति स्थिति ।।

4- नारद० 1 1.39 यत्र बिप्रतिपति स्नाद्धर्मशास्त्रर्थशास्त्रयो ।
अर्थशास्त्रोक्तमुत्स्रज्य धर्मशास्त्रोक्तमाचरेत्।।

प्रतिष्ठा की है।

भारतीय इतिहास मे गुप्त युग भारत का स्वर्णिम एव समृद्धिशाली युग रहा है। गुप्तो के अधीन भारत के एकीकरण के परिणामत जो शान्ति आयी उसके कारण देश के चतुर्दिक विकास की गति तीव्र हो गयी। विस्तृत कृषि कार्यक्रम, समुद्र पार व्यापार, खनिज के स्रोतो का उचित उपयोग।

कृषि - इस युग मे असाधारण औद्योगिक उन्नति के बावजूद भी भारतीय अर्थ व्यवस्था कृषि पर ही आधारित थी। कामन्दक के अनुसार जो व्यक्ति वार्ता अर्थात् पशुपालन कृषि और व्यापार मे निपुण हो वह कमी निर्धन नही हो सकता (XIX 11)। इससे स्पष्ट है कि कृषि का इस काल मे भी बहुत महत्व था। कृषि कार्य काफी व्यापक होते थे खेतो को एक दूसरे से अलग करके चिन्हित किया जाता था। ऊची मिट्टी या कटीली मेडो से खेतो की सीमा निर्धारित की जाती थी (XIX 8)। किसान लोग शुभ मुहुर्त मे जुताई बुआई आदि करते थे।[5] फसल तैयार होने पर इसको इकट्ठा करके उसको बैल आदि से कुचलते थे। कुचलने के बाद पुन उसको एकत्रित करते थे (XXIII 21)। सूप के द्वारा अनाज के दानो को अलग किया जाता था (surpa XLV 62, LXVII 3)। फिर उस तैयार अनाज को गोदामो मे इकट्ठा किया जाता था। खेतो मे कृत्रिम सिचाई नदियो, तालाबो और कुये के द्वारा भी की जाती थी। मुख्यत खेतो का उपजाऊ होना वर्षा पर ही निर्भर होता है। इस सन्दर्भ मे वराहमिहिर ने मौसम सम्बन्धी जानकारी का वर्णन भी किया है।

फसले - मुख्यत एक वर्ष मे दो प्रकार की फसले उगायी जाती थी। प्राथमिकता के आधार पर इनको बोया जाता था। यह मुख्य फसल पूर्वसस्य और अपरसस्य क्रमश

5- Seeds should be sown when the moon passes through any of the four fixed (dhruva) asterism i e Uttarasadha uttarabhadrapada, uttaraphalguni, Rohini (XCVII 6), and in the kavina called gara (XCIX 4) It was believed that seeds sown at the time of the moon's passage through the south of Jyestha, mula purva and uttarasadhai would perish (IV 5) which inplies that sowing was undertakes during the moon's passage through the north of these aster isms

बरसात की शुरूआत में और पतझड़ में पायी जाती थी।[6] जिन्हें आजकल खरीफ तथा रबी के नाम से जाना जाता है। पूर्वसस्य में मुख्यतः धान की फसल अपरसस्य में मुख्यतः गेहूँ और जौ की फसल होती थी।[7] वराहमिहिर ने केवल बसन्त और गर्मी की दो फसलों का ही वर्णन किया है।[8]

वानस्पतिक वर्गीकरण- वराहमिहिर के वानस्पतिक वर्गीकरण के अनुसार बालों वाले अनाज को ' सुखधान्य ' जबकि फली वाले अनाज को 'कोश–धान्य (VIII.8)' या 'सभी–जाति' (VIII.10) कहा जा सकता है। जिन्हें आधुनिक वनस्पतिक वर्ग के अनुसार क्रमशः मोनो कोटिलेडन्स कहा जाता है। चरक[9] के अनुसार सूक–धान्य की श्रेणी में विभिन्न प्रकार के चावल, बजरा, जौ, गेहूँ और इसी प्रकार के अनेक अन्न शामिल थे। दूसरी तरफ 'सभी जाति' के अर्न्तगत् विभन्न प्रकार की दाले जैसे हरा चना, काला चना, मटर, तिल, विभिन्न प्रकार के बीज तथा सेम आदि आते थे। कुछ विशेष प्रकार की दालें जो लताओं में होती थी उन्हें 'वालिज (XIII.13; XVI.24), कहा जाता था।

सभी प्रकार की भूमि अन्न की उपज के लिए उचित थी।

6- VIII-3 Else where aparasasya and purvasasya are referred to as purvajata and pascadupta respectively, for purvasasya is sown after aparasasya is harvested (XXXIX.9). These also correspond with the purvanvapa and pascadvapa of the Arthasastra which also known an intermediary crop called madhyavapa, purvavapa, according to kautilya, includes all the crops that are sown at the commencement of the rainy season, e.g. paddy, koarava, sesamum, priyangu, daraka and varaka; madhyavapa comprises green gram, black gram and saibya which are cultivated in the middle of the same season ; kusumbha, masura, kulattha, barley, pea, linseed and mustard which are sown in autumn came under the category of pascadvapa, cf. Arthasastra, II.24, p. 116

7- CIII.47; IX.43; XXV.2 ; XXXIX. 1, 13; XLI.3. The word grisma is somewhat loosely employed for barely wheat, etc. are actually harvested in spring and not in summer.

8- ch. XXXIX. A vernal crop (rasanta sasya) is also mentioned (XXVII.2); but the chapter in which it occurs is surious. S.K. Maity is certainly wrong in infessing from VIII.12 and VIII.8-9 that certain crops were duly ripened in sravana and caitra or vaisakha (economic life of northern India in the Gupta Age, p. 79, fn 8 and 10), for the verses in question do not refer to months, but to the years of jovian cycle denoted by those names. Similary, he takes the terms sarada in V.78, 90 to mean the ghain sown in autumn cibit, p. 79, fn. 9), which is not correct. The word is invariably used by varahmihirain the sense of corn ripening in autumn and the commentator sounder stands in everywhere.

9- Caraka, sutrasthana XXVII.8 ff.cf. Amarakosa, 11.9.24 and the verse from the Ratnakosa enumerating sami-dhanyas cited by Bhanuji Diksita on the above.

कृषि उपज - इस काल मे विभिन्न प्रकार की फसले उगायी जाती थी। वराहमिहिर ने अस्पष्ट रूप से चावल उत्पन्न करने का वर्णन किया है क्षेत्रो का वर्णन भी स्पष्ट नही किया है।[10]

हमे चावल की विभिन्न फसलो के विषय मे पता चलता है।

1- **सालि**[11], का पुर्न उत्पादित प्रकार 'जदाहन' कहा जाता था। उत्पल के अनुसार वराहमिहिर ने उसे अत्यन्त पौष्टिक अन्न के रूप मे वर्णित किया है।

2- **'कलमसालि'** चावल के इस प्रकार के मई और जून मे बोया जाता था और दिसम्बर और जनवरी मे तैयार होता था। यह सबसे अच्छा माना जाता था।

3- **यवक** (XXIX 3, L 30)[12]

4- **सुकरक** (XXIX 2)

5- **सस्तिक** (L 30, LXXV 8) इसको तैयार होने मे 60 दिन लगाते थे। सुश्रुत और कारक ने इसके विभिन्न प्रकारो का वर्णन किया है। उत्पल ने इसे राज–धान्य कहा है (XV 12) (राज उपयोगी यद् धान्य सास्तिक–आदि)। हवेनसाग[13] ने एक प्रकार के चावल का वर्णन किया है जो कि कटने के लिए 60 दिन मे तैयार होता था। इसे सन्या के नाम से जाना जाता था।

6- **रक्तसालि (XXIX.2)** - लाल चावल इसे कारक और सुश्रुत की सूची के सुखधान्य मे पहला स्थान प्राप्त था। इसे चावल का सबसे अच्छा प्रकार माना गया था।

7- **पाण्डूक (XXIX.2) -** यह चावल पीले रग का होता था।[14]

10- V, 39, VIII, 30, XIX 16
11- V 39, VIII 30, XV 6 , XVI 7, XIX 6 16, XL 3, L 30, BY, IV 23-27
12- Also mentioned by panini and caraka (I 27 12)
13- On yuan chwang, I p 300
14- cf caraka IXXVII 8, susruta I XLVI 4

8- गौरसालि (YY, VII.4)- यह चावल सफेद रग का होता था।[15]

9- निसपाव (XVI.33, XL.5; LXXVII.33)- चावल और गेहूँ के साथ जौ लोगो का प्रधान भोजन था। कोद्रावा और कागू[16] या प्रियागू[17] को भी उगाया जाता था। गरीबो के द्वारा इसे खाया जाता था।[18]

(ı) **सामिधान्य** - दालो की भी विभन्न प्रकारो का वर्णन मिलता है जिनके नाम इस प्रकार – मुदगा, मासा[19], मसूर[20], कुलाथा[21], कलाया[22] तथा ओनाका[23]।

(ıı) **तिलहन** - विभिन्न प्रकार के बीजो का भी उल्लेख मिलता है जिनसे तेल निकाला जाता था उनमे तिल[24], सरशय[25] तथा सिद्धार्थ[26] का सीत सरशय[27] वर्णित है।

(ııı) **रेशेदार पौधे** - रेशेदार पौधो मे कपास[28] हैम्प[29] और लिनसीड का वर्णन मिलता है। सूती और लिनन के कपडो का भी उल्लेख है।

(ıv) **गन्ना** - गन्ने की फसल का बहुत बडी मात्रा मे उगाये जाने का वर्णन मिलता है।[30] गन्ने के वनो (ıksu-vata XV 6) का भी उल्लेख है। गन्ने की फसल (Iksu-vata, XIX 6) के लिए विशेष रूप से भूमि तैयार की जाती थी।

कृषि योग्य भूमि मे सभी फसले नही उपजाई जा सकती थी। वर्षा के महत्व को

15- cf caraka LXXVII 8
16- XXIX 6, XL 4, LXXVI 2 Kodrava ıs called kodau ın Hındı
17- VIII 10, XXIX 4
18- BY, IV, 23-4
19- Kusdradhanaya, XXXIV 15, comm Ksudradhanyanam prıyangu = odınam
20- XV 14, XVI 36, XXV 2, XXIX 4, XL 5 LXXV 8 LXXVIII 3, XCIV 21 L 34, LXXXVI 22, BY, IV 23-4
21- XL 2
22- XXIX 5, LIII 36 114, LXXXVI 22, XCIV 21, XL 5, BY IV 23-27
23- XL 5
24- XXIX 5, XV 14, XVI 3, BY XVIII 3-5
25- V 75, XV 14, XVI 36, XXV 2, XXIX 4, XL 6, L 31, XLVII 30 35 77, LIV 2, 7 17, LXIV 6, LXXV 7
26- XXIX 5, XL 5, LXXXVI 4, XLV 24
27- XLII 5, XLVII 35
28- LXXIX 12
29- V 75, XV 9, 14, XXIX 5, XL 3, XCIV 15
30- XXIX 6

समझते हुये वराहमिहिर ने बृहत्सहिता मे मौसम के सम्बन्ध मे अनेक भविष्यवाणिया लिखी है। किन परिस्थितियो मे अधिक वर्षा होती है। कब कम वर्षा होती है। ऐसी दशा मे फसल नष्ट हो जाने से किस प्रकार दुर्भिक्ष होते है। इस सबका वर्णन है।

दुर्भिक्ष - प्राचीन ग्रन्थो मे बहुत अच्छी फसलो[31] का विवरण दिया गया है और कही भी अकाल था अभाव का कही भी उल्लेख नही है।[32] अतिवृष्टि भी अकाल का एक कारण माना गया है (VII 40, XLV38)। स्कन्दगुप्त के जूनागढ अभिलेख से हमे ज्ञात होता है कि अतिवृष्टि के कारण सुदर्शन झील का बॉध टूट गया था जिस कारण बहुत बर्बादी हुई और लोगो का परेशानियो का सामना करना पडा। कृषक समुदाय जो कि खेतो की सिचाई के लिए बरसात पर निर्भर करता था उनके लिए सूखा और अपर्याप्त जलवृष्टि से बढकर हानिकारक कोई आपदा नही थी।[33] इसका परिणाम दुर्भिक्ष या अकाल होता था क्योकि पैदावार नही के बराबर होती थी। यक्ष ने भी प्रसिद्व 12 वर्ष के अकाल की भविष्यवाणी की थी। जैन परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल मे भी अकाल पडा जो कि 12 वर्ष तक चला।[34] जिस प्रकार अकाल मे अन्न की कमी होती थी उसी प्रकार युद्ध के समय भी अनाज की कमी होती थी। इस प्रकार युद्ध भी एक आपदा के रूप मे कहा जा सकता है। हमे शत्रुओ द्वारा फसलो को बर्बाद करने और लूटे जाने के वर्णन मिलते है। खडी फसले कभी–कभी जगली जानवरो,चूहो के झुण्डो द्वारा कीट पतगो टिड्डीदल एव चिडियो (ııı 28, vııı 4) द्वारा नष्ट हो जाती

31- XXIX 13, XL 6 7, XLII 57, VII 61 63

32- III 5,V9, 11, 16, 18, 19, 20, V20, 21, 22, 30, 53, 55, 57, 69, 70, 75, 78, 79, 80, 83, 85, 87, 89, 96, VI 3-4, VII 4,14, VIII 5,6,9,11,13,14,15, 30, 34,,36,44, 50, 52, IX 8, 10, 12, 16, 20,, XI 8, 14, 29, 37, 43, 44, 45, 46,47,48, 49,50,, XII 20,XVIII 25,25, XXIX, 12, XXXII 26, XXXIII 10, XXXIV4, XXXVIII 1, XLV4, LVII 49, LXXXVIII,10, XCIV2,4,6, XXI 14, 15,16,, XXIV, 20, 23, 24, 33, 36, XXV2, 5, XXVII 1-2, 6-7

33- The followıng are the reference to famıne or defectıve crops 11 1 6, 13, 16-17, 19, 31, IV5, 14, 16 18-21, 23, 27, 29, V21, 23-4, 27 38-9,52,54,56, 61,71,73,76,82,88,90,92,95, VI 9, VII 3,7,18, VIII 4, 10, 16, 19,28,40,44, IX 14, 18,23,26,41, X 2,11,20, XI 13,30,31,32,36, XII 18,21, XVUU,4,5,17,18, XIX 1,8 19, XX 1 2 , XXIV 23, 30, XXVII, 5, XXIX 11, XXX 13,30,XXXI 1, XXXII 10,25, XXXIII 12, XXXIV12, 14-15, 16, XXXV4,5, XXXVIII 4, XXXIX 8-10, XLV27-28, 38,42,44, XLVI 4, 13, 16, LVII 50, LXXVIII 24, LXXXV65, XCIV2,7,8,11

34- III 16, XIX 20-21, XLV38 (Durbhıksam anavrstau)

थी। लोगो का यह विश्वास था कि अकाल और आपदाओ के लिए ग्रहदशाओ का प्रभाव और अलौकिक कारण उत्तरदायी है।[35] वराहमिहिर ने भूचालो, ओलो और मनुष्यो व पशुओ और महामारियो का उल्लेख किया है।

अन्धविश्वास - यहा यह कहना अनुचित नही होगा कि कृषि के सम्बन्ध मे लोगो मे कुछ अन्धविश्वास भी था। अनेको तरीके ऐसे थे जिनके द्वारा फसल के अच्छी या खराब होने की भविष्यवाणी करते थे। सूर्य के क्रमश वृश्चिक और वृष राशि के आने पर ग्रीष्म और पतझड कालीन फसलो की पैदावार का अनुमान लगाया जाता था (ch 39)।[36] वराहमिहिर के अनुसार उस समय यह परम्परा थी लोग फलो के खिलने और फलो के निश्चित पेड पर लगने से फसलो के उत्पादन का अनुमान लगाया जाता था। दूसरा प्रचलित तरीका यह था कि आषाढ की पूर्णिमा मे हर प्रकार के बीज बराबर–बराबर मात्रा मे रखे जाते थे और यह देखा जाता था कि किस बीज का वजन बढा है। ऐसा माना जाता था कि बढे हुए वजन वाले बीज अच्छी फसल देगे।

लताग्रह बागवानी - कृषि से पादप उत्पादन की विधा अभिन्न रूप से सम्बन्धित है जिसके व्रकसायुखेदाध्याय मे विस्तृत रूप से बताया गया है (ch LIV) कौटिल्य और वात्सायन ने भी इन विद्याओ का वर्णन किया है। कौटिल्य ने परामर्श भी दिया है कि इस विद्या से सम्बन्धित राज्य मे उत्तरदायी अधिकारियो को इस विषा मे जानकारी रखने वालो से सहयोग लेना चाहिए। पेड पौधे की रक्षा करना राज्य का परम कर्तव्य था। शिलालेखो तथा अन्य प्राचीन साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि अनेक राजाओ ने और राज्य के उच्च अधिकारियो ने बडे–बडे बाग और उपवन लगाये थे। इसका विवरण योगयात्रा मे भी मिलता है (IV,8,YY,XVII 14)। शहर और नगर मे प्रचुर मात्रा मे बाग और उपवन थे। उनमे फूलो के पौधे और फलो के पेड दोनो थे। हमे कृत्रिम और

35- Combridge history of India Vol 1, p 147 for other reference to 12 year famine see Vij, III (1) pp 93-98
36- For reference, vide fns 7 and 8 on the last page

प्राकृतिक उपवनो के उल्लेख भी मिलते है (LV3)। इनके बीच मे कृत्रिम धारा निकलती थी। हिन्दुओ के मन्दिर जल और उपवनो के समीप होते थे। वन और उपवनो की देखभाल के लिए राज्य द्वारा अलग अधिकारी की नियुक्ति होती थी। फ्लीट के अनुसार जगलो का अध्यक्ष गौल्मिक कहलाता था।

खाद्य द्वारा मिट्टी को उपजाऊ बनाना- नरम मिट्टी सभी प्रकार के पेडो के विकास के लिए उपयुक्त है। तिल के सम्बन्ध मे यह कहा गया कि उसे चटखने के बाद ही एकत्र करना चाहिए।

हरी खाद देकर जमीन उपजाऊ बनाने के अलावा कुछ पदार्थ और तैयार किये गये जिनमे खाद्य के गुण पाये जाते है जैसे– गाय की (VV5,7,19), भैस की (30), बकरी की तथा भेड की विष्टा (17), शुद्ध मक्खन (7,15,19,24), उशीर (7), तिल (7,16,17,21,25), शहद(7,24), विडग(7,15), दूध तथा दूध–पानी (7,15,16,19,20,23), कीचड (5,15,25), घोडे का चना (16), काला चना (16,21,25), हरा चना (16), जौ (16,25), भूसी (17,21), चावल (21), कुछ मुख्य पौधो की जडे (22) राख (24), फल, बासी मॉस (21), गोमॉस (17), सुअर (20) इस प्रकार के विभन्न मिश्रण खाद बनाने के काम आते थे। सुगन्धीकरण के लिए सुअर और हिरन के मॉस और हल्दी पाउडर का उपयोग किया जाता था। कुछ निश्चित पेडो की सिचाई के लिए मछली के पानी के प्रयोग का भी प्रचलन था। अग्निपुराण आम के लिए भी मछली के पानी का परामर्श देता है।[37] बृहत्सहिता मे लिखा है कि कटहल केला, जामुन, अनार,अगूर के पेड कलम

37- The summer crop would thrive if (1) at the time of the sun's entry into vrscika the kendra's (4th , 7th and 10th houses) from him are occupied by benefies (mercury, venus and jupiter), or the sun is aspected by or is in conjunction with strong benefies (ii) the sun poisted in vrscika and jupiter and the moon in kumbha or simna or vice versa, (III) venus or mercury or both are posited in the 2nd house from the sun situated in vrscika, or when the sun in vrscika is aspected by Jupiter, (iv) the sun is posited in vrscika and the 2nd and 12th houses from the sun are occupied by mercury and venus and the 7th by Jupiter and the moon, (V)the 11th, 10th, 4th and 2nd houses from the sun in vrscika are occupied by venues Jupiter moon and mercury respectively, (VI) Jupiter, the moon and the sun are poseted in kumbh, vrsa and vrscika and mars and Saturn in makara, (VII) the melefics (Mars and saturn) occupy the 6th and 7th houses repectively from the sun in vrscika and summer would perish if the sun is in vrscika and (1) the mall fics (Saturn and mars) occupy the 10th and 12th houses or either of them is the possession of the 7th house from vrscika another Kendra house (4th or 10th) from the sun in vrscik Similarly forecaste were made about good or bad prospects of the autumnal crops from the sun's entry into vrsa (XXXIX 1-44)

काटकर दूसरे पौधे पर चढाये जाने चाहिए। जिन पौधो मे शाखा न हो उन्हे पतझड मे, जिनमे शाखा हो उन्हे शीतऋतु मे, और जिनके तने बडे हो उन्हे वर्षा ऋतु मे एक स्थान से उखाड कर दूसरे स्थान पर लगाना चाहिए। उखाड कर लगाने से पहले पौधे के तने पर घी तेल, मोम, दूध और गोबर लपेटना चाहिए। इस ग्रन्थ के अनुसार जामुन, अजीर, अनार कटहल आदि के पौधो के लिए आद्र भूमि चाहिए। पौधो के अनुसार एक पेड से दूसरे पेड के बीच मे अधिक से अधिक 18 फुट तक दूरी हो सकती है।

पौधो का पुर्नउत्पादन - बीजारोपण पौधो के विस्तार का आसान तरीका है। वराहमिहिर ने बीजारोपण की सामान्य प्रक्रिया का वर्णन विस्तार से किया है। उनके अनुसार बीज को हाथ मे लेकर मक्खन मे लपेट कर दूध मे डालना चाहिए। दूसरे दिन बीज को दूध से निकाल कर एक दूसरे से अलग–अलग रखना चाहिए। इस प्रक्रिया का 10 दिनो तक लगातार करना चाहिए।[38] फिर बीज को कुछ समय के लिए गोबर मे रखना चाहिए। सुगन्धीकरण के पश्चात् उन्हे तैयार मिट्टी मे बोना चाहिए। और उस पर दूध और पानी का छिडकाव करना चाहिए (LIV 19-21। इसी प्रकार हमे इमली, कैथा और कॉर्डिया के बीजारोपण की प्रक्रिया का वर्णन भी मिलता है। कटहल,नीबू,अनार, अगूर,अशोक और चमेली आदि की कटिग करके उनके विस्तार के लिए गोबर मे रखा जाता था। वराहमिहिर ने पेडो के विकास के लिए कलम लगाने को काटने की अपेक्षा श्रेयस्कर माना है। कलम बॉधने के दो तरीके बताये गये है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय कृषक कलम बॉधने की प्रक्रिया से भलीभॉति परिचित थे।

पौधो की बीमारियॉ - वराहमिहिर ने वृक्षो की बीमारियो के विषय मे भी लिखा है। किन कारणो से बीमारियॉ होती है और किस प्रकार चाकू से बीमारी से खराब शाखाओ को

38- Agni purana ch 194, G P Majumdag Vanaspati, p 45, also khana's maxim gourds flourish under the influence of fish, washings

काटकर उनपर घी तथा मिट्टी लगाना चाहिए।

पशुवर्ग - प्राचीन भारत के पशुवर्ग के सम्बन्ध मे बृहत्सहिता हमे बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। वराहमिहिर ने सम्पूर्ण पशुओ को ग्राम्य[39], जगली[40] (आरण्य), अम्बुचारिन[41], जलचर[42], जलचारिन[43], सलिलचर[44], जलज[45], सलिलज[46] भूचारिन[47], व्योमचारिन, द्विचर, दिवाचर,निशाचर[48], उभयचारिन (LXXXV 6) का क्रमबद्ध वर्गीकरण किया है। दूसरा वर्गीकरण लिङ्ग आधारित था। नर, मादा और उभयलिङ्गी। वराहमिहिर ने आगे कहा कि प्राणियो की उत्पत्ति मे विविधता होने के कारण लिङ्ग निर्धारण कठिनाई पूर्व है। अतएव लिग्ड निर्धारण के लिए उन्होने शारिरिक रचना या लक्षणो को आधार बनाया है। जैसे नर के लिए ऊँचे, विशाल स्कन्ध ा, चौडी गर्दन, विशाल छाती और दृढ साहस लक्षण है उसी प्रकार मादा के लिए छोटा चेहरा और पैर, दुर्बल स्तन मधुर आवाज इसके लक्षण है। उभलिङ्गी पशु दोनो प्रकार के लक्षणो से युक्त होते है (LXXXV 7-9) नर पशुओ और मादा पशुओ को उनके नामो से भी पहचाना जाता था (LXXXV 36-7)।[49] पक्षीगण और जगली पशु भी एक दूसरे से भिन्न–भिन्न थे (खगमृग[50], पक्षीमृग[51], पतत्रीमृग[52], मृगान्दज[53], विहगमृग[54])। वर्गीकरण की अन्य विधिया भी प्रचलित थी। आहार के आधार पर तृणभुज (V 30) या घास खाने वाले मॉसाहारी पशु, कुछ अगो की विशिष्टता से पहचाने जाने वाले थे।

39- cf utpala on LIV 19, - आज्ययुतहस्तयोजितम् आज्ययुतेन घृतेनाभ्यक्तेन हस्तेन करेण योजित क्षीरमध्ये क्षिप्तम्। पुनर्गृहीत्वा घृताभ्यक्तेन करेणैकीभूत पृथक्कार्यम्। एव प्रत्यह कर्म कार्यम्। यादव वश दिनानि।
40- LXXXV 10, 24
41- LXXXV 10, 24, cf XLV 65, where urban and wild birds are contrasted
42- XCV 5
43- IV 5, XV 2, XXI 23
44- LV 5
45- V 33
46- XVII 24
47- IX 33
48- cf, XCIV 58 sthalacara
49- LXXXV 24, XLV 65 LXXXVII 1
50- for enumeration of creatures with feminine name cf Parasara cited by Uitpala
51- III 38, XV 13, XLVII 13
52- XXI 16, XXIV 12, XLV 91,94
53- XXIV 25
54- XXX 5, LXXXV 43

कुछ विशिष्ट दॉतो वाले पशु जैसे सुअर, कुत्ता, सॉप श्रृगधारी जैसे हिरन आदि (XVI 8, CIII 61), ऊची पीठ वाले जैसे घोडे, गधे आदि (V 78, LXXXV 23)। वैसे तो विभन्न प्रकार के वर्गीकरण है पर चरक ने मुख्यत पशुओ को आहार और आदत के अनुसार वर्गीकृत किया है। वराहमिहिर ने पशुओ की सूची दी है।

जगली जानवर - सामान्यत मृग शब्द का प्रयोग जगली जानवरो के लिए किया जाता[55] था परन्तु कभी–कभी हिरन के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता था।[56] शेर जगली पशुओ मे राजा के रूप मे माना जाता था और ये विन्ध्य के जगलो मे पाये जाते थे। हाथी के लिए हस्तिन[57],करिन[58], गज[59], द्विप[60], द्विरका[61] तथा दन्तिन शब्द का प्रयोग किया जाता था[62] तथा मादा के लिए करिन[63] शब्द प्रयुक्त होता था। वराहमिहिर ने हाथी के चार प्रकारो का वर्णन किया है। प्रथम प्रकार के हाथी की सूड शहद जैसे रगीन समानुपाती शरीर न बहुत पुष्ट और न दुर्बल सभी कार्यो के अनुकूल योग्य हाथी को भद्र[64] कहा है तथा जिसकी लम्बाई ऊचाई और गोलाई क्रमश 7, 9, 10 हाथ की थी। दूसरे प्रकार के हाथी को मद कहते थे जिसके ढीले वक्षस्थल, कमर मे मोड, लम्बा पेट, मोटी चमडी और गर्दन, जो देखने मे शेर जैसा लगता था। इसकी ऊचाई लम्बाई और गोलाई क्रमश 6, 8 तथा 9 हाथ की थी। तीसरे प्रकार मे मृग के चित्रण मे उसके छोटे होठ पतली टॉगे, गर्दन, दॉत, कान और बडी ऑखो का वर्णन है। चौथे प्रकार का हाथी सकीर्ण था (LXV 15)। हाथी के इन चार वर्गो का वर्णन कौटिल्य और[65] तथा सोमेश्वर[66] ने भी किया है। वराहमिहिर ने दूसरे

55- XXX 7, XLV 66, XCVI 7
56- 111 25, 38, VI 3, VIII 4, XV 3,13, XXI 16, XXIV 12, 25, XXX 5,7, XXXII 9 etc
57- XLVII 14, XC I
58- L 12, LXXXVI 42etc
59- LXXXVII 10
60- XXVII 4
61- XXIV 15
62- LXXXVI 42
63- V 33
64- XLIX,24
65- Bhadra is also named in LXXX 20
66- Arthasastra, 11 31, p 137

चार प्रकारो को पालतू बनाने के लिए मना किया है। (1) कुब्ज (2) वामनक (3) मतकुण तथा शन्घ (LXVI 10) का वर्णन कौटिल्य ने भी किया है। मत्कुन का वर्णन कौटिल्य ने भी किया है।[67] फर्नीचर को सुसज्जित करने के लिए हाथी दात का भी प्रयोग देखने को मिला है। वराहमिहिर बताते है कि हाथी दलदल मे तथा पहाडी क्षेत्र मे पाये जाते थे (XCIII 1)[68] व्याघ्र[69], शार्दूल[70] अपनी हल्की नीली लाल ऑखो (LXXIX 9) भालू (रक्षा)[71], तरक्ष[72] और कपि[73], वानर[74], शाखामृग[75] विन्ध्य मे निवास करते थे जबकि याक (कमरी) हिमालय मे विचरण करते थे इसके अतिरिक्त हमे अनेको पशुओ के विषय मे जानकारी मिलती है।

घरेलू जानवर - (गो[76], धेनु[77], सुरभि[78], उसरा[79]) धन उपार्जन का महत्वपूर्ण स्रोत थी। और उसका स्थान बहुत ही पवित्र और सम्मान जनक था। गाय और बैल (वृष[80], गो[81], गोपति[82], सुरभि तनय[83], उकरन[84]) घास चरने सुबह जाते थे और शाम को लौटते थे। गायो के समूह (गोकुल) (IX 20,XIX 14) तथा गोष्ठ (LXXXVIII 9) का वर्णन भी मिलता है। बैलो को खेतो मे जोता जाता था और बोझा उठाने के काम मे लाया जाता था। वराहमिहिर ने बैलो की ऑखो की तुलना मल्लिका के फूल और पानी के बुलबुले (LX 14)से की है। भूरी ऑखो वाला तॉबे के समान रग वाले सीगो और बडे चेहरे वाले

67- Minosoltasa, vol 11 p 192, v 35
68- Arthasatra 11 31, p 136 for the definition of these four varieties see the anomimious verses quoted by utapala on LXVI 10
69- cf Arthasastra 11 32, p 139
70- XLIII 13, XLVII 76, L 19, LXVII 17, LXXXV 28
71- LXVII 115, C III 43 XII 6
72- LXXXV 21, 28, 42
73- XII 6
74- XXXII 9, LXVII 18, 37, LXXVIII 24, LXXXV 38, XCIII 5
75- LXVII 104, LXXXV 48, LXXXVI 9, LXXXVII 28
76- XII6, XXIV 21, XXVII 4
77- IV 11, 14, V 33, etc
78- XII 16, XLV 55
79- XL 3, XLV 55
80- LXXXVI 22, LXXXVII 9
81- XII 6, XV 16, XXIV 35, XLVII 76
82- XLV 62
83- LXVII 115
84- XL 3

को हस कहा जाता था।[85] वराहमिहिर ने बकरी (अज[86], बस्त[87], छाग[88]) के चार प्रकार का उल्लेख मिलता है (1) कुटक (2) कुटिल (3) जटिल (4) वामन।

घोडे (अश्व[89], तुरग[90], तुरगम[91], तुरङ्ग[92], वजि[93], हय[94]) और घोडी (वडवा) की आयु उनके दॉतो के आधार पर निश्चित की जाती थी। इसके विषय मे विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है (LXV5)[95]। जयदत्त सूरी के अनुसार घोडे के दॉत दो से पॉच वर्ष के बीच विकसित होते है।[96] नकुल की अश्वचिकित्सा (Ch V) मे भी इस प्रकार का विवरण मिलता है।

कुत्ते (कुकुर[97], श्वान[98], सारमय[99]) कुक्करी[100] की देखभाल के लिए रखे जाते थे। नर मादा भैसो का, गधे (गर्दभ, खर, वालेय) मोटी, भट्टी आवाज वाले, ऊँट (उशर, करम) और भेडो का भी वर्णन मिलता है।

पक्षी– पक्षियो के लिए खग[101], पक्षिन[102], पतत्रिन[103], अडज[104], विहग[105], विहङ्ग[106],

85- XLV 55
86- For the defects and merits of cows and oxen seen ch LX
87- XXIXX 7, XXXVIII 28, XLIV 8, XLV,94 etc
88- LXXV 5, XLIX 24
89- LXIV 1,7,8
90- XLV 94, XVI 22, XIX3 etc
91- VII 6, X 3, XI 4, etc
92- XVII, 6,9
93- V 72
94- V 41, XVIII 5, XXIX 7 etc
95- षड्भिर्दन्तै सितामैर्भवति हयशिशुस्तै कशयैद्विवर्ष
सन्दशैर्मध्यमान्त्यै पतितमुदितैस्त्रयब्धिपचाब्दिकाश्व ।
सन्दशानुक्रमेण त्रिकपरिगणिता कालिका पतिशुक्ला
काचा माक्षीकशखावटचलचलनमो दन्तपात चविद्धि।।
96- Asva-vaidyaka, II 156-7
97- XXVIII 9,10
98- XLV 70, LXI 1, LXVII 4 , LXXXVI 1, XCVI 8
99- LXXXVII 9
100- LXXXVII 9
101- LXI 2
102- III 38, XV 13, XLVII 13
103- XXI 16, XXIV 12, XLV 91,94
104- XXIV 25
105- VIII 4, IX 30, X 20, XVI 28, XXX 5 etc
106- 111 35, V 55

शकुनि[107] नाम मिलते है। वर्षाकाल मे मोर की (मयूर[108], बरहिन[109], शिखनि[110]) वाणी का उल्लेख मिलता है। कपोत के तीन प्रकार का कपोतिका का, शुक अपनी नासिका के लिए, काक हल्के नीले अडो का और मास खाने का, एक बार मे तीन चार अडे देने वाला उल्लू, बाज (सेन) गिद्ध(ग्रधर) मुर्गा नर और मादा, कपिजल, हस कमल खाने वाला, कालहस आदि का उल्लेख मिलता है।

सरीसृप - सरीसृप मे सर्प(अहि, भुजग[111], भुजङ्ग[112], ओयाल[113], सर्प[114], फणिन[115]) अपनी सफेद पेट और काली पीठ, नेवला (नकुल[116]) मूषक के शत्रु, मूषक केकडा, छछूदर, विभन्न प्रकार की छिपकली का उल्लेख मिलता है।

जलचर - जलचर मे घडियाल (नकर XXVIII 14, XXXIII 9, हाथियो LXVII 17,ग्राह, XCIII 14) हाथियो का भक्षण करने वाले, विभिन्न प्रकार की मछली (मत्स्य[119], म्याश[120], मीन[121], पृथु–लोमन[122]), व्हेल, जलीय सर्प, हाथी, मेढक, काले पीले और हरे , वर्षा ऋतु मे बोलने वाले कछुआ (कच्छप LIII 34), का वर्णन मिलता है। वराहमिहिर ने लिखा है भारत मे पशुओ की दशा बहुत अच्छी थी। परन्तु दुर्भिक्ष और महामारियो के समय बडी सख्या मे पशु मर जाते थे। अन्त मे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत मे पशुपालन को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

107- XV 3, XXX 7, XLV 66
108- LXXXVI 34
109- XXVIII 14, LXXII 1, CIII 26
110- XXXIII 26
111- III 28, XXIV 19, XXXIV 4, 6, LXXXV 20 etc
112- XXXIII 9, LIII 11,33 (ahı-nılya), 36 (ahıraja), 41 (ahı-samsraya), 42, 67 (ahı grha), 68 (ahıvasa), 85 88 (ahı-nılaya)
113- XVI 33, XXIV 13, LIII 28, 46, 66
114- XII 12, LIII 70 (bhujkanga-grha) , LXXVIII 24 , XCIII 5
115- VI 3 XVI 5
116- LIII 38 (sarpa rasa) LII 121 LXVII 20, LXXXV 65
117- XII 12, (water polluted by serpents poıson) , LXXXVII 19
118- LIII 32, 71 LXXXVI 41 43
119- XXXIII 9,LII 120, LXXXV 42, LIII 13 (whıte), 69 (tawny) , LXXXVII 3
120- XXX 8, XL 8, LIII 10, 15, 22 (Matsyaka), 94
121- XXVIII 4, XXXIII 10, XLIX 24
122- XXVIII 14, XVII 44, 45, LXXXVI 7

कला तथा हस्तकला - इस युग मे उद्योगो की अपार प्रगति हुई। कला और हस्कला के क्षेत्र मे प्रगतिशाली तकनीकी ज्ञान, उच्च श्रेणी का था। यह इस काल की विशिष्टता थी। इसी कारण लोगो ने ऐसे व्यवसाय अपनाये जिसमे उन्हे कुशलता प्राप्त थी। वराहमिहिर के कार्यो से हम इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

हाथी दॉत की वस्तुऐ - विभिन्न प्रकार की कलाओ और हस्तकलाओ मे हाथी दॉत के शिल्पियो का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। पदार्थ की भगुरता के कारण हाथी दॉत से सम्बन्धित साक्ष्य पुरातत्ववेत्ताओ को बहुत कम प्राप्त हुए है।[123] नि सन्देह साहित्यिक[124] और शिलालेखीय[125] साक्ष्य इस कला की अत्यधिक प्राचीनता और उच्च श्रेणी की समृद्धि को प्रमाणित करते है। हाथी दॉत को विभिन्न प्रकार से प्रयोग मे लाया जाता था लकडी के फर्नीचर को सुसज्जित करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता था। हाथी दॉत की वस्तुओ की माग इतनी थी कि वह दूसरे देशो द्वारा मगाये जाते थे। छठी शताब्दी ईसवी मे आये हुए विदेशी यात्री कॉसमस के भारत इथोपिया से हाथी दॉत का आयात करता था क्योकि भारत की अपेक्षाकृत बडे थे।

वराहमिहिर ने फर्नीचर मे लगाने वाले हाथी दॉत की उपयुक्तता के बारे मे रूचिकर तथ्य बताये है (नागदन्तका LII 60, , दन्तघटित LXXXV1 9)[126] उनके विवरण के अनुसार दलदली क्षेत्र मे पाये जाने वाले हाथियो की अपेक्षा पहाडी क्षेत्र के हाथियो के दॉत ज्यादा उपयोगी थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे इस तथ्य सम्बन्धित

123- LXXXVI 65

124- Special reference must be made to the remains of Indianivory work found among the ruins of pompei in compania (Annual Bibliography of Indian archaeology (1938)), vol XIII pp 1-5, S K Saraswati A survey of Indian sculpture, pp-90-92, p1 XVII, fig 79) and a magnificent collection of fragment of Indian ivorfy toilet from begram in the ruins of the palace of kaniska (Annual Bibligraphy of Indian Archeology, 1937, pp 30-33, B Rowland, The Art and Architedure of India, p 91, pl 51, saraswati, op cit pp 92-3 figr 67,72,78) Also vide JNSI, XVI P 73, PL 2 23, Indian Archeolgy for 1959, 60, pp 24, 51, ASI, AR, 19111=12 p[p 48 99

125- cf Raghuvamsa XVII 21, Harsacarita, ch VII

126- lueders list no 343

विवरण मिलते है। हर्ष चरित मे भी हाथी दॉत की बनी वस्तुओ के उल्लेख मिलते है। केशवसेन के भटेरा अभिलेख मे हाथी दॉत का काम करने वालो का उल्लेख है। उसी के एक अन्य अभिलेख से ज्ञात होता है पालकी के डडे हाथी दॉत के बनाये जाते थे। कुछ चीनी दृष्टान्तो से ज्ञात होता है कि हाथी दॉत की वस्तुए चीन मे ले जायी जाती थी।

हाथी दॉत की बनी वस्तुये रोमन साम्राज्य के खाद्य भारत व्यापार का महत्वपूर्ण अग बन गयी थी। 'पेरिप्लस ऑफ इरीथियन सी' मे हाथी दॉत से निर्मित वस्तुये दक्षिण भारत के बन्दरगाहो से निर्यात किये गये सामानो की सूची मे सम्मिलित था।

दूसरे जन्तु उत्पादको मे हमे शहद, मस्क,[127] मर्ग, (LXXVI 12,27,, कस्तूरिका LXXVI 16) मोती (ch 80), चॅवर (LXXIV 5) तथा चमडे की वस्तुओ (LXXXVI 8) मे बैग (YY, 1 4) तथा जूते (उपानह)[128] का उल्लेख मिलता है।

धातु कर्म - धातु उद्योग वराहमिहिर के समय के काफी पूर्व ही अपने विकास की चरम सीमा पर पहुॅच गया था। खानो का उल्लेख भी है उन्हे देश और खन्न की समृद्धि का स्रोत कहा गया है। जहा तक धातुओ का सम्बन्ध है हमे सोने (कनक[129], कचन[130], चमिकर[131], निष्क[132], स्वर्ण[133], हिरण्य[134], हेम[135],सातकुम्भ[136]), चादी (रजत[137],रूपय[138])

127- दन्तस्य मूलपरिधि द्विरायत प्रोह्य कल्पयेच्छेषम्।
अधिकमनूपचराणा न्यून गिरिचारिणा किञ्चित्।। [LXXVII 20, XCIII 1]
शेष कल्पयोद् यत पर्वतशिलास्तदन्तान् घर्षन्ति। दन्तमूलपरिणाहदीर्घता द्वि प्रमुच्य परतोऽस्य कल्पयेत्
[By, XXI]

128- V 60, XV 9, etc for other references vide supra ch IV, section 3

129- BS, Vol I, P 73

130- I 1, III 23, 36, XVI 4, XXIX 8, XLIII 12, LXXXV 8, LXXXVI 2, 3, 30

131- XLVII 4, LXXVIII 14, XCII 8

132- XXIV 8, XLII 33

133- LXXIII 7

134- XL 7, XLI 6, LIX 4, XCIV 20, CIV 7, 8,

135- V 74, XXIX 10, LIX 17, XCVI 13

136- VII 20, XXVI 9, XLIV 6, LIII 110, BY, X 3

137- XII 20

138- XI 14, XVI 26, XXI 23, XXVI 9, XXIX 6, XXXIII 10, XXXIV 4, XLI 6, XLIII 12, XLVII 46, L 19 LXII 1, LXXX 26

तॉबे (ताम्र[139]) लोहा (कृष्णायस[140], कृष्णलोहा[141]), कॉच[142], सीसा (सीसक[143]) कास्थ[144] और रीतिका[145] आदि का उल्लेख मिलता है।

स्वर्णकार - (हिरण्यपनय V 74, हेरण्यक, LXXXVI 32, स्वर्णकार (LXXXVI 30) आभूषण बनाकर लोगो को सन्तुष्ट करते थे। इस समय स्वर्णकारो का उद्योग अन्य उद्योगो की अपेक्षा अधिक महत्व रखता था। कामसूत्र मे मणियो की परीक्षा, धातुओ को मिलाने की कला मणियो के ज्ञान को 64 कलाओ मे गिनाया गया है। स्वर्णकारो के लिए यह सभी कलाये जानना आवश्यक था। गुप्कालीन साक्ष्य और पुरातात्विक साक्ष्य से स्पष्ट होता है कि आभूषण बनाने का शिल्प इस काल मे अत्यधिक प्रचलित था। कुछ निश्चित तरीको द्वारा स्वर्णकार स्वर्ण को पिघलाकर (द्रुत–कनक L,XXVIII 3) आग मे तपाकर हथौडे से पीटकर इसकी शुद्धता की जाच करते थे। तॉबे को पिघलाकर उसे विभिन्न आकारो मे परिवर्तित करने का सन्दर्भ भी मिलता है। स्वर्णकारो द्वारा धातुओ कोआग मे पिघलाने की मुख्य प्रक्रिया को अपनाने के कारण, उन्हे अक्सर 'अग्नि द्वारा अपनी जीविका कमाने वाले कहे जाने का वर्णन मिलता है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन भारत मे चादी की तकसाल का वर्णन नही है। यह तथ्य मिलता है कि वराहमिहिर को चादी की टकसाल (रजतकार) की जानकारी थी। ह्वेनसाग के विवरण से ज्ञात होता है सम्भवत उस समय भारत मे चादी की टकसाल थी। ह्वेनसाग के अनुसार' सोना–चादी और कास्य उत्पाद्य प्रचुर मात्रा मे देश मे थे। इस सम्बन्ध मे सारावली मे भी जानकारी मिलती है।[146] ह्वेनसाग विवरण से ज्ञात होता है कि सोना और चादी बोलार पजाब और सिन्ध मे पाया जाता था। तुल्याम भार और मुकुट चादी से बनाये

139- L 17,XCIV 15, LXXXV 80
140- III 21, 23,VI 13, XLVII 46, L 17, LIX 5
141- LXXXVI 26
142- XL 7,VIII 63
143- XL 8, 10, XLIV 12, LXXXVI 23
144- LVI 8
145- XL 6 LVI 8
146- LVI 8

जाते थे। ताबे के मुकुट और प्रतिमाओ का भी विवरण है। पुरातात्विक खुदाई मे ताबे की मूर्तिशिल्प के नूमने प्राप्त हुये है। गुप्तकाल की ताबे के विशिष्ट उदाहरण के रूप मे बुद्ध की साढे सात फीट ऊची प्रतिमा सुल्तानगन से प्राप्त हुयी और जो अब वर्मिघम के सग्रहालय मे है। इस काल मे धातुओ का उपयोग पूर्णरूप से किया जात रहा ह्वेनसाग ने लिखा है कि उसने राजा पूर्ववर्मन की बनवायी हुयी बुद्ध की ताबे की विशालकाय मूर्ति देखी थी और उसके अनुसार इस समय हर्ष नालन्दा मे पीतल का एक मन्दिर बनवा रहा था। बुद्ध की मूर्ति 80 फुट ऊची थी। गुप्तकाल मे हीरो, मोतियो, बहुमूल्य मणियो, मूगो और सीपियो से सुन्दर आभूषण बनाये जाते थे। वराहमिहिर ने व्रहत्सहिता सेअनेक प्रकार के हीरे मोती, सीप, सीपी, मूगा सभी का उल्लेख है। लोहा और अयस सामान्य रूप से सस्ती धातु के लिए प्रचलित थे। उत्पल ने अपने एक व्याख्यान मे कहा है कि लोहा, अयस और कास्य को सूचित करता है लोहे को ताबे और कास्य से प्रथक करने धातु प्रयोग किया जाता थ। इस धातु के अव्यवस्थित प्रयोग का वर्णन ऋग्वेद के समय का है जहा से इसके बारे मे सम्पूर्ण सूचना मिलती है। बरसात के समय मे लोहे मे जग लगना और लोहाइन्द का विवरण है। लुहारो की कुशलता का वर्तमान उपस्थित विवरण चन्द्र की मेहरौली के स्तम्भ लेख मे मिलता है। जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के रूप मे सम्बोधित किया है। स्तम्भ के मस्तिष्क सम्मिलित करते हुए लोहे के स्तम्भ की ऊचाई 28 फुट 8 इच और इसका वजन 6 टन से भी अधिक है। पर्सीब्राउन के शब्दो मे यह भारतीय की काल्पनिक निपुणता तथा उनकी बुद्धिमता को एक विलक्षण श्रद्धाजलि है।

मृदमाण्ड - मृदमाण्ड दैनिक जीवन का एक अभिन्न अग बन गये थे। तेली की भाति कुम्हार भी पहिये का प्रयोग करते थे (घटकार, XV 1, VP, 9 , घटकृत XVI 28) जिसे चक्रिक और चक्रकर (X 9, 12) के रूप मे जाना जाता था। उनके द्वारा मिट्टी को वस्तुओ (मृण्मय, LXXXVI 12) मे विशेष प्रकार के बर्तन भी सम्मिलित थे। जिसमे

मिट्टी मे पकाये गये ईटे मिट्टी की आकृतियाँ और प्रतिमाए। विवाहपटल को विभिन्न आकृतियो से सजाने के लिए निपुण शिल्पकारो की नियुक्ति के सन्दर्भ मे जानकारी मिलती है। अहिच्छत्रा, भीटा, बसढ मे खनन द्वारा प्राप्त चक्के पर बनाये गये[147] तथा खाले गये बर्तन कुम्हारो की इस कला मे निपुणता को दर्शाते थे। तत्कालीन मिट्टी की प्रतिमाये तथा वस्तुऐ अत्यधिक प्रचलित थी। समकालीन साहित्य मे उनके सजावट की सामग्री का विवरण है।[148]

काष्ठशिल्प - ग्रामीण आर्थिक परिप्रेक्ष्य मे बढई (तक्षन, XLII 20, LXXXVI 20, 24 , वरधकिन, XLII 22) को अभिन्न स्थान प्राप्त था। ये नापने के लिए धागा या रस्सी का प्रयोग करते थे अत इन्हे सह सूत्रधार (XLII 12) की उपाधि भी दी गयी थी। वात्सायन (I 316) न 64 कलाओ की सूची मे काष्ठशिल्प का भी वर्णन किया है। कच्चे माल के लिए बढई पेडो को काटते थे (X211 12,19) तथा आवागमन के लिए गाडी तथा लकडी की अन्य वस्तुऐ बनाते थे (L 11 23)[149]। काष्ठ शिल्पकारो की कला की अत्यधिक उन्नत स्थिति का प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि लकडी मे किये गये विभिन्न प्रकार के छिद्रो को तकनीकी नाम देना पडा।[150]

भवन निर्माण - वराहमिहिर ने पत्थरो का जिनका रग कबूतर (LIII 10,108), केसर (LIII 26) गाय के दूध (LIII 20), बादल (LIII 30,107) तथा चावल के आटे (LIII 73) के समान रग का उल्लेख किया है। हरे (LIII 34) तथा धूसर (LIII 44), पुतभेदक[151] तथा कुरूविड (LIII 28) आदि पत्थर भी पृथ्वी के अन्दर पाये जाते थे। आखिरी पत्थर

147- रक्तोत्पलताम्रसुवर्णरूधिरपारदमन शिलाधानाम्।
क्षितिन्नपतिपतनमूर्च्छापैत्तिक चोर प्रभुभौमि [9] सप्तम अध्याय

148- cf ancient India, 1 (1946), pp 41 ff (Ahicchattra), ASI, AR, 1911-12, pp 84 ff (Bhila), ibid, 1993 - 4 P 93 (Basarh)

149- cf Harasacrita, IV, V S Agrawala Gupta Art, p 11

150- cf Mudra raksasa Act 11, pp 129-31 where the carpenter Daruvarman repairs the palace and palace-gates before candragupta's entry

151- for these coin words, see supra p 251 note 1

कुरूविन्द की कठोरता मूल्यवान पत्थर (LXXX1 1) हीरे के दूसरे स्थान पर थी। वराहमिहिर ने वृहत्सहिता मे अनेक प्रकार के हीरे, मोतियो, नीलम, सीप आदि का उल्लेख किया है। उनका विश्वास था कि चरू और नाग इसमे निवास करते थे और ये सूखा को रोकने मे सक्षम थे। (2III 107-111)

पत्थरो को तोडने की रासायनिक प्रक्रिया

वराहमिहिर के अनुसार तत्कालीन लोगो को कम से कम पत्थर तोडने के चार तरीको का ज्ञान था –

(1) वह पत्थर (चट्टान) जो कि हथौडे की चोट से नही टूट पाता था, उसे पलाश तथा तिनदुक की आग मे तब तक गर्म किया जाता था जब तक कि उसका रग आग के समान नही हो जाता था इसके पश्चात् उस पर सुधाम्बु का छिडकाव किया जाता था जिससे वह तोडने योग्य हो जाता था।

(11) मोक्षक पेड की राख तथा लताओ को पानी मे उबालकर उपर्युक्त विधि द्वारा गर्म की गई चट्टान पर छिडका जाता था। इस प्रक्रिया को सात बार दोहराया जाता था।

(111) काजी सुरा, काबुलीचना तथा जुजुबी फलो के सात रातो तक एक साथ रखकर गर्म किय हुए चट्टानो पर छिडका जाता था।

(1v) नीम के पेड की पतित्तया छाल को, तिल का तना अपामार्ग, तिडुक गुडूची को जलाकर राख बनाना चाहिए। इस मिश्रण को सात बार गर्म चट्टान पर छिडकना चाहिए। तब वह टूटती है।[152]

अन्य व्यवसाय - तेली (तौलिक X 5, XV1 31) चौक पर काम करते थे इसलिए इन्हे

152- LIII 7 cf Utpala - Putair = bhidyata iti puta-bhedah

चाक्रिक[153] (X 9) और चक्रकर (x 12)[154] कहा जाता था। अभिलेखो मे तेली को तेलिका[155] तथा तिल–पिसक[156] कहा गया है। यह दर्शाया गया है कि इत्र व्यवसायी विभिन्न प्रकार के इत्रो को बनाकर समाज की सौन्दर्य की आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे। (गन्धयुक्तिजन XV 12, LXXXVI 41)। यह विशेष कला तथा स्वतन्त्र विज्ञान गन्धयुक्ति के नाम से अस्तित्व मे आया। आभूषण, सुनार (मालाकार, X 9, 2XXXV 32), (मालाकारी 2XXVII 9), प्रसाधक (XVI 177), रजक[157] (X 5, XV 22) रागजन (XV 12) सूचिक (दर्जी) (X 9), वाय (XV 12,), स्थपति[158], गन्धर्व[159] वादक (X 3), मागध (XV 10,)नर्तक (X 3, XVI 19, XLII 26) चित्रजन (X 10) इन्द्रजालजन (XVI 18,XIX 109) आदि मे विशेषज्ञ लोगो की सौन्दर्य आवश्यकताओ की पूर्ति तथा मनोरजन करते थे।

गुप्त और उसके परवर्ती युग की बहुत बडी ताबे की प्लेट भी प्राप्त हुई है। इन लेख प्रमाणो की नक्काशी को पढने केलिए नक्काशीकारी और लेखको की कुशलता की आवश्यकता होती है।[160] 'पुस्तवार्त' (LXXXVI 37) इस सम्बन्ध मे एक रूचिकर पद है। पुस्तपाल, कायस्थ आदि का विस्तृत वर्णन है। दामोदरपुर से प्राप्त ताम्रपत्र मे प्रथम कायस्थ का भी वर्णन है।[161] जो कि अधिकरण[162] का मुख्य सचिव था तथा

153- भेद यदा नैति शिला तदानी पलाशकाष्ठै सह तिन्दुकानाम्।
प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति।।
तोयृश्रित मोक्षकभस्मना वायत् सप्तकृत्व परिषेचन तत्।
कार्य शरक्षारयुत शिलाया प्रस्फोटन वह्विविता पिताया ।
तक्रकोजिकसुरा सकुलत्था योजितानि वदराणि चष्तास्मिन्।।
सप्तरात्रमुशितान्यमितप्ता दारयन्ति हि शिला परिषेकै ।।
नैम्ब पत्र त्वक् च नाल तिलाना सापामार्ग तिन्दुकस्याद्गुड्ची।
गोमूत्रेण स्रवित क्षार एषा षट्क्रतवोऽत्तातापितो भिघतेऽश्मा। [LIII 112-115]

154- cf utpala cakrıkas = cakrena carantı kumbha karatalıkas-prabhrtayah

155- CII 111, nıo 16, p 70, l 8

156- ASWI, IV No 12 p 104

157- Dyeıng had developed ınto a specıalızed are called ragayuktı experts where are referred to as ragayuktuıd, cf XVI 17 , LXXXVI 33

158- LII 97, 103, 108, LV30,LIX13

159- XV9M 9, XVI 17, XIX, 10, XXXII 11, LXXXVI 33

160- V39, 74, X 10, XXXIV 14 In ınscrıptıons lekhaka denotes a drıfter and ıs to be dıstınguıshed from the composer and engraver, cf CII, III, No 18, p 84, l 24, No 21, p 96, l 20, No 35, l 25, No 40, l 23, No 80, p 289, l 14, lA VII, p 242

161- EI, XV pp 130, 133, 138-39-143

162- Ibıd p 131 fn 7

उसका एक सदस्य भी होता था।

इस सम्बन्ध मे चित्रकारो (कॉरक[163] शिल्पा[164] कला विद्वस[165]) फूल, फलो और पेडो के विक्रेता (कुसुम–फल–मूल वार्त, V777, XV17, मौलिक, IX 32), शौन्धिक शराब बेचने वाला (माध्वीका विक्रय, L 5,) मछली पकडने वाले (XV22), धनुषकार (V73), किसान (कृषक[166]), वैध[167] आयुष्यज्न[168] भीषज[169] आदि का भी वर्णन मिलता है।

व्यापार- औद्योगिक श्रमिको द्वारा तैयार किया हुआ माल स्थल मार्गो एव जल मार्गो द्वारा सर्वत्र ले जाया गया जिसने गुप्त युग की समृद्धि को बढाने मे कम योगदान नही दिया। धन–सम्पत्ति और समृद्धि के अतिरिक्त एक विशाल सगठित साम्राज्य और स्थायी रहने वाली शान्ति ने इस व्यापार को प्रोत्साहन दिया। व्यापारियो के अनवरत क्रिया–कलापो का प्रमाण गुप्त युग के पहले से मिलता है। भारतीय व्यापार की सीमाये सीमित नही थी। पूर्व की भाति विश्व के अनेक देशो से भारत के वाणिज्यक सम्बन्ध थे। हमे फाह्यान, ह्वेनसग, कॉसमास आदि के विवरण से ज्ञात होता है कि भारत का चीन श्रीलका पूर्व मे स्थित देशो से और पश्चिम मे स्थित पर्सिया इथोपिया, मिस्र, बेजटाइन साम्राज्यो से सदैव व्यापारिक सम्बन्ध थे।

आन्तरिक व्यापार - गावो और शहरो के स्थानीय बाजारो मे मार्ग के दोनो किनारो पर सुसज्जित दुकाने[170] होती थी। साधारण दुकानदारो[171] तथा व्यापारियो (वाणिज[172],

---

163- V29,XXIX 7, LXXXVI 32
164- XV5, 9, 11, XVI 17, XXXI 3, XXXII 11, XXXVI 30, LXXXVI 43
165- XXXIII 19
166- V, 29, 34, XV 2 , XVI 8, 12
167- V41, X3, XV26, XXXIII 11, CIII 61
168- XVI 27
169- V80, VIII6, LX 32, 43, X 9,16 17, XV 7 17, CIII 92, 62
170- XLII 26
171- L 21
172- V29, VII 6, LX 31, X 6,7, XV 8,II, 13,25, XVI 28, XVII 26, XXXII 10, XXXVII 2, L 21, CIII 63

वाणिजक[173] पण्यव्रत्ति[174], पाण्याश्रचिन[175]) के अतिरिक्त धनी व्यापारियो का भी उल्लेख मिलता है। स्थानीय लोगो की आवश्यकता के पश्चात् व्यापारिक वस्तुओ को लाभ की दृष्टि से अन्यत्र ले जाया जाता था।

यातयात के साधन - वराहमिहिर ने यान[176] तथा वाहन को यातयात के साधन के रूप मे बताया है। बैलगाडी (शकट)[177] माल ढोने[178] और सवारी[179] दोनो के लिए उपयोग की जाती थी। इसके अन्य अगो मे चक्र[180], अर[181], नेमि[182], अक्ष[183], अणि[184] तथा युग[185] का वर्णन मिलता है। रग बिरगे रत्नो से सुशोभित 8 पहियो वाले आकर्षक इन्द्र के रथ का भी उल्लेख मिलता है (XLII 6)। कई रथो के चलने की गडगडाहट के शोर को बडा शुभ माना जाता था।[186] साधारणत यह रथ अश्वो द्वारा खीचे जाते थे परन्तु उत्पल (XLII 34) ने रथो के लए गोरथा या बैलो द्वारा खीचे जाने का वर्णन किया है। कहारो द्वारा कन्धे पर ले जाने वाली पालकी का वर्णन मिलता है। जिसे शिविका[187] कहते थे। एक आदमी द्वारा दूसरे आदमी को ले जाने का अद्भुत सन्दर्भ भी मिलता है। (LXXXV 73)। इस सन्दर्भ मे नारायण का विवरण भी YY मे मिलता है (YY, VII 20)। प्राय इन वाहनो को मनुष्य द्वारा चलाये जाने का विवरण मिलता है। पशुओ मे अश्वो तथा हाथियो का लम्बी दूरी के लिए प्रयोग किया जाता था।[188] हार्थियो पर सवारी करने के पहले कुथा[189] नाम का एक blanket उसकी पीठ पर डाला जाता था।

173- XXX1 4
174- X 17
175- XVI 16
176- IX 43, LXVII 116
177- VIII 3, XXXIV 5
178- XLII 21
179- LXXXV 74
180- XLV 9
181- XLII 22
182- Ibid
183- Ibid , XLV 9
184- XLII 22
185- XLV 9
186- XLII 34, LXVII 95
187- LXVII 45, LXXXV 73
188- LXXXV 73
189- CIII 23cf Amara 11 8 42 it is a varient reading given by utpala the other being katham staranam ca kecit kuthastaranam = it icchanti

उत्पल इसे वारन–कम्बल[190] कहते है। बैल बोझ उठाने और कभी–कभी सवारी के लिए उपयोग किये जाते थे। गति मे यह अश्वो के समान ही थे। नाव[191] और जहाज (पोत)[192] का प्रयोग जल मार्ग द्वारा व्यापार मे होता था।

समूह व्यापार - व्यापारी स्वय का समुदाय बनाकर किसी के नेतृत्व मे सगठित होते थे, जिसे सार्थवाह[193] या प्रधान[194] कहते थे। कभी–कभी उनमे एक से अधिक से अधिक प्रमुख होते है। ऐसी स्थिति मे ज्ञान और आयु मे श्रेष्ठ व्यक्ति को प्रमुख माना जाता था।[195] अत्यधिक सुरक्षा के पश्चात् भी कभी–कभी व्यापारी डाकुओ का शिकार हो जाते थे ऐसी स्थिति मे व्यापारियो के धन के नुकसान एव बर्बाद होने का वर्णन वराहमिहिर ने किया है।[196] कालिदास ने भी मालबिकाग्निमित्रण् ने विदर्भ से विदिशा जाने वाले एक काफिले का वर्णन किया। बसाढ (प्राचीन वैशाली) से प्राप्त एक मुहर एक डोडा को सार्थवाह और एक दूसरी मुहर मे सार्थवाह के साथ–साथ श्रेष्ठि का भी वर्णन मिलता है तथा व्यापारियो के सगठन (निगम) का उल्लेख मिलता है। इस काल मे सार्थवाहो की भी बहुत प्रतिष्ठा थी। दामोदरपुर से ताम्रपत्र से ज्ञात होता कि उनका प्रतिनिधि जिला परिषद का सदस्य होता था।[197]

श्रेणी - एक शिल्प के लोगो ने अपनी एक श्रेणी बना रखी थी। वे अपनी–अपनी श्रेणी[198] के अन्तर्गत ही कार्य करते थे और उनके अध्यक्ष को श्रेणीश्रेष्ठ[199] या श्रेष्ठिन[200] कहा जाता था। बसाढ से प्राप्त सिक्को से इस काल की श्रेणियो के सगठन पर पर्याप्त प्रकाश पडा है। इनमे श्रेणि सार्थवाह, कुलिक, निगम,

---

190- Kutha varana-pambales = tad = eva starnam
191- IV8
192- X 10, XLVII 12
193- IV 13, LXXXVI 14
194- LXXXVI 11
195- Sartha pradhanam samye syaj = jati- vidyavayo = dhikan, ibid
196- LXXXVI 39
197- El, XV,XV pp 130, 133, 138-139
198- X 13, XXXIV 19
199- VIII 10 cf utpala -Bahuram Samana-jatiuyanam sanghah srenitatab sresthah pradihanah
200- XXIX 10, XXXIII 25

श्रेष्ठकुलिक–निगम, श्रेष्ठिनिगम और कुलिक निगम का उल्लेख है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस समय साधारण व्यापारियो, दूर–दूर तक काफिला लेकर जाने वाले व्यापारियो प्रधान शिल्पियो और साधारण शिल्पियो सभी की अलग–अलग श्रेणिया थी। गुप्तकाल के और उसमे पूर्ववर्ती युग के कुछ शिलालेखीय साक्ष्यो से श्रेणियो, कारीगरो के सम्बन्ध मे विशेष जानकारिया प्राप्त होती है। पूर्व के अभिलेख से ज्ञात होता है कि कारीगरो ने अपनी अलग श्रेणिया बना ली थी जैसे–तेजी[201], बुनकर[202] तथा सनितकरस[203] आदि। श्रेणियो के बारे मे क्रमश कुमारगुप्त और बन्धुवर्मन[204] आदि मन्दसोरे अभिलेख मे स्कन्दगुप्त[205] के समय की इन्दौर ताम्रपत्र शिलालेख मे भी वर्णन है। भारतीय अर्थव्यवस्था मे इन श्रेणिया का महत्वपूर्ण योगदान था। ये श्रेणिया बैको के रूप मे भी कार्य करती थी। वे जनता का धन अक्षयनिधि के रूप मे जमा करती थी और नियम से उस पर ब्याज देती थी। अपने व्यवसायिक कार्यो के अतिरिक्त श्रेणियॉ अपने सघटित रूप मे समाज कल्याण के अनेक कार्य जैसे कि सभा भवनो का निर्माण यात्रियो के लिए प्याऊ बनवाना, मन्दिरो, तालाब का निर्माण भी कराती थी। मन्दसोर अभिलेख से ज्ञात होता है कि रेशम बुनकरो की एक श्रेणी ने सूर्य मन्दिर बनवाया था। पहाडपुर अभिलेख और दामोदरपुर ताम्रलेख सख्या 1, 2, 4 मे नगर श्रेणी का उल्लेख है। सम्भवत नगर वे व्यापारियो की श्रेणी का अध्यक्ष श्रेष्ठि कहलाता था।

क्षेत्रीय उत्पाद - साधारणत क्षेत्रीय आर्थिक उद्योग का सामान्यत स्थानीय क्षेत्रो मे उपभोग होता था। उनका अतिरिक्त भाग वहा पर निर्यात किया जाता था। जहा पर वे उत्पन्न नही होते थे। दूरस्थ क्षेत्रो मे होने वाला व्यापार देश के सगठन का साधन

201- Nasik inser of Abhira Isvarasena, Ibid p 104, 11 10-12
202- Nasik inscer no 9, ibid p 12
203- EI XXI P 59
204- CII III pp 8, ff
205- Ibid p 70

बनता था, क्योकि निश्चित सीमा तक वे एक दूसरे पर आर्थिक उत्पादो के लिए निर्भर रहते थे।

मसालो मे जैसे छोटी इलायची और लौग जो कि दक्षिणी पश्चिम के तटीय क्षेत्रो मे होती थी वहा से उसका निर्यात किया जाता था।[206] अगुरू तथा पारिजात उसी तरह उत्तर पूर्व मे पाया जाता था।[207] काली मिर्च किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित नही थी लेकिन निस्सन्देह रूप से यह दक्षिण प्रसिद्ध उत्पाद्य था और दूसरे देशो मे निर्यात की एक महत्वपूर्ण सामग्री थी, जो मलय पर्वत पर होती थी। तद्नुसार उसे मलय कहा जाता था। ह्वेनसाग ने भी इसे मलय का उत्पाध कहा है। कॉसमस के अनुसार इसका निर्यात पश्चिम बन्दरगाहो, फारस और इथोपियन मे श्रीलका की सीमा द्वारा होता था। सुगन्धित धूप सिलहक तुर्क देश मे पायी जाती थी इसलिए इसे तुर्कश कहा गया। अमरकोश के अनुसार (11 6 128) सिलहक यवन देशो मे और तुर्क मे उत्पन्न होती। उत्पल के अनुसार निघन्तु पधाश मे केसर कश्मीर मे उत्पन्न होती थी। वराहमिहिर ने दलदल तथा पहाडी क्षेत्रो के हाथियो के विषय मे कोई विशेष जानकारी नही दी है। कालिदास ने इसे कलिग कामरूप और अग से सम्बन्धित माना है। हीरे, मोती तथा अन्य मूल्यवान पथर भी कुछ क्षेत्रो की खानो से निकाले जाते थे।

मूल्य - मूल्यो के राजकीय नियन्त्रण की प्रथा जो कि प्राचीन काल से थी अब ज्यादा प्रचलित नही थी।[208] मूल्यो का उतार–चढाव सामान्यत आर्थिक आधार पर निश्चित की जाती थी जो कि वास्तव मे आपूर्ति और माग के नियमो पर आधारित थी। व्यापारिक उत्पाद्यो को रोकने की प्रथा और उचित समय पर उनको बेचकर अधिक लाभ कमाना प्रचलित था। इसलिए व्यापारी अक्सर मक्का, द्रव, शहद, इत्र, तेल, घी, गुड धातु जवाहरात, मोती, खाल, हथियार, कवच, गन्धे, ऊॅट, सूत्र, कम्बल, फूल, फल,

---

206- XXVII 9 But this chapter is spurious
207- XXVII 9 this stamza is not found in s Dwivedi's ed
208- Arthasastra B K Ii, chs 16, 21

बल्ब, जडे, केसर, काच मूग काच आदि को एक महीने से दो साल तक रखते थे और बेचते थे।

अकस्मात् मूल्यो मे उतार–चढाव को ज्योतिष के आधार पर समझाया गया है। वराहमिहिर ने ज्योतिषो को यह निर्देशित किया कि वह हर माह की विस्तार से मूल्यो मे उतार–चढाव की भविष्यवाणी बरसात, उल्का, दण्ड, आभामण्डल ग्रहण, छैदम्भसूर्य और इसी प्रकार के अमावस्या तथा पूर्णिमा मे अद्‌भुत सूचको और सूर्य का नई राशि मे प्रवेश के समय के आधार पर करे।[209] यह भी कहा है, दोपहर के समय सूर्यग्रहण के कारण मक्के के मूल्य अत्यधिक वृद्धि होती थी। (V30) मरकट राशि मे ग्रहण के कारण अनाज के दामो मे अनियमित वृद्धि होती थी। जब मगल दक्षिण से रोहिणी को पार करता था तो मूल्यो मे गिरावट आती थी। (VI 10) सूर्य से मिलने के बाद बुद्ध का उदय मक्के के दामो मे अनियमित उतार चढाव लाता था। (VII 1) जब बुद्ध हस्त से प्रारम्भ होने वाले किन्ही 6 तारो के समूह से गुजरता था तो तेल तथा अन्य द्रव्यो के दामो मे वृद्धि होती थी। (VII 4)। आगे यह देखा गया कि बारह वर्षीय चक्र के पॉच वर्ष मे मक्के से दुगुना या तिगुना लाभ होता है।[210] इसी प्रकार माघ तथा चैत्र महीनो मे भी मूल्यो की वृद्धि की सम्भावना होती थी। (VIII 68)। व्यापार की सामाग्रिया ग्रह नक्षत्रो द्वारा सरक्षित थी। यह अवधारणा थी कि जब सूर्य तथा चन्द्रमा एक साथ होते थे तथा उनपर उनके मित्र गृह की दृष्टि पडती थी तब लाभ निश्चित था। आगे यह भी कहा गया है। जब सूर्य ओर चन्द्रमा साथ होते थे अथवा जब पूर्णिमा होती थी तथा उनका समर्थन करने वाला ग्रह या तो साथ होता था अन्यथा दृष्टि डालता था तो उन वस्तुओ के दाम बढ जाते थे जो कि उसी राशि से सम्बन्धित थे जिसमे चन्द्रमा रहता

209- अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वाश्च।
द्रष्ट्वामावास्यायामुत्पाताम् पौर्णमास्या च।।
ब्रूयादर्ध विशेषान प्रतिमास राशिषु क्रमात् सूर्ये। [XLI 1-2]

210- Dvn - tnguno dhacyarhah, VIII 5 It should signify two or three time rise in prices and not fall as utpala would have us under stand Dhanyasyargho dıvgunas = tnguno va bhavatı, dhanyasya yan = mulyam = asıt ten aıva dngunem tngunam Va fabhya

था। इसी प्रकार जब चन्द्रमा के साथ था उस पर दृष्टि डालने वाला कोई हानिकारक ग्रह होता था जब उस राशि से सम्बन्धित वस्तुओ के दाम गिर जाते थे।

विदेशी व्यापार - बौधायन ने उत्तर भारत के निवासियो के जीवन की विशेषताओ मे अनेक समुद्रो द्वारा यात्रा करने का उल्लेख है। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि जहाज किसी खराबी के कारण डूब जाये तो सरकार को उसका किराया लौटा देना चाहिए। मेगस्थनीज ने लिखा है कि मौर्य सरकार व्यापारियो को जहाज किराये पर देता था। जातको से ज्ञात होता है कि जहाज चलाने वालो की भी श्रेणिया थी। जिनका एक प्रधान होता था। पेरिप्लस मे लिखा है कि प्रथम शताब्दी ईसवी मे दक्षिणापथ के पश्चिमी तट पर सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह भृगुकच्छ था। गुप्तकाल मे दूसरे देशो से भारत के व्यापारिक सम्बन्धो के प्रमाण मिलते है। इनसे यह ज्ञात होता है कि समुद्रतट जहाजो से भरा रहता था। वराहमिहिर ने दक्षिण भारत के कुशल नाविको का वर्णन किया है। (वारियर XIV 14) भारत के श्रीलका से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे जहा से वह मोती आयात करता था। कॉसमस के अनुसार श्रीलका की मध्यवर्ती स्थिति के कारण भारत के सभी भागो से और पर्सिया तथा इथोपिया से जहाज यहा आते थे। यहा से ये जहाज विदेशी बन्दरगाहो मालाबार तट, कालिआना (कल्याण) और सिन्ध मे भी जाते थे। उस समय भारतीयो को पर्सियन मोती बहुत पसन्द थे जो कि श्रीलका के मध्यवर्ती भागो द्वारा आयात किया जाता था।

भारत और रोम के मध्य सतत् व्यापारिक सम्बन्धो की पुष्टि बडी सख्या मे प्राप्त रोमन सिक्को से होती है। भारतीय राजदूत (530 AD and 555 AD) कॉसमस के अनुसार भारत के महत्वपूर्ण बन्दरगाह निम्नलिखित थे – सिन्धु, गुजरात, चौल, तथा जिन पाच बन्दरगाह से काली मिर्च विदेशो को भेजी जाती थी वे है, परती, मगारोथ (मगलोर) सालोपतन, नलीपतन और पाण्डो पतन थे। इनमे से अन्तिम तीन सम्भवत मगलोर और कालीकट के मध्य स्थित थे।

माणिक्य उद्योग - प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास मे भारत मूल्यवान पत्थरो के लिए बहुत बडे व्यापारिक केन्द्र के रूप मे स्थित था। रत्नो के विषय मे कुछ सन्दर्भ दोनो ही स्वदेशी तथा विदेशी साहित्यिक कार्यों के अथाहसागर मे फैले हुए है। अमूल्य रत्नो से सम्बन्धित सम्पूर्ण ज्ञान समय के साथ क्रमबद्ध किया गया तथा उसे शास्त्र का स्तर दिया गया और उसे 'रत्नपरीक्षा' से सम्बोधित किया गया है। यह कौटिल्य के (अर्थशास्त्र (B K 11 ch 11) मे) और वात्सायन (1 3 16)[211] द्वारा विर्णित है। जिसे वात्सायन ने अपनी 64 सहयोगी कलाओ की सूचीपत्र मे सम्मिलित किया है इस विषय को कब स्वतन्त्र विज्ञान माना गया यह सुनिश्चित करना कठिन है। वराहमिहिर और बुद्धभट्ट के अनुसार (c 6th cent A D) इस सम्बन्ध मे काफी विकास दिखायी देता है। सामान्य रूप से पूर्वाचर्यास (LXXXI 11) और रत्नपरीक्षा प्राचीन रत्नशास्त्र का सार है। कौटिल्य के अनुसार – यह आकृति विहीन अवस्था मे दिखायी पडता है या अव्यवस्थित ढग से मिलता है। यह कहा जा सकता है कि इस विषय मे वैज्ञानिक प्रगति ईसा पूर्व की पहले की शताब्दियो मे हुई।

यशोधरा के अनुसार ('रत्नपरीक्षा' रत्नो रत्न बज्र–मणिमुक्ति–आदि, तेषाम् गुण–दोष–मूले–आदिभि, परीक्षा व्यवहार–आगम, जयमगला–कामसूत्र I 3 16) के गुण, दोष, मूल्यो आदि का वर्णन करता है। कुछ निरीक्षण के पश्चात लिओस किनोट ने निर्णय दिया कि रत्नशास्त्र मे खान, रग, गुण दोष, प्रभाव मूल्य तथा नकली मुद्रा के विषय मे वर्णन मिलता है।[212]

परवर्ती युग मे वराहमिहिर रत्नशास्त्र के विशेषज्ञ माने गये। 'रत्न' का सस्कृत मे दो अर्थ माना गया है –

211- The view of louns finot (les lapidanes Indians p II) that the kamasutra is the earliest work to refer to ratan pariksa is to be modified in view of the discovery of kautilya's subsequent to the publication of finot & work

212- finot, op cit p XX

(i) सामान्य रूप से मूल्यवान वस्तु

(ii) विशिष्ट रूप मे मूल्यवान पत्थर

वराहमिहिर ने इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से वर्णन किया है। रत्न शब्द का प्रयोग हाथी, अश्व तथा स्त्रिया आदि के लिए किया गया है जो उनके वास्तविक गुणो के कारण उचित है। यहा पर हीरे का प्रयोग रत्नो के सम्बन्ध मे किया गया है। रत्नो के सम्बन्ध मे कुछ मान्यताये लेखबद्ध की गयी है। कुछ लोग मानते है कि इन रत्नो का उद्‌गम दैत्यवाला की अस्थियो से हुआ है और कुछ लोगो ने इसे दधीचि की हड्‌डी से उत्पन्न माना है। कुछ लोगो का मानना है कि हीरो के विभिन्न प्रकार पृथ्वी के स्वभाविक गुणो के कारण है। (LXXI X 3)[213]

रत्नो के वर्गीकरण मे जिन महारत्नो और उपरत्नो[214] को वराहमिहिर ने उपेक्षित किया है उन 22 पत्थरो के नाम निम्न है (1) वज्र[215] (हीरा), (2) इन्द्रनील[216] (नीलम), (3) मरकट, (4) करकेतन, (5) पदमराग (6) कधिराख्या[217] (7) वैधूर्य (8) पुलक (9) विमलक (10) राजमणि (11) स्फटिक (12) Moonstone (13) सौगन्धिक (14) गोमेदक (15) शख (16) महानील (17) पुष्पराग, (18) ब्रह्ममणि (19) ज्योतिरस (20) सस्यक (21) मुक्ता, (22) प्रवाल। इनमे से चार रत्न हीरा, मोती लालमणिक्य, पन्ना के विषय मे वर्णन मिलता है।

हीरा - सभी रत्नो[218] मे हीरा सर्वोत्तम माना जाता था और व्यावहारिक तौर पर सभी रत्नशास्त्र इसी से प्रारम्भ होते है। वेणा (नागपुर के पास (सुपर), हिमवत मतङ्ग, कलिग

213- cf Buddhabhatta, 1 2 ff
214- candesvara Ratnadıpıka, ı 5-7
215- Also mentıoned ın XVI 27, XXIX8, XL 8
216- Cf LIII 110
217- It ıs called rudhıraksa ın YY VI 9
218- cf BS LXXIX 2 P - that - utpala-ratnanam = adhıkara vajra-purıanam, sukranıtı IV2 47-Ratna-sresthataram vajram

(गोदावरी तथा महानदी के मध्य), पुण्ड्क (उत्तरी बगाल) के तट हीरे प्राप्ति के स्थान माने गये है।[219] इनमे से कुछ क्षेत्रो मे वर्तमान समय मे हीरा प्राप्त नही होता है। वराहमिहिर ने हीरे के तीन स्रोतो मे नदियो, खानो और छिटपुट स्थानो से प्राप्ति का वर्णन किया है। यह तथ्य अर्थशास्त्र मे भी वर्णित है। हीरे के अच्छे बुरे गुणो का भी सक्षेप मे वर्णन किया गया है।[220] यह कहा गया है कि एक आदर्श हीरा इतना कठोर होना चाहिए कि कोई भी पदार्थ उसमे घुस न सके,[221] वजन मे इतना हल्का होना चाहिए कि पानी पर तैरे और उसकी चमक, बिजली, आग तथा इन्द्रधनुष के समान हो। कौवे के पैर जैसे, कीट या बाल के निशान वाले मिट्टी या ककड या टूटे मुख्य वाले जले हुए विकृत रग वाले, कान्तिविहीन, छेद वाले, बुलबुले या दाग वाले या जिनकी नाक टूटी हुई होती थी, चपटेवासी फल के समान विचित्र रूप से लम्बे हीरो को दोषयुक्त माना गया है।

रत्नशास्त्रकारो ने विभिन्न रगो के आभूषणो को विभिन्न जातियो के लिए बताया है। ग्रन्थकार के अनुसार लाल और पीला हीरा क्षत्रियो के लिए, सफेद ब्राह्मणो के लिए, सिरीश के फूल के रग का वैश्यो के लिए तथा काला शूद्रो के लिए (LXXIX 11) होता है।

यह जाति के लिए विभाजन बुद्धभट्ट (I 23-6) द्वारा किया गया है।

219- BS, L XXIX 6-7 cf Buddhabhatta, I 18 who gives the same findspots

220- सर्वद्रव्यमेघ लघवम्भासि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्
तडिदनलशक्रचापोपर्य च वज्र हितायोक्तम्।।
काकपदमक्षिका केश धातुयुक्तानि शर्करैर्विदधाम्।
द्विगुणाश्रि दग्धकलुशत्रस्तवि शीर्णानि न शुभानि।
यानि व बुद्बुददलिताग्रचिपिटवासी फलप्रदीर्धाणि।
सर्वेशा चैतेशा मूल्याद् भागोद्रष्टमो हानि ।। [LXXIX 14-6]

221- Kalıdasa (Raghuvam's, 1 4) refers to a pierced by vajra, Mahan, Vajra Samutkırne, Maleınatha explains it as a special kind of needle meant for piercing precious stones (vajrena manı-vedhaka suıcı viseyena) and cites kesava its his support Atpresent the diamond is noted as a material of superlative hardness and the superfine finish obtained from the use of diamond letter tools is unsurpassed, cf Brpwer & Dey op cit, p 585
Page no 328 diamond weighing

अच्छा और खराब हीरा, धारण करने वाले व्यक्ति पर प्रभाव डालता था, ऐसा विश्वास था। वराहमिहिर के अनुसार दोषयुक्त हीरा धारण करनेवाले के रिश्तेदारो धन–सम्पत्ति और जीवन और जीवन के पतन का कारण होता है जबकि प्रभाव युक्त धन समृद्धि बढाता है।

गर्भवती स्त्री केलिए हीरा गर्भपात का कारण माना जाता है जबकि कुछ लोगो का मानना है कि पुत्र की इच्छा करने वाली स्त्री को हीरा नही धारण करना चाहिए। कुछ शास्त्रकारो के अनुसार श्रृगातक फल के समान आकार वाला हीरा पहन सकती है

मोती- मोती के विषय मे कहा गया है कि मुक्ता (XII 1,LXXX 13,25, 34),मुक्ताफल (LXXX 1,30) और मुक्तिक (XXIV 16, XXIX 6, LIII 110) को प्राप्त करने के आठ स्रोत है –

(1) हाथी (2) सरीसृप (3) सीप (4) कोच (5) बादल (6) बास (7) मछली (8) सूअर बुद्धभट्ट (II 52-71) ने भी इन स्रोतो के सम्बन्ध मे वर्णन किया है। शुक्रनीतिसार (IV 259) मे हाथी को मोती का स्रोत नही माना है। कौटिल्य ने मोतियो के लिए सीप, कोच तथा यत्र तत्र स्रोतो का उल्लेख किया है। सीप से प्राप्त मोती सर्वोत्तम मानी जाती थी और उसका प्रयोग भी सर्वाधिक होता था।[222]

मोतियो की प्राप्ति के आठ क्षेत्रो का वर्णन मिलता है। (1) शिमला (2) परलोक (3) सौराष्ट्र (4) ताम्रपर्णि नदी (5) पाराशव (6) कुबेर (7) पाण्ड्यवाटक (8) हिमवत (LXXX 2)।

222- द्विपभुजगशुक्तिशखाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि।
मुक्ताफलानि तेशा बहुसाधु च शुक्तिज भवित। [LXXX 1]

बुद्धभट्ट[223] ने पाडयवाटक के स्थान पर पाण्डू का वर्णन किया है और अपनी सूची मे पाराशव को छोड दिया है। सिघल प्राचीन काल से सम्रद्धिशाली मोतियो के उद्योग के लिए भलीभाति जाना जाता था। मेगस्थनीज और पेरीप्लस के लेखक ने श्रीलका के बडे–बडे मोतियो का उल्लेख किया है। चीनी यात्री फाह्यान के विवरण से ज्ञात होता है। कि श्रीलका मे मुख्यत मोती और दूसरे पत्थर पाये जाते थे। अच्छे मोती जिन्हे मणि कहा जाता था कि यह विभिन्न आकार चमकीले, हस के समान रग वाले और बडे होते थे। हीरे की तरह विशिष्ट रग के मोती विभिन्न प्रकार के देवताओ न्याय प्रमुख के प्रतीक माने जाते थे। लिनफूल के समान रग वाली मोती का अध्यक्ष, विष्णु को, चन्द्रमा के समान वाली का अध्यक्ष इन्द्र को, हरताल के समान वाली का वरूण को, काले रग के समान वाली मोती का अध्यक्ष, यम को पके अनार वाली मोती का अध्यक्ष ,वायु को तथा कमल के समान वाली मोती का अध्यक्ष अग्नि माना है।

मोती के व्यापार से राज्य को अत्यधिक कर प्राप्त होता था दो नाम से कर लिया जाता था (1) कार्षापण तथा (2) रूपक कर को दो भागो मे बाटा गया है।

(1)

(2)

मोती का वजन		**मूल्य**
(1) 4 माशकार	–	5300 कार्षापण
(2) $3\frac{1}{2}$ ''	–	3200 "
(3) 3 ''	–	2000 "
(4) $2\frac{1}{2}$ ''	–	1300 "

223- finot, op cit, text, no 75

(5)	2 ″	—	800	
(6)	$1\frac{1}{2}$ ″	—	153	′
(7)	1 ″	—	135	
(8)	4 कर्षण	—	90	″
(9)	$3\frac{1}{2}$ ″	—	70	″
(10)	3 ″	—	50	रूपक
(11)	$2\frac{1}{2}$ ″	—	35	″

मोतियो के सम्बन्ध मे कहा गया है कि ये सीप से निकाले गये है वराहमिहिर ने शेष सात स्रोतो से प्राप्त मोतियो को वर्णन किया है। ऐसा विश्वास था कि हाथियो के देवालयो से जो कि ऐरावत की श्रृखला से सम्बन्धित थे, जो चन्द्रमा के पुष्य तथा श्रवण के मिलन के समय, श्रावण के रविवार या सोमवार के क्रमबद्ध होने के समय मे मद श्रेणी मे जन्मे हाथियो से जो कि सूर्य एव चन्द्रग्रहण क्षेत्र के समय मे जन्मे थे और सूर्य एव चन्द्रग्रहण के समय मे पाये गये मोती अदभुत बडे विभिन्न प्रकार के तथा चमकदार होते थे। जो मोती सूअर के जबडे की जड से उत्पन्न हुये थे वह चन्द्रमा के समान कान्ति वाले थे।

वराहमिहिर ने मोतियो की अद्भूत शाक्ति का भी वर्णन किया है कि इसको धारण करने वाले को को पुत्र प्राप्ति का, युद्ध मे विजय, बीमारी और दुख से छुटकारा दिलाने, सौभाग्य प्रसिद्धि, धन, अन्य इच्छित वार, विष और दुर्भाग्य के प्रभाव से छुटकारा दिलाने वाली होती है।

लाल माणिक्य - यद्यपि मूल्यवान पत्थरो की सूची मे माणिक्य का तृतीय स्थान था। लाल माणिक्य के तीन वर्गो मे बाटा गया है। (1) सौगान्धिका (2) कुरूविन्द (3)

स्फटिक। इन तीनो प्रकारो के गुणो का वर्णन करते हुए कौटिल्य ने सौगन्धिका को सर्वोत्तम माना है। प्राय मूल्यवान पत्थरो मे वे अच्छे कहे जाते थे जो चिकने, चमकता हुआ, शुद्ध चमकदार, भारी, अच्छे आकार वाला शानदार और गहरे रग के होते थे। इसके विपरीत जो अशुद्ध, हल्की चमक वाले खरोचो से युक्त, खनिज पदार्थों से उसमे टूटे हुए आकर्षण विहीन, ककड मिश्रित दोषयुक्त कहे जाते थे। (LXXXI 3-4)

– पन्ना तोते के पख के समान तथा बास की पत्ती के समान हल्का हरा होता था। अच्छे गुणो से युक्त पन्ने को धारण करने वाले मनुष्य तथा देवता सन्तुष्ट होते थे। ऐसा वर्णन मिलता है। (LXXXII 1, LIII 46)

भार तथा माप - भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे माप तौल की व्यवस्था अलग–अलग थी। उत्पल की समास सहिता मे (XXIII 2) इसका वर्णन मागधमान के नाम से मिलता है। दूसरी माप तौल की मानक व्यवस्था कलिग से आरम्भ हुई और यह कलिग के नाम से जानी गयी। चरक को दोनो व्यवस्थाओ का ज्ञान था (कल्पस्थान, XII 105), परन्तु उसके अनुसार दूसरी व्यवस्था की अपेक्षा पहले वाली श्रेष्ठ थी।

तौल - यद्यपि इन कलाओ को अर्द्धधार्मिक रीतिरिवाजो से सम्बन्धित बताया गया है फिर भी यह कहना गलत नही होगा कि यह तराजू साधारण माप तौल मे की जाती थी।

भार- वराहमिहिर ने भार और आयतन से सम्बन्धित मापन के बारे मे बताया है तथा अनेक बाटो का उल्लेख किया है, जिसके द्वारा छोटी से छोटी कीमती वस्तु भी मापी जा सकती है।

(1) **तण्डुल** - 8 सफेद सरसो के बीज (सीत सरशय–आश्तकम्–तण्डुल भवेत् LXXIX 12) चरक (कल्पस्थान XII 87-88) के अनुसार

6 कण	=	1 मरिचि
6 मरिचि	=	1 रक्तसरशप
8 सरशप	=	1 तण्डुल

इन ईकाईयो का प्रयोग बहुमूल्य पत्थर जैसे कि हीरे को तौलने के लिए किया जाता था।

(2) **कृश्नल**- (LXXX II, गुजा (LXXX 12-13) मूल्यवान धातु तथा पत्थरो को मापने की ईकाई माना जाता था। देश के विभिन्न भागो मे भार मापने की प्रथा थी। पहली सरशप पर आधारित थी दूसरी क्रश्नल पर। लेकिन कभी–कभी एक ही क्षेत्र मे उनका उपयोग साथ–साथ किया जाता था। गुजा के भिन्न अको का (Fraction) भी उपयोग किया जाता था। (cf $3\frac{1}{2}$ hunjad, LXXX-11, $2\frac{1}{2}$ junjas, LXXX 12)।

(3) **माश्क** (LXXX 9, 10, LXXXI 8-9) – चरक की गणना के अनुसार।

2 तण्डुल	=	1 धस्य मास
2 मासास	=	1 यव
4 यव	=	1 अडिका
4 अडिका	=	1 मासक

(4) **कर्ष** - (LXXXI 7,8) कौटिल्य (II 19) और अमर (11 9 87) के अनुसार

16 मश्कस	=	1 कर्ष

इसे कीमती पत्थर और धातुओ को तौलने के लिए उपयोग किया जाता था।

(5) **पल** (LXXXI 7)

1 पल	=	4 कर्ष

ये लाल मणि को तौलने के लिए प्रयुक्त होता था।[224]

मापन की योग्यता - धनफल सम्बन्धी परिमाप अनाजो और द्रवीय पदार्थो जैसे पानी आदि के लिए उपयोग किया जाता था।

(1) **पल (XXIII.2)** - यह सबसे छोटी ईकाई थी।

(2) **कुदव (CIII.46)** - यह चार पल[225] के बराबर थी किन्तु बाद मे इसे पानी मापने के लिए $3\frac{1}{2}$ पल माना गया।

(3) **प्रस्था (LIV. 17)** 4 कुदव और 16 पल, 1 प्रस्थ बनाते थे।[226]

(4) **आढक (LIV.17) -** 4 प्रस्थ या 64 पल मिलकर एक आढक बनता है। किनतु वर्षा के जल को मापने के लिए 50 पल = 1 आढक का उपयोग किया गया है। वराहमिहिर ने स्वय भी वर्षा के जल को मापने के लिए अढक को साधारण से अलग परिमाप मे रखा है।

(5) **डौन** – (XXI 32, 34, XXIII 6-9, LIV 17, LVI 2)

सामान्य माप				मागध माप		
4	पलस	=	कुडव	3 1/8 पलस	=	1 कुढव
4	कुडवास	=	1 प्रस्थ	कूढवास	=	1 प्रस्थ
	(16 पलस)			12 1/2 पलस		

224- cf Arthasasgtra, 11 19,caraka kalpasthana, XII, manu, VIII 135, Amara 11 9 86
225- cf caraka, kalpesthaha, XII , anara, 11 9 89
226- Ibid

4	प्रस्थ	=	1 आढक	4 प्रस्थास	=	1 आढक
	(64 पलस)			50 पलस		
4	आधकस	=	1 डोन	4 आढकस	=	1 द्रौन
				200 पलस		

पाराम्परिक मापन - वराहमिहिर ने पारम्परिक मापो का वर्णन भी किया है –

(1) मापन-

धूल का एक छोटा कण	=	1 परमाणु
8 परमाणु	=	1 रजस
8 रजस	=	1 वालाग्र
8 वालाग्र	=	1 लिक्षा
8 लिक्षा	=	1 यूका
8 यूका	=	1 जौ का दाना
8 जौ के दाने	=	1 अगुल

यह 1 इच का (3/4) तीन चौथाई[227] भाग अन्दाज से माना जाता था।

2- **विष्टि (XXVI.9)** – अर्थशास्त्र के अनुसार

12 अगुल = 1 विष्टि [228]

---

२२७ जालान्तरगते भानौ यदणुतर दशन रजो याति।
तद्विन्द्यात् परमाणु प्रथम तद्रधि प्रमाणानाम् ।।
परमाणुरजो वालाग्रलिक्षयूक यदोङड्गुल चेति।
अष्टगुणानि यथोन्तरमङ्गलमेक भवति सख्या।। [LVII 1-2]

228- Asthasastra, ıı 20, p 106

3- **आर्तनी (LXXI 3)** – कौटिल्य की गणना के अनुसार 2 वितासी या 24 अगुल = 1 अर्तनी

4- **हस्त** (XXIII 2, XXXIII 6, 7, XLIII 3, 2III 4 f f,) एक हाथ = 24 अगुल

हस्त को नाम के विभिन्न प्रकारो का उल्लेख है कौटिल्य के अनुसार– 24 अगुल का एक हाथ जगलो को मापने के लिए 28 अगुल चारागाह को मापने के लिए हाता था।

5- **दण्ड (XXIV 9)** – अर्थशास्त्र की गणनानुसार

1 दण्ड = 4 आर्तनी होते थे।

6- **धनुष (XXXIII.6)** – यह दण्ड के समान ही होता था।

7- **पुरूष** – वराहमिहिर के अनुसार इसका प्रयोग लम्बाई तथा गहराई मापने के लिए किया जाता था। कौटिल्य ने पुरूष के आठ प्रकारो का वर्णन किया है।

8- **योजन** – अर्थशास्त्र के अनुसार –

1000 - धनुष (4000 हस्त) = गोरूत

4 = 16000 हस्त या 8000 यार्ड = 1 योजना

धूल का सबसे छोटा कण = 1 परमाणु

8 परमाणु = 1 रजस

8 रजस = 1 वालाग्र

8 वालाग्र	=	1 लिक्षा
8 लिक्षा	=	1 यूक्ता
8 यूक्ता	=	1 यव
8 यव	=	1 अगुल = 3/4"
8	=	1 कश्मागुल
12 अगुल	=	1 वितास्ति = 9'
24 अगुल	=	1 हस्त, राम अतेनी
	=	1 1/2"
4 या 6 हस्त	=	1 दण्ड = 6" या 9
4 दण्ड	=	1 धनुष = 6"
3 1/2 या 5 हस्त	=	1 पुरूष = 5 1/4" या 7 1/2"
16000 या 32000 हस्त	=	1 योजन = 4 54 या 9 99 मील

मुद्रा ढलाई

वराहमिहिर ने सिक्को के दो प्रकार काषपिण और रूपक का वर्णन किया है, जिसका मूल्याकन कीमती पत्थरो के मूल्य के कर के रूप मे किया जाता था।

पूर्व गणनानुसार भिन्न वजन के मोतियो की गिरती हुई कीमत के आधार पर हम यह कह सकते है कि कार्षापण और रूपक को वराहमिहिर ने दो विभिन्न नामो से एक ही सिक्के के लिए प्रयोग किया है।

मनु के अनुसार - एक चांदी का सिक्का, 16 रूपया (मासक) पुरान के नाम से जाना जाता था।

चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में सबसे पहले गुप्तसम्राट में चांदी के सिक्के चलाये, उसने शकों को हराकर पश्चिमी भारत पर अधिकार किया था और वहां शंकों के राज्यकाल में ही चांदी के सिक्के चलते थे। यह सिक्के रूपक के नाम से जाने जाते थे। गुप्तकाल की बेग्राम से प्राप्त ताम्रपत्र अभिलेख में गुप्तयुगीन सोने और चांदी के सिक्कों का अनुपात 1 : 16 दिया गया। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कार्षापण पूरी तरह रूपक में परिवर्तित हो गया था। ब्रहत्संहिता के अनुसार निस्सन्देहास्पद रूप से शब्द 'कार्षापण' परवर्ती गुप्त युग में भी चांदी के सिक्कों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। उत्पल द्वारा भी इस कथन की पुष्टि होती है।

अध्याय 4

धार्मिक अवस्था

4. धार्मिक अवस्था

वराहमिहिर के ग्रन्थो से प्रचुर मात्रा मे विभिन्न क्षेत्रो मे तथ्य उपलब्ध है, जिनसे हम तत्कालीन धार्मिक स्थिति के विषय मे भी अनेक जानकारी ग्रहण कर सकते है। यह समय स्पष्ट रूप से प्रगतिवादी धार्मिक विचाराधाराओ का था। यद्यपि नास्तिक लोगो ने जैसे बौद्ध और जैन ने समाजके कुछ वर्ग को अपने पक्ष मे ले लिया था फिर भी उनमे निर्णायक अवनति थी। ब्राह्मणवाद उत्थान पर था। परन्तु यह मौलिक रूप से वेदो मे वर्णित ब्राह्मणवाद से अलग था। कुछ वैदिक देवता एक साथ ही विलुप्त हो गये और रोज का अस्तित्व पहले के अपेक्षा प्रकृति औार गुणो मे बदल गया। जबकि वैदिक देवता जैसे इन्द्र वरूण और अग्नि को बहिष्कृत कर दिया। विष्णु और रूद्रशिव जिनका पहले वैदिक काल मे मन्दिरो मे महत्व नही था। उनकी उत्पत्ति महत्वपूर्ण देवता के रूप मे हुई जिन्हे लोगो द्वारा धार्मिक समर्थन मिला।

वैदिक कालीन देवता :-

इन्द्र - इन्द्र[1], जो सकर[2], महेन्द्र[3], मधवन[4], पुरूहूत[5] तथा सहस्त्राक्ष या सहस्रचक्षु[6] जैसे विभिन्न नामो से जाने जाते थे, वैदिक देवालयो मे महत्वपूर्ण देवता थे। इनके पराक्रम की गाथाये ऋग्वेद के 250 मन्त्रो मिलती है[7]। साहित्य मे इनकी श्रेष्ठता भक्ति काल के आने तक रही। इसीलिए इनको देवताओ का देवता कहा गया था तथा इनको सुरपति (XXX11 7,16, LXXXV75), सुरेश (XL11 55), अमरप (X11 12,XL11 8),

---

1- VIII 26,XXXII 6,18,24,XLII 51,55,XLVII 78,LII 43,LVIII 14,LIX 11 LX 11,12, 12, LXVII,LXVIII 29,29, LXXIX 8, LXXX 7, XCVI 8, XCIX 1
2- VIII 23,33,XXXII 6, XXXIII 20, XLII 6, 11,14,30,37,39,55,XLIII26,26,XLV 73, XLVII 77, LXXXV 1, XCVII 4 5, XCVIII 1
3- XXXIII 24 , XLIII 14, XLV 80, XLVII 2, LVII 42
4- XLII 9, XLVII 70
5- XLII 56 , LIII 3
6- ı e ¼ th of the Rgveda Vide A A Murdonell Vedıe Mythdogy P 54
7- for an epıgraphıc allusıon TO Indra as thousand eyed vıde CII, III,No-47, 1 Also c f Raghuvamsa, III 43

अमरात (XL11 7), देवराज (XL11 18), देवरात (XXX11 27), विबुधाधिपति (L11 47) तथा अनिमिष भर्तु (XL11 60) की उपाधियॉ दी गई है। उनका पराक्रम भी इसी ओर सकेत करता था। वृत्रहण (XL11 55), बलमिद (V111 23,L11 67LYY,IV29) तथा पुरन्दर की उपाधि उनको क्रमश वृत्र, बल और असुरो का वध करने से मिली थी। सौ घोडो की बलि करने के बाद इन्द्र को शतमन्थु उपाधि मिलने की मान्यता का प्रमाण मिलता है (XL11 54)[8] । अन्य जगहो पर इनको अन्य देवताओ, जिन्होने अपने शत्रुओ को समाप्त कर दिया था, द्वारा घिरा हुआ पाया जाता था (XL111 26)। यह मान्यता थी कि वह दिन के दूसरे पहल मे भूकम्प लाते थे तथा सूर्य और चन्द्रमा के चारो ओर एक लाल रग का घेरा होता था। (XXXIV2) । इनका वर्णन पूर्वी दिशा मे प्रमुख देवता के रूप मे भी किया गया है। (L111 3,LXXXV75)।

इन्द्र और अग्नि सामूहिक रूप से 60 व्रर्ष के दसवे युग और विशाखा नक्षत्र के अध्यक्ष थे।[9] इन्द्र के परिवार के पौराणिक महापुरूषो ने भी काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। उनकी मॉ, पुत्र जयन्त, पुत्री तथा पत्नी का भी वर्णन है।[10] जबकि इसके दूसरे पहलू पर विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रचलन मे विष्णु शिव और यहा तक कि ब्राह्मण का महत्व भी उनसे ज्यादा था। इसलिए यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने पहाडो के पर काट दिये थे। जब उन पर असुरो की शक्ति भारी पडने लगी तब उन्हे हराने के लिए विष्णु से प्रार्थना करनी पडी (XL11, 2-7)। लेकिन इसके पश्चात् कि उनको एक निम्न स्थान मिला था फिर भी उनके श्रद्धालुओ की कोई कमी नही थी। (XV14)[11] । यह भी ज्ञात होता है कि पुजारियो ने कई देवता जिनके नाम प्रतिमा, प्रतिस्थापनाध्याय की प्रतिमाओ की स्थापना की। यद्यपि इन्द्र की प्रतिमा का उल्लेख

8- cf Raghuvamsha,III 38, 49

9- Sakranela (VIII 23), Indragni (VIII 45), Sakragni (XCVII 4) cf "with Agni Indra is more frequently coupled as a dual divinity than with any other god" (Macdonell op cit, p 57)

10- XLII 39, 40, XLV 80, LII43, 54

11- The existence of Indra cult in the post maurya epoch is attested to by a large number of yupas found in U P Rajisthan and central India Symbols like Indradhvaja, vajra and kalpa-vrksa occur profusely on coins, seals, sealing and sculptures of north India assignable to the period between 200 B C abd 500 A D

नही है। इससे ज्ञात होता है कि इन्द्र को लोकपाल के रूप मे पूजा जाता था और उनको कोई मन्दिर समर्पित भी नही था।

एक जोडी जो कि इनकी मूर्ति शिल्प की विशेषताओ को समर्पित है, मे बताया गया है कि महेन्द्र के सफेद हाथी के चार दॉत है, हाथ मे वज्र है मस्तक पर तीसरी आख अकित है।[12] बौद्ध भगवान सक्र, जो कि इन्द्र के समान प्रतीत होते है और जिन्होने बुद्ध का गान्धार तथा मथुरा मे साथ दिया था, भी वज्र धारण किये हुए है।[13] यह परवर्ती गुप्तकालीन शिला पहाडपुर मे पायी गयी थी, मे यह विशेष सन्दर्भ मिलता है कि एक दो हाथ वाले भगवान एक विचित्र वस्तु धारण किये हुए है, जो कि वज्र के समान प्रतीत होती है तथा उनके मस्तक यह पर तीसरी आख अकित है और उनका हाथी उनके पीछे खडा दिखाया गया है।[14] रायबहादुर, के०एन०दीक्षित जिन्होने तीसरी आख को एक विचित्र विशेषता के रूप मे माना है ब्रहत्सहिता भी मे इसके विवरण से अनभिज्ञ थे। मथुरा की छठी शताब्दी की एक शिला जिसमे तीसरी आख क्षैतिज रूप मे दर्शायी गयी है। वह सिर इन्द्र की प्रतिमा का था न कि विष्णु का जो कि भ्रमवश माना गया था।

यहा इसका सक्षिप्त वर्णन गलत नही होगा कि प्राचीन काल मे राजाओ द्वारा इन्द्र के सम्मान मे उत्सव मनाया जाता था। इस उत्सव मे इन्द्र के ध्वज को फहराया जाता था यह उत्सव भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को प्रारम्भ होता था उसी माह के कृष्णपक्ष के प्रतिपदा को समाप्त होता था।[15] इसका विवरण कनिष्क सूत्र तथा

12- शुक्ल चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम्।
तिर्यगललाटसस्थ तृतीयमपि लोचन चिह्नम्।।LVII 42
His elephant is named Airavata LXXX 20 for an epigraphic allusion to it vide CII, III, No 17 PL 1 Indra is styled kulishn-dhamn and kalishabhrt (XXXII 28, YY,I 17)

13- cf A getty, the Gods of Northern Budhism, p 49, f

14- K N Dikshit, Excavatives at Paharpur MASI, 55, p 46,PL XXVIId

15- According to the Amanta system cf verse 3 of the Mandassor inscription of the time of Naravarman, dated Nilva 461 which refers to sakra's festival in the rainy season Sec siwar, select inscription, 2nd edition, p 397

याज्ञवल्वन्य स्मृति मे और महाभारत[16] तथा अन्य कार्यो[17] मे सक्षेप मे पाया गया है।[18] इसे महाभारत के 'शक्रोत्सव' और 'इन्द्रमहा' तथा 'इन्द्रध्वज सम्पद' तथा 'महा' का नाम दिया गया है।

जब इन्द्र के नेतृत्व मे देवताओ द्वारा असुरो को परास्त करना असम्भव हो गया था तब ब्रह्मा के परामर्श पर वे विष्णु के पास गये और उनसे प्रार्थना की, तत्पश्चात प्रसन्न होकर उन्होने अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त की। इन्द्र ने चेदि राजा वासु उपरिकर को एक बास का डडा दिया, जिसकी राजा ने यथावत पूजा और उसके पश्चात ये समारोह प्रारम्भ हो गया।[19]

वरूण - ऋग्वेद मे वरूण इन्द्र के साथ श्रेष्ठतम देवताओ मे थे तथा उनके पास जल को नियन्त्रित करने की भौतिक एव नैतिक शक्ति थी। अथर्ववेद के समय उनको मात्र जल का नियन्त्रक माना जाता था तथा उनकी श्रेष्ठता समाप्त हो चुकी थी।[20] इसके बाद हिन्दुओ के देवालयो मे उनकी अवनति भारतीय नक्षत्र के स्थान पर हुई। वराहमिहिर ने इनको भूकम्प का प्रमुख देवता माना है। कक नामक 22 पुच्छल तारे (XI 26) तथा अगस्त्य ऋषि (XII 13) इनके पुत्र कहे गये है, पर यह पश्चिम चतुर्थाश[21] के रक्षक देवता तथा जल के देवता के रूप मे मुख्यत जाने गये। इनकी विशेषताओ के कारण इन्हे अम्बुपाली तथा जलेश्वर की सज्ञा दी गयी।[22] इनकी पूजा जल द्वारा होने वाली क्षति से बचने के लिए की जाती थी तथा कुए की खुदाई के

16- It prescribes a holiday when the flag in Indra's honour in raised and taken down vide also Rayapseniya sutta, kaulika 148, Nayadhammakahal 25
17- I 63 I-29 cr Edition (BORI), I LVII 1-29
18- Krtya-ratnakaros, samskara candrika cf HDS,II, pp 398 825
19- The Mahabharat does not bring in Brahma and visnu and simply states that the festival was started by vasu who obtained the staff from indra and planted it in the ground at the end of the year and raised it on the other day As suggested by kane (HDS, 11 P 826), the raising of the bamboo staff on the Ist day of caitra evey year in Deccan and other places may be its reminiscent
20- Macdonell, op cit,pp 22,25-6
21- LIII 3,LXXXV 75 cf Junagardh stone inscr O Skandagupta (CII, III, p 89, 1 9)
22- LII 44,YY,VI 12 Also cf XXXIV2

पूर्व बलि चढाई जाती थी।[23] साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि वरूण देवता का वाहन हस होता था तथा हाथो मे फदा धारण किये रहते थे [hams-arudhas = ca pasa-bhrd=varunalı,[24]LVII 57]। जबकि मूर्ति पर वह एक मगरमच्छ पर खडे है न कि हस पर।

स्वर्गीय राय बहादुर के०एन०दीक्षित ने वरूण को यम[25] के रूप मे माना है जबकि यम का परम्परागत शस्त्र दण्ड अनुपस्थित है, पर वरूण की मूर्ति शिल्प मे पास (Pasa) की उपस्थिति के कारण इनको यम के रूप मे मानना पडता है।

प्रजापतिब्रह्म - ऋग्वेद के दशम मण्डल मे प्रजापति को स्वर्ग पृथ्वी जल तथा सम्पूर्ण जीवन का सृष्टिकर्ता तथा सभी आस्तित्वो का देवता माना गया है तत्पश्चात् सहिता और ब्राह्मणो मे इनको श्रेष्ठतम ईश्वर माना है जिन्होने देवताओ और दानवो की उत्पत्ति की।[26] पर आश्वलायन ग्रहयसूत्र (III 4) मे ब्रह्म को हिन्दुओ मे विख्यात त्रिमूर्ति देव मे प्रथम पाया गया है। वराहमिहिर ने इनको दोनो नामो की सज्ञा दी है।[27] इसके स्वयभू[28] ब्रह्माण्ड का रचयिता प्रथम मुनि तथा मानव जाति का पितामह माना गया है और स्वयमू[29], दत्र और विश्वकृत[30], प्रथममुनि[31] और पितामह[32] की सज्ञा दी गयी है। इनको सूर्य और चन्द्रमा के चारो ओर हरा गोला तथा ग्रहण पर राज्य करने वाला, पचवर्षीय युग के चौथेवर्ष, प्रथम युग मे पाचवे वर्ष, रोहिणी नक्षत्र प्रतिपद की पहली पूर्णिमा और कर्ण नामक वालव के अध्यक्ष के रूप मे माना जाता है।[33]

23- XLV50,LIII 124
24- cf YY, VI 12 where gada ıs mentıoned as another attrıbute of varuna tal-esvaram pas-anvıtam saha gadaya ca pujıtam
25- K N Dıkshıt, Exceavatıons at paharpur, MASI, 55, P 50, PI XXXII
26- Macdonell, op cıt, pp 118-9
27- Prajapatı VIII,24, 29, XI 25 , XLVII 68 Brahma I 5,6 II 12,V 19, 20,XI 25,XXVI 5, XXXIII 22,XLV10 XLVII.55,LXXIII 20
28- XLVII.2
29- XLVII 2
30- LXXIII 18,19,I 6
31- I 2
32- I 4,XXXII 3,5, XXXIV2, LXXXVII 40
33- XXXIV2XV19,20, VIII.24, VIII 29, XCVII 4,XCVIII 1,XCIX 1

ब्रह्मदण्ड, गणक तथा चर्तुसार नामक पुच्छल तारे इनके पुत्र कहे गये है (XI 15,25) तथा विलक्षणता पूर्वक न्याय की देवी इनकी पुत्री कही गयी (XXVI 5)। बिना किसी अपवाद के इनको प्रत्येक विज्ञान एव ज्योतिष का जनक माना गया है। इस विषय मे उल्लेखनीय तथ्य प्रमाणित किये है। इनको देवताओ का प्रधान कहा गया है तथा इन्द्र को इनकी आज्ञा माननी पडती है। (XXXII 3-6)[34] ये सदैव देवताओ के शुभचिन्तक रहे है। इन्द्र को भलाई हेतु इन्होने ब्रहस्पति को 'पुष्य शान्ति' का पाठ पढाया था (XLVII 2)। ब्रह्मा का निवास स्थान ब्रह्मलोक जो कि ईश्वर से डरने वाले लोगो का लक्ष्य है वह देवताओ, साधुओ सिद्ध पुरूषो कवियो और पितरो की आत्मा का निवास स्थल भी कहा जाता है। (LXXIII 19)।

पौराणिक गाथाओ के अनुसार ब्रह्मा द्वारा दिये गये वरदान के कारण ग्रहण के समय दिये गये चढावे मे राहु का भी भाग होता था। ब्रह्मा को उचित महत्व दिया गया तथा उनके सम्मान मे एक देवालय का भी उल्लेख है। (Brahmayatana,XXXIII22)। बाद के देवालयो मे ब्रह्मा को वैदिक सस्कृति का प्रमुख प्रतिनिधि माना गया है, जिसका महत्व समाप्त हो चुका था यह तथ्य प्रमाणित किया जाता है कि वेद के ज्ञाता ब्राह्मण की ब्रह्म की प्रतिमा बना सकते थे। (LIX 19 and comm) यह प्रतीत होता है कि वराहमिहिर को त्रिदेव की अभिधारणा का ज्ञान था क्योकि इस बात का उल्लेख उन्होने निश्चितक्रम मे ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र (शिव) को करके दिया है (XLVII 55)। यद्यपि वह त्रिदेवो मे प्रथम थे पर महत्वता मे विष्णु और शिव उनसे अग्रणी थे।[35] यह अवधारणा बन गई थी कि उनका जन्म सासरिक अण्डे से हुआ था या फिर विष्णु की नाभि से निकले हुए कमल से हुआ था, जिससे फलस्वरूप उनको

34- cf LXX XVII 40 where gods are referred to as pitamahadi

35- It was customary with the devotees of vishu and siva to represent Brahmi as subordinate to their respective deity cf CII, III, No 35 , lines 1-2 were svayambhu is said to be obedient to siva's commands

कमलजा[36] कमलयोनि[37] पद्मोद्भव और पकज–प्रभव[38] की सज्ञा दी गयी है। इस किवदन्ति के अनुसार इनकी अनेक प्रतिमाये मिली है।[39] जब देवता युद्ध मे अपने शत्रुओ को परास्त नही कर पाते थे और ब्रह्मा उनकी सहायता हेतु नही पहुँच पाते थे तब ब्रह्मा उनको विष्णु की सहायता मागने का परामर्श देते थे।[40] यहा तक कि डेढ पद्य मे ब्रह्मा की प्रतिमा विद्या से सम्बन्धित बहुत कम विश्लेषण मिलता है। ब्रह्मा के एक हाथ मे एक जल से भरा हुआ कलश है, उनके चार मुख है तथा एक कमल पर विराजमान है।[41] उनकी हाथो की सख्या का उल्लेख नही है। मथुरा से दो हाथ वाली दो कुषाण प्रस्तर प्रतिमाओ मे उनके शीर्ष की विशिष्ट व्यवस्था है। चौथे मुख का वर्णन करने की कठिनाई को तीनो सिरो को एक पक्ति मे रखकर तथा चौथे को मध्यवाले पर अध्यारोपित करके दूर किया गया है। इनमे से एक प्रतिमा मे वह अपने बाये हाथ मे अम्रतघट धारण किये हुए है। भूमर मे स्थित शिव के मन्दिर मे चैत्य वातायन मे ब्रह्मा की चार सिरो वाली और चार हाथो वाली प्रतिमा कमल पर बैठे हुए अकित है। चारो हाथो मे से दो टूटे हुए है तथा सीधे हाथ मे एक कमल डण्डी पकडे हुए है। ऐहोल से प्राप्त एक शिला मे ब्रह्मा की सुन्दर तीन मुख तथा चार हाथो वाली कमल पर बैठे हुये प्रतिमा अकित है। तीनो हाथो मे क्रमश एक गुलाब, एक फदा तथा कमण्डल धारण किये हुए है। बाया हाथ वरदान मुद्रा मे दर्शाया गया है।[42]

विष्णु - विष्णु ऋग्वैदिक मन्दिरो मे सूर्य देवता के रूप मे माने जाते थे और उन्हे देवताओ मे निम्न स्थान प्राप्त था, पर भक्ति काल के आगमन के साथ विष्णु अपना

36- XCVII 4, XCVIII 1, XCIX.1
37- V2
38- TY 1 2, III 2
39- E g m s vats, the gupta Temple at devgadh, MASI, No 70 PI X(b)
40- See supra, p 119
41- Kasyapa (as cited by utpala on p 785) describes him as four faced Having a staff, skin of a black antilope and a water vessel ब्रह्मा चर्तुमुखो दण्डी क्रष्णाजिनकमण्डली। it seems to stress his brahmacarin aspect where in he wears the hide of a black antelope and carries a staff and a kamandalu in his hands
42- T A G Rao, Elements of hindu iconography, vol-II, pt II pt CXLVI, for another brahma figure haiting from the same place vide ibit, pl CXLIV, G II khare, Musti-vijnana (marathe), pp 7-8, pL I

सौर लक्षण खो–चुके थे तथा पुन वह महत्वपूर्ण देवता के रूप मे प्रकट हुए और उनमे अद्भुत प्रताप एव शक्ति का समायोजन हो गया था। वराहमिहिर मे विष्णु[43] के कई नाम दिये जिनसे वे जाने जाते थे वे नाम है–नारायण[44], हरि[45], केशव[46], माधव, मधुसूदन, गोविन्द, श्रीधर, ऋषिकेश, दामोदर (CIV14-5), वासुदेव (LXVIII 32) और कृष्ण (LVII 37)। इनको भगवत्[47] नाम की सज्ञा भी दी गयी।

अचिन्त्य, असम, सम, सर्वदेहिनाम सुखस्म, परमात्म और अनादि के रूप मे भी इनका वर्णन किया गया। विष्णु की सभी भगवानो मे सर्वमान्य श्रेष्ठता, शिव और सूर्य को छोडकर इस कथा से प्रमाणित की जाती है कि जब समस्त देवता असुरो से परास्त होने के पश्चात उनकी शरण मे चले गये। प्रतिमा विद्या मे वराहमिहिर द्वारा विष्णु को श्रेष्ठतम स्थान प्रदान किया गया है। यह माना जाता हैकि साठ वर्षीय चक्र (VIII, 21,23,26) के प्रथम युग मे किसी भी प्रकार के हीरे के समान मोती श्रावण नक्षत्र, तीसरी पूर्णमासी, मृगशिरा से प्रारम्भ होने वाले वर्ष के प्रत्येक 12 वर्ष तथा बुध पर विराजमान है।

विष्णु के सम्बन्ध मे कुछ पौराणिक महापुरूषो का भी वर्णन है। श्रोध इनका निवास स्थल दर्शाया गया है। देवी श्री इनकी पत्नी दर्शायी गयी है तथा यह पीले वस्त्र धारण किये हुए है। (XXIV18)। इनकी नाभि से निकले हुए कमल द्वारा ब्रह्मा के जन्म की अवधारणा के कारण इनको कमलनाथ (XLIII 1), अबजनाभ (LXVII 94), पद्मनाभ (CIV15), पद्मधन (TY, I 2) नामो से पुकारा जाता था। मधु नामक दैत्य का वध करने के कारण मधुसूदन कहा गया (CIV14)। प्रख्यात अवधारणा है कि वर्षा

43- VIII, 23, 26, XLIII.4, 6 30, 54, XLIII,6 XLV 11, XLVII 26, 55 LVII, 31,35 LXX.19, LYYIX 8, LXXX.7, C V 6, 14
44- VIII 21 XLII 5 , XLVII 77 , CIV 14
45- XXIV 18 , XCVII 5 , XCVIII. 1, TY, 1 2
46- XLII 2 , CIV 8, 14
47- XLII 2 fleet (CII, III p 28, fn 5) has rightly observed that the title Bhagvat seems to belong most particularly to visnu, and to denote him wherever these is nothing in the context to give any other application

ऋतु के चार मासो मे यह निद्रा मे रहते है तथा शरद ऋतु मे यह जागते है। (XLIII 1)[48]

विष्णुवाद पहले और अब तक ब्राह्मण साहित्य के दो प्रमुख समुदाय मे से एक है जो कि अपने आप मे समाज के प्रमुख वर्गो से जुडा हुआ है। वराहमिहिर के बहुत पहले ही धार्मिक मान्यता मे वैदिक देवता विष्णु, लौकिक देवता नारायण तथा पौराणिक देवता वासुदेव कृष्ण का एकीभूत हो गया था, जिससे कि परमकोटि के वैष्णव सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई।[49] इस तथ्य का प्रमाण उन कार्यो मे भी मिलता है, जिसमे विष्णु नारायण तथा कृष्ण नाम से एक ही देवता का सम्बोधन किया गया है। इस तथ्य को कि विष्णु देवताओ की सहायता करते थे। इस बात से प्रमाणित किया जा सकता है कि उन्होने देवताओ को एक ध्वज प्रदान किया था, जिसके द्वारा उन्होने असुरो पर विजय प्राप्त की (XLII 3 5)। विष्णु और बलदेव की प्रतिमविद्या मे वर्णन करने के पश्चात् वराहमिहिर ने कहा कि देवी एकनामसा को बलदेव और कृष्णा के बीच मे रखना चाहिए। (LVII 31-9)। इस प्रकार विष्णु नारायण और कृष्ण मुख्यत एक ही भगवान को दर्शाते है। गोविन्द तथा दामोदर नाम द्वारा इनकी ग्वाले की छवि को दर्शाया गया है।[50] वराहमिहिर विष्णु धार्मिकता के अनुयायियो को वैष्णव[51] और भागवत[52] नामो से पुकारते थे। उत्पल ने भागवतो को भगवद्भक्त या वैष्णव और वैष्णवो को विष्णु भक्त[53] के रूप मे वर्णन किया है। यह तकनीकि सम्प्रदायिक पद्वी विष्णु के प्रशसको मे अत्यधिक प्रचलित थी। इस तथ्य का प्रमाण अनेक गुप्तकालीन अभिलेख तथा मुद्रा मे मिलता है। इसलिए गुप्त शासक चन्द्रगुप्त

48- cf nidra vyavaya-samaye madhusudanasya, Gangdhar stone inscr Of visvavarman of A D 424-5 (CII, III, No -17, 1 21, p 75)

49- cf R G Bhandarkar, Vaisnavism, saivism and Minoi Religious sects (collocted works of sir R G Bhandarker, vol IV), p p 42 ff, the Age of imperial unity p p 435 ff

50- cf meghaduta I 15 which describes visnu as ded in cowherds dress (gopavesa)

51- LXXXV 33, BY, XXIII 29

52- XV 20, LIX 19, LXXXVI 25, cf LXVIII 32 which mentions devotees of vasudeva

53- XV20, LXXXVI.25 LXXXV 33

द्वितीय[54], कुमारगुप्त[55] तथा स्कन्दगुप्त[56] की शैली परमभागवत् थी जिसका अर्थ दिव्य विष्णु के भक्त है। बहुत से दूसरे शासको ने तथा सामान्य जनो को शैली को भी परमभागवत्[57], भगवत्, अत्यन्त भगवत् भक्त[58] और परमवैष्णव कहा गया है। इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि विष्णु को इतनी प्रसिद्धि इस कारण मिली थी कि उन्हे शक्तिशाली राज्य करने वाले परिवारो ने अपनाया था तथा सरक्षण दिया था। डा० पी०सी० बगची द्वारा यह उल्लेख किया गया है कि भगवत्वाद का जो भी सम्बन्ध पञ्चरात्र से पहले था, वह गुप्त काल के समय पूर्णत परिवर्तित हो गया था चर्तुव्यूह सिद्धान्त जो कि पचतन्त्र का एक केन्द्रीय सिद्धान्त या भगवत्वाद मे पूर्णत अनुपस्थित था जो कि अवतारवाद के सिद्धान्त को महत्व देते है।[59] इस बात का उल्लेख इस सन्दर्भ मे करना चाहिए कि वराहमिहिर ने कम से कम चार मे से तीन व्यूह विष्णु, बलदेव, प्रद्युम्न का उल्लेख किया है।[60] इनको बनाने की विधि भी बताई है। अमरकोश मे अनिरूद्ध को मिलाकर चारो व्यूहो का विवरण है जिसे वराहमिहिर ने छोड दिया था। व्यूहवाद के कुछ बदले स्वरूप मे कृष्ण बलदेव की एकानामसा की एक साथ अराधना को भी माना गया है। यह भी देखा गया है कि व्यूहवाद के अनुयायी अवतारवाद से प्रभावित थे। यदि उत्पल पर विश्वास करे तो यह निर्णय निकलता है कि सभी प्रकार के वैष्णव पचरात्रा मुद्रा मे विष्णु की आराधना करते थे। रूपसत्रा के एक उत्सव मे वराहमिहिर के अनुसार केशव की आराधना एक निर्धारित मुद्रा मे ही करना चाहिए। जिनका वर्णन पचरात्रा या वैदिक ढग से उत्पल द्वारा वर्णित किया गया है।

54- CII ,111, No 4, I 11 , No 7, I 1 , No 12, I 20, No 13, I 5 , CII, V, No 2, p 7, 1 6 , No 8, p 36, 1 6, A 8 Altekar coinage of the Gupta Empire, pp 123, 137, 141, 153

55- CII 111, No 8, 1 1, p 41, 1 1 , No 10 1 5, No 12I, 22, No 13, 11 56 Altekar, opcit, pp 218, 222, 224, 226, 229, etc

56- CII, 111, No 12, 1 24 Altekar, op cit pp 251 ff

57- CII, III No 25, 1 10 , No 38, 1 8 , No 1 3, No 41, 1 3, No 46, 1 2 The traikutakas describe them selves as Bhagavat pada karmakara, vide CII, IV, No 18 II 1-2 No 9, 11 1

58- Ibid, No 36, 1 4, No 19, 1 6, v v Mirashi CII V No 2, 1 8

59- R C Majumdar (ed) History of Bengal, 1, p, 402 f

60- Classical Age, pp 418-9

मोरा पाषाण पट्टिका अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ईसवी के पाच वृषणी महापुरूष क्रमश शकरसन, वासुदेव, प्रद्युम्न सम्ब तथा अनिरूद्ध ईसा युग की प्रथम शताब्दी मे मथुरा नगरी मे देवता के समान माने जाते थे और इनकी अराधना की जाती थी।[61] वासुदेव के अतिरिक्त इनके सम्प्रदाय का दृढतापूर्वक पतन हुआ, जो कि गुप्त काल तक चलता रहा। इस तथ्य का प्रमाण वराहमिहिर ने प्रथम चार देवताओ के रूप मे उल्लेख करके किया है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भागवत्वाद के समय मे विष्णु के अवतारो की उपासना की जाती थी। अवतारो के नाम पुराण महाभारत और पचरात्रा सहिता मे दिये गये एक दूसरे से सख्या और नामो मे अत्यधिक भिन्नता है। वराह, (X2II 34) वासुदेव, कृष्ण (LVII 37,LXVIII 32) वामन, (CIV14) त्रिविक्रम, राम दशरथ के पुत्र (LVII 30) आदि की सज्ञा से हमारे लेखक ने इनके अवतारो की सम्बोधित किया। यह तथ्य स्मरणीय है कि वराहमिहिर ने किसी भी जगह इनको अवतार के रूप मे वर्णित नही किया है। वामन अवतार का व्याख्यान ऋग्वेद मे किया गया है। (I 155 5 etc) और यह कथा कि वामन विष्णु ने अपने शरीर को विस्तृत कर लिया था कि पृथ्वी को एक ही पग से नाप लिया था। इस कथा का विवेचन शतपथ ब्राह्मण मे किया गया था। इसकी प्रसिद्धि गुप्तकाल मे थी, जिसका प्रमाण स्कन्दगुप्त के जूनागढ शिलालेख मे मिला है, जिसमे इस कथा का उल्लेख है कि विष्णु ने इन्द्र के लिए भाग्य की देवी को बलि से बचाया था।[62] विष्णु को इन्द्रानुजा की उपाधि भी इसी कथा के कारण मिली है, जिसके प्रमाण बिहार मे पाये गये स्कन्दगुप्त के शिलालेख मे तथा सातवे अलीन ताम्रपत्र लेख मे मिले है।[63] कृष्ण अवतार की प्रसिद्धि का प्रमाण कालिदास ने विष्णु को ग्वाले की वेशभूषा मे जाम्बवती के साथ किया है जो कि कृष्ण की पारम्परिक पत्नी थी, तुषाम

61- ASI, AR 1911-12 Pt II, p 127 R P Chanda, Archaeology, and vaisnava Tradition, MASI No 5, pp 166-6, EI, XXIV, p 194 The inscription was correctly interpreted by J N Banerjea, vide J ISOA, X, pp-65-68 PIIHC, 7th session, p 82

62- CII, 111, No 14, P 56, stanza 29 1, fn 1

63- CII, 111, No 14, P, 49 1,1, No 39, 1 14, p 174

शिलालेख मे दिया है।[64] प्रकातदिव्य[65] के सारनाथ शिलालेख मे लक्ष्मी को वासुदेव की पत्नी के रूप मे दर्शाया है। डा० आर०जी० भण्डारकर तथा एच०सी०चौधरी का यह मत है कि यद्यपि राम दशरथ के पुत्र अवतार के रूप मे माने जाते थे किन्तु उनके सम्मान मे कोई भी सम्प्रदाय नही था। इन लोगो का यहा तक मानना है कि राम का सम्प्रदाय 11वी शताब्दी ई०पू० मे अस्तित्व मे आया था।[66] वाकाटक रानी प्रभावती गुप्त जो कि स्वय अत्यन्त भगवदभक्त की वेशभूषा मे रहती, अत्यन्त भगवदभक्त थी। कालिदास के अनुसार विष्णु का अवतार रावण के वध हेतु हुआ था तथा उनके अनुसार राम के चरण कमलो से रामगिरी पवित्र हुआ था। वराहमिहिर के अनुसार दशरथनन्दन राम की मूर्ति 120 अगुल ऊँची होनी चाहिए। गुप्तकालीन पाषाणा पट्टिका अभी हाल ही मे प्राप्त हुई है। देवगढ के दशवत देवालय के परिधि मे रामायण के कुछ चित्र मिले है। यदि ध्यान दिया जाये तो यह ज्ञात होता है कि वराहमिहिर ने राम शब्द का प्रयोग तीन लोगो को दर्शाने के लिए किया है। परशुराम, बलराम, दशरथीराम। वराह सबसे प्रसिद्ध अवतार थे। यह शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित है कि किस प्रकार प्रजापति ने शूकर का रूप धारण कर पृथ्वी को समुद्र की सतह से ऊपर उठा लिया था। तैत्तिरीय आरण्यक मे यह दर्शाया है कि एक सौ भुजाओ वाले काले शूकर ने पृथ्वी को जल से उठा रखा है। इस अवतार की अभिध ारणा को पाने के लिए यह कार्य प्रजापति की जगह विष्णु द्वारा किया गया माना जाना चाहिए। इस काल मे इस अवतार की प्रसिद्धि का पुर्न अवलोकन वराह की आकृति के सन्दर्भ मे कुछ अभिलेख[67] साहित्य[68] सुन्दर तथा प्रतापी वराह की

64- Ibid, No 67, p 270 1 1
65- Ibid No 79, p 285 1 4
66- R.G Bhandarkar, vaisnavism, saivism, etc p p 58-60, classical Age, 415-6
67- जयति वरण्युद्धरणे घनघोणाघातघूर्णित महीद्रघ्र ।
देवो वराहमूर्तिस्त्रैलोक्यमहागृहस्तम्भ ।।
Eran stone inscr of Toramana, CII, III, No 36, 1 1 Also cf IHQ XXI, p 56-8
68- cf Raghuvansa, VII 56

प्रतिमाओ के द्वारा किया जा सकता है जो कि देश के विभिन्न भागो मे मिला है।[69] विष्णु को मूर्ति शिल्प का व्याख्यान करते हुए वराहमिहिर ने व्यक्त किया है कि उनके छाती पर श्रीवत्स का चिह्न होना चाहिए तथा कौस्तुभ मणि[70] से अलकृत होना चाहिए, उनका रग श्यामण जैसे कि linflower और पीले वस्त्र धारण किये हुए होने चाहिए। उनका चेहरा शान्त होना चाहिए। वह कुण्डल तथा किरीत पहने हुए है। उनकी गर्दन, कन्धे, छाती तथा भुजाये ह्रष्टपुष्ट है। विष्णु को 8, 4 तथा 2 भुजाओ वाला दर्शाया जा सकता है। आठ भुजाओ वाली प्रतिमा के सन्दर्भ मे दाये भाग के तीन हस्तो मे तलवार, तीर तथा गदा धारण किये हुए है। तथा चतुर्थ हस्त शान्तिदा मुद्रा मे है। तथा वाम हस्त मे एक शख तथा चक्र है। मथुरा सग्रहालय मे दो अष्टभुजी विष्णु की प्रतिमाये सुरक्षित है। परन्तु वह अत्यधिक जर्जित अवस्था मे है। बादामी से प्राप्त एक अष्टभुज देव[71] को बैकुण्ठ के रूप मे निरूपित किया गया है तथा टी०ए०गोपीनाथ राव द्वारा इसका पुर्ननिर्माण "ऐलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दी आइकोनोग्राफी" की 75वी पट्टिका मे किया गया है और डा० जे०एन०बनर्जी द्वारा विष्णु रूप मे लिया गया है। यहॉ पर विष्णु के चार दाहिने हस्तो मे चक्र, तीर गदा तथा तलवार प्रदर्शित है तथा 3 वाम हस्त मे चक्र, तीर, शख, ढाल तथा धनुष धारण किये है तथा चौथा हस्त कटिहस्त मुद्रा मे है। डा० वी०एस० अग्रवाल द्वारा दर्शाया गया है कि सबसे पौराणिक अवस्था मे उनका दाया हस्त अभय मुद्रा मे है तथा वाम हस्त मे अमृतघट धारण किया है। अन्य हस्त मे गदा, चक्र धारण किया हुआ है और यह वर्णन बोधिसत्व मैत्रीय से ज्ञात होता है।

69- E g the famous varaha panel at udayagırı and two beautıful varaha statues, one ın human and the other ın anımal form, recently found at eran, personal names begınnıng wıth the word varaha also ındıcate the popularıty of the varaha cult C f Bhandarker's lıst, Nos 9, 13, 67, 1195, 1329, 1712

70- cf श्रीवात्साङ्ग कौस्तुभमणिकिरणोद्मासितोररकम् ||X2 II 3 II
for an epıgraphıc allusıon to kaustubha gem vıde CII, III, No 18, p 83 1 22

71- Utpala explaıns ıt as the hand facıng the vısıtor (turned to the front) wıth fingers raısed upwards Drastar = abhımukha urdhv-angulıh santıdah karah It ıs apparently the same as the abhaya mudra wıth whıch the students

शिव - शिव (IV, 30, X L1X,2) जिनको रूद्र, (XLV 6,10), हर, (XLII 52), शकर, (L111 3,LXXXV 75), शम्भू, (LV11 43,L1X,19) ईश, (XXXIV,2,2XX111 20, XV111 1), ईशान, (X1 13, 17), परमेश्वर (TY, 1 2) त्रिनयन (XLV11 77) तथा त्रिनेत्र[72] (By, LV1 5) के रूप मे जाना जाता था। पिछले दो देवो अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु के साथ मिलकर हिन्दुओ के त्रिदेव बनाते है। यह ज्ञात होता है कि यह साठ वर्षीय चक्र के पचवर्षीय युग के पाचवे वर्ष मे सूर्य तथा चन्द्रमा के चारो ओर रगीन चक्र मे, आद्र नक्षत्र मे तिथि एकादशी तथा उत्तरी पूर्वी क्षेत्र मे विराजमान रहते है। रूद्र शिव की पुरातन अर्चना तथा प्रस्तुतीकरण दोनो मनुष्य तथा लिग रूप मे मोहनजोदडो तथा अन्य स्थानो से पायी गयी मुहरो तथा पूर्व भारतीय तथा विदेशी शासको द्वारा बनायी गयी मुद्राओ से प्रमाणित होता है। परवर्ती काल मे लिग की स्थापना पवित्र स्थल मे कर दी गई जबकि इनके मनुष्य रूप को मन्दिरो के विभिन्न स्थानो पर सलग्न किया गया है। शम्भु के सिर पर चन्द्रमा[73] वाहक के रूप मे बैल, तीसरा नेत्र ललाट पर, त्रिशूल तथा पिनक नामक धनुष धारण किय दर्शाये गये है। यद्यपि यह प्रतीक सर्वविदित है तथा विभिन्न साचे मे ढली हुई प्रतिमाओ मे दशार्या गया है। परन्तु ऐसी कोई प्रतिमा का विवरण नही मिलता जो पूर्णतया खरी उतरी हो। शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप के सन्दर्भ मे आगे व्यक्त किया गया है कि उनके आधे शरीर मे पर्वत की पुत्री का, आधा शरीर समायोजित है। यह रूप उत्पल द्वारा अर्द्ध गौरीश्वर के समान है। विभिन्न कुषाण तथा गुप्तकालीन मूर्तिकारो द्वारा बनायी गयी अर्द्धनारीश्वर की मूर्तिया मथुरा के निकट से प्राप्त हुई है। हमे लिग के विषय मे उनकी आकृति और आकार के बारे मे कुछ रूचिकर जानकारी मिली है। यह पता चलता है कि लिग की गोलाकार परिधि लम्बवत माप मे तीन भागो मे विभाजित होना

72- HSOA, V,P 124, JUPHS, XXII (1949), P 106

73- for epigraphical allusions to the cresent on siva's forehead, c f CII III No 18 11 22-3, No 37,1 8

चाहिए। सबसे निचला भाग चौकोर, मध्यभाग अष्ट कोणीय तथा ऊपरी भाग गोलाकार होना चाहिए। चौकोर भाग धरती मे किये गये गढ्ढे मे स्थापित करना चाहिए और मध्यभाग इसमे होना चाहिए तथा गढ्ढे के चारो तरफ खम्भ होने चाहिए, जो दर्शनीय भाग मे बराबर है। ऐसा माना जाता था कि अपने आकार से पतला तथा लम्बा तथा टूटा हुआ तथा ऊपर से खण्डित लिग देश नगर तथा स्वामी का अनिष्ट कर देता था। शिव सम्प्रदाय को देश के विभिन्न भागो के कई शासको ने स्वीकार कर सरक्षण प्रदान किया। हमे अभिलेखो से ज्ञात होता है कि वाकाटक राजाओ कल्चुरि–राजा, कृष्णराज, शकरगण और बुद्धराज परवर्ती गुप्तो मे देवगुप्त और विष्णुगुप्त, मौखरि राजाओ मे सर्ववर्मन, महासामन्त, पजाब के महाराजा समुद्र सेन, वल्लभी के मैत्रक राजा सभी शिव के भक्त थे। महेश्वर के पुजारियो ने उन्हे परम–महेश्वर की उपाधि दी।

पाशुपत - मूर्ति की स्थापना के सम्बन्ध मे बराहमिहिर वर्णन करते है कि शम्भु की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करना, ब्राह्मणो द्वारा राख का लेप करना, ऐसा प्रतीत होता है कि तीन दिन तक शरीर पर लेप करना और राख पर सोना पाशुपति सम्प्रदाय को मानने वालो के लिए महत्वपूर्ण था। ह्वेनसाग ने उन्हे 'त्रिथिकास' कहा है। गुप्त युग मे मथुरा मे पाशुपत विद्यालय का महत्वपूर्ण केन्द्र था। ह्वेनसाग को पाशुपात की एक विशाल शरीर वाली मूर्ति जालधर ही–छोटा–लो (अहिच्छत्र) मे मिली।

कापालिक - वराहमिहिर यह भी उल्लेख करते है कि (LXXXV1 22) कापालिक मानव खोपडी को भोजन का पात्र बनाते थे तथा उन्हे पहनते थे। सातवी तथा छठी शताब्दी ई० मे पजाब और उत्तर पश्चिम भारत मे इस मत की प्रसिद्धि दिखायी पडती है। यशोधर्मन और विष्णुवर्धन के मन्दसोर शिलालेख से ज्ञात होता है कि शिव अपने सिर पर अस्थियो की माला धारण करते थे।[74] समुद्रसेन के ताम्र पत्र अभिलेख

74- शिरसि विनिवघ्नन् रन्ध्रिणीभास्थिमालाम्। CII III No 35, 1 3

निर्मन्द से सतलज नदी के तट से प्राप्त हुई, से ज्ञात होता है कि शिव का मन्दिर कपालेश्वर नाम से प्राप्त हुआ है।[75]

सूर्य - उत्तरी भारत मे बहुत पहले सूर्य देवता की पूजा प्रचलित थी। सूर्य देवता की पर्सियन अवस्था मे महत्वपूर्णता की कथा कुछ पुराणो से सम्बन्धित है जैसे–भविष्य पुराण, वराह पुराण तथा साम्ब पुराण। भविष्य पुराण[76] से ज्ञात होता है कि जाम्बवती द्वारा उत्पन्न कृष्ण का पुत्र सूर्य की उपासना द्वारा कोढ से मुक्त हुआ था। हमे अभिलेखो से गुप्त तथा परवर्ती गुप्तो के उत्तर के विभिन्न भागो से सूर्य के अनेक मन्दिरो का वर्णन मिलता है। उत्तर प्रदेश जिले के बुलन्दशहर के इन्दौर मे सूर्य के मन्दिर के सन्दर्भ मे जानकारी मिलती है। मिहिर कुल के ग्वालियर अभिलेख मे सूर्य मन्दिर की इमारत का उल्लेख है। ऐसा माना जाता था कि सूर्य विभिन्न नामो पचवर्षीय युग के दूसरे साल, हस्त तारा मडल तथा तिथि द्वादशी पर विराजमान रहता था।

अग्नि - ऋग्वेद के पहले तीन देवताओ मे इन्द्र और सोम के बाद अग्नि को माना जाता था।[77] वैदिक यज्ञ सम्बन्धी पथ की प्रसिद्धि के पतन से देवताओ के समूह मे अग्नि का स्तर बुरी तरह प्रभावित हुआ। पौराणिक मान्यता के अनुसार उन्हे लोकपाल के कार्यालय से बहिष्कृत कर दिया गया। बराहमिहिर ने अग्नि के बहुत से नामो का वर्णन किया है उदाहरण के लिए अग्नि[78] दाहन[79] हुताभुज[80], हुतावाह[81] हुताश[82] और अनल[83]। इसे ग्रहण का अध्यक्ष समझा जाता था। एक हीरा श्रगातक फल तथा चीते

75- Ibid, No 80, 1 9, Nagavadhana, a nephew of Pulkesin II, sanctioned a grant for the worship of kapalesvara and for the maintenance of Mahavrathivs attached to the temple, vide JBBRAS, XIV, p 26,

76- Bahmaparvan ch 139 ff i see also D R Bhandarker foreign Elements in Hindu population, IA, XL, (1911), p p 17ff

77- Macdonall, vedic Mythology, P 88

78- V 19, 22, XI 23, XC VII 4

79- XXXII 7, XCVII 4

80- LXXIX 9, YY, VI 6

81- LXXXV 75

82- XI 11, VIII 23

83- VIII, 26, LIII 3

की आख की छवि के समान, मोती धुये रहित अग्नि या कमल के समान, कृतिका का तारा मडल जोवियान चक्र के चौथे युग मे दिन के दूसरे पहर मे इसे कम्पन का कारण समझा जाता था और 120 विश्वरूपा पुच्छल तारा कहा जाता था। अग्नि काल मे अग्नि और इन्द्र का सम्बन्ध था। अग्नि को सात किरणो और सात जीभो (सप्त–जिह्वा, LXX111 16) के रूप मे वर्णित किया गया है। अग्नि की मूर्ति के सम्बन्ध मे विस्तृ जानकारी नही दी गयी। उदाहरणत पहाडपुर मे निर्मित आकृतियो मे दो भुजाओ वाली अग्नि उनके शरीर से निकलने वाली सात लपटो के साथ दूसरी तरफ गुलाब और कमडल क्रमश दाये और बाये हाथ मे धारण किये हुये है।[84]

यम - यम का पैतृक नाम वैवस्वत भी माना गया है। (XL11,52) वर्णन ग्रहण का कारण, सूर्य या चन्द्रमा चारो ओर आभामडल, दक्षिणी दिशा मे अध्यक्षता करने वाले, तीन तारो का समूह भरणी, चतुर्थी तथा करण को विष्टी कहा जाता था। काला रग विशेष रूप से यम का प्रतीक माना जाता था। सरीसृप के समान काला हीरा तथा काले मोती को इससे सम्बन्धित माना जाता था। उत्पल ने इन्हे मनुष्य का स्वामी माना है। (पितृपति)। जहा तक यम की प्रतिमा का सम्बन्ध है हम साधारणत कह सकते है कि वह अपने एक हाथ मे दड धारण करते थे और भैसे की सवारी करते थे।[85] मध्ययुगीन भैसे पर सवार यम की मूर्ति वाला मन्दिर उडीसा मे प्राप्त हुए थे।

कुबेर- कुबरे को भी वैश्रवण कहा जाता था कुबेर को पहली बार यक्ष के साथ वर्णित किया गया है इनको अर्थवर्वेद (VIII 10, 28) के धन का मार्ग भी कहा है ग्रन्थ मे इन्हे यक्ष कहा गया है और उनके लिए धनद (XXXIV.3; YY, VI 16), धनेश (XL11 52) तथा धनेश्वर (YY, X 1 17) का उपयोग किया है तथा इन्हे धनी लोगो का स्वामी कहा है। ऐसी मान्यता थी कि वह ग्रहण पर अध्यक्षता करता था (V 19,21)

84- MASI, NO 55, p 48 pl XXXII(b)
85- Bana in his Hasra-carita describes canvas painting of yama riding a terrific buffalo

तथा चन्द्रमा और सूर्य के चारो ओर मोर की गर्दन के समान रग का आभामडल इसका कारण समझा जाता था (XXXIV3)। सामान्यत इन्हे लोकपाल माना जाता था। उत्तरी दिशा का अध्यक्ष मानते थे जो कि कुबेरी के नाम से जाने जाते थे। (XIII 1, XLVII,18, LXXXVI-25)। कुबेर की प्रतिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है। मटके के समान उदर वाला सवारी के लिए एक व्यक्ति और मस्तक पर बायी ओर झुका हुआ मुकुट धारण किये हुए है। 'योगयात्रा' मे कुबेर के चिह्न के रूप मे उन्हे गदा धारण किये हुए दिखाया है। विभिन्न साहित्यो के अनुसार उनकी सवारी गधा (खर–वाहन) मानी गई है। कुबेर की मूर्तिशिल्प के इस रेखाचित्रीय वर्णन मे यह तथ्य जानने योग्य है कि इसमे उनके बटुआ, उनकी निधि, शख, पद्म और हरिति के सन्दर्भ मे कुछ भी वर्णित नही है। जो प्राय समकालीन कला मे उनसे सम्बन्धित थे। गुप्त या उसके परवर्ती युग मे कुबेर की सवारी का कही भी उल्लेख नही है। भरहुत मे यक्ष के रूप मे उनका वर्णन किया गया है, जो कि बडे उदर वाला बायी ओर झुका हुआ मुकुट है। यह प्राकृति ब्रहत्सहित के वर्णन से मिलती है।

अन्य देवता - कुछ अन्य वैदिक देवताओ के सम्बन्ध मे भी वर्णन मिलता है। दो देवताओ अश्विनी कुमारो का उल्लेख मिलता है, जो कि प्रार्थना करने वालो की गहनता को मापते थे। ऋग्वैदिक मान्यता मे इनका स्थान इन्द्र अग्नि और सोम के बाद था।[86] अश्विनी तारामडलो (IXCV11 4) ओर जोवियन चक्र (VIII 23) के 11 पचवर्षीय युगो के ऊपर इनकी अध्यक्षता समझी जाती थी। अश्विन शब्द एक समान दो लोगो का सूचक है (XCV11 1)। देवताओ की सूची मे मुख्यत विश्वकर्मन का भी उल्लेख है, जिन्होने इन्द्रध्वज (XLV12) को विभुषित किया था । विश्वकर्मन की प्रतिमा के सन्दर्भ मे वर्णन तो है लेकिन उनकी मूर्ति शिल्प का कोई विस्तृत वर्णन नही दिया गया है।

86- Macdonell, vedic Mythology p 49

उत्तर वैदिक कालीन देवता - स्पष्ट है कि कृष्ण से सम्बन्धित चार अन्य वृष्णी देवता भी है जो कि बलदेव प्रद्युम्न साम्बा और अनिरूद्ध है। ई०पू० की शताब्दियो मे स्वतन्त्र रूप से पूजे जाते थे। इनमे से पहले तीन का उल्लेख वराहमिहिर ने भी किया है।

बलदेव - प्राचीन काल से ही भागवत के विभिन्न धर्मो की एकता मे बलदेव को वासुदेव कृष्ण से सम्बोधित माना गया है। बहुत से शिलालेखो मे इन्हे साथ–साथ वर्णित किया गया है। वराहमिहिर ने उनकी प्रतिमा का श्लोक मे जो वर्णन किया है उसके अनुसार बलदेव अपने एक हाथ मे हल–धारण किय हुए नशीली आखो वाले, एक कान मे कुण्डल पहने हुए है तथा उनका रग इतना श्वेत है, जितना कि कौच शैल–कमल या चन्द्रमा। मथुरा से बलदेव की यक्ष प्रकार की दो भुजाओ वाली मूर्ति प्राप्त हुई है जो लखनऊ सग्रहालय मे सुरक्षित है। जिसमे उन्हे साप के सिरो के नीचे खडा हुआ, केवल बाये कान मे कुडल धारण किये और मूसल तथा हल अपने हाथ मे धारण किये है। मथुरा सग्रहालय मे गुप्तकाल की चार भुजाओ वाली मूर्ति प्राप्त हुई है।

प्रद्युम्न - इनका वर्णन धनुष धारण किये हुए किया गया है। सम्भवत इनकी पहचान कामदेव से की गयी है। (प्रद्युम्न = कापभर्त सुरूपस = का, LV11 40)[87]

साम्ब - सौर सम्प्रदाय की नयी अवस्था मे साम्ब का महत्वपूर्ण स्थान था। लेकिन उनकी प्रतिमा का पुराणो मे ज्यादा वर्णन नही है। वराहमिहिर के अनुसार सूर्योपासक के रूप मे उसका पवित्र स्थान था तथा हाथ मे वह गदा–धारण किये हुए है। उत्पल के अनुसार उन्हे दो भुजाओ वाला दिखाया गया है।

87- for a kusana terracotta figure of kamadeva from Mathura standıng on the prostrate body of surpaka holdıng a bow and a sheath of arrows ın thıs left and rıght hands respe

शैव देवता -

गणेश - पौराणिक आख्यानो के अनुसार गणपति शिव के द्वितीय पुत्र है, जो विघ्नो को समाप्त करते तथा जीवन को मगलमय करते है। इसलिए प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ मे इनकी पूजा आवश्यक मानी गई है। इन्हे सभी जगह विद्यमान रहने वाला बताया गया है। मानव गृह्यसूत्र के अनुसार विनायको की सख्या चार है। (1) शालाकटण्कट, कूष्मान्दराजपुत्र, उस्मित तथा देवायज्न।[88] मानवग्रह्य के चार विनायको को एक विनायक गणपति के रूप मे वर्णित किया है।

स्कन्द - स्कन्द की पूजा ईसा पूर्व मे प्रचलित थी। किन्तु विशेष गुप्त युग मे अधिक प्रचलित हुई। स्कन्द कार्तिकेय यौधेयो के सरक्षक देवता थे। गुप्त शासक कुमारगुप्त के अभिलेख तथा सिक्को मे यद्यपि 'परम भागवत' का वर्णन किया है, जिसके वे उपासक थे। बाद मे उनके सिक्को मे गरूणध्वज का उल्लेख मिलता है। कालिदास ने कुमारसम्भव मे इनके जन्म से सम्बन्धित कथा दी है सामान्य रूप से यह विश्वास किया जा सकता है स्कन्द और विशाखा एक ही देवता के दूसरे नाम है।

देवियो - हिन्दू धर्म मे शक्ति की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। शक्ति को नारी रूप मे अभिव्यक्त किया गया है। वराहमिहिर ने बहुत सी देवियो का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम हम उनका वर्णन करेगे जिनके बारे मे कुछ विस्तृत जानकारी प्राप्त है। हमारे लेखक ने पवित्र 'मॉ' के लिए कई नामो का उल्लेख किया है। उदाहरणत मातृ, मातृभि (X2VII 26, मातृनाम् LIX 19)। पौराणिक मान्यता के अनुसार असुर अन्धकासुर के विरूद्ध युद्ध मे साथ देने के लिए शिव की सहायता के लिए मातृको की उत्पति हुई। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार ब्रहम, शिव गुह, विष्णु तथा

88- The Baijavapa grhya, cited by Apararka on Yajnvalkya I 275, replaces usmita and Devayajana by sammita and Mita

इन्द्र ने असुरो के युद्ध मे चण्डिका की सहायता के लिए अपने शरीर से उत्पन्न किया था।[89] वास्तव मे मा की सख्या सात बताई गयी है किन्तु बाद मे इनकी सख्या बढकर 12 तक हो गयी। वराहमिहिर इनकी सख्या के बारे मे कोई मत व्यक्त नही करते है परन्तु बाद के विद्वानो ने उनके नाम इस प्रकार बताये है–ब्राहमी, वैष्णवी, रौद्रीस, कौमारिस और बाद के नामो मे नरसिम्ही, वराही और वेनायिकी है। गुप्त अभिलेखो मे सप्तमात्रका का उल्लेख है। कला के सम्बन्ध मे वराहमिहिर ने केवल इतना ही कहा है कि मा को नाम तथा चिह्न के साथ दिखाया जाना चाहिए। मार्कण्डेय पुराण मे भी इसी कथन की पुष्टि की गई है तथा यह भी कहते है कि प्रत्येक देवी को अलग–अलग अवस्था, आभूषण तथा सवारी का उल्लेख होना चाहिए। उत्पल ने इनकी मूर्ति शिल्प का अवलोकन करने के पश्चात् इन्हे अत्यन्त सुन्दर वर्णित किया है। मथुरा सग्रहालय मे सुरक्षित सप्तमात्रक की मूर्ति, चिह्न तथा सवारी का वर्णन इस प्रकार है–प्रत्येक मा अपने बाये हाथ मे एक शिशु धारण किये है प्रथम ब्राह्मी है जो तीन शीर्ष वाली है और अपने दाये हाथ मे एक Ladle पकडे हुए है उनकी सवारी हस है। महेश्वरी त्रिशूल धारण किये खडी है उनकी सवारी भैस है। कामरी शक्ति धारण किये है उनकी सवारी मोर है, वैष्णवी गदा धारण किये है उनकी सवारी गरूण है। वराही टूटा दण्ड लिये है उनकी सवारी महिषा उनके पीछे है इन्द्राणी सम्भवत वज्र लिये है उनकी सवारी हाथी। अन्त मे चामुण्डा है जो मुण्डो की माला धारण किये है।

एकनामसा - दूसरी देवी एकनामसा है जिनके विषय मे विस्तृत जानकारी मिलती है। हरिवश मे इनका उद्भव इस प्रकार दिया गया है कि किस प्रकार देवताओ की

89- ब्रह्मेशुगुहविष्णूना तथेन्द्रस्थ च शक्तय ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिका ययु ।।
यस्य देवस्य यद् रूप यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्ति रसुरान् योद्धुभाययौ ।।

विनती पर विष्णु ने देवकी के गर्भ से कृष्ण के रूप मे जन्म लिया जो कि वासुदेव की पत्नी थी। निद्रा देवी को आदेश दिया कि यशोदा और नन्दगोप के यहा जन्म ले तथा कस द्वारा मारे जाने पर स्वय को बचाने के लिए आकाश मे उडने पर चार भुजाओ वाली जिनमे एक मे त्रिशूल, तलवार, मदिरा का प्याला और कमल धारण किये हुए है। इनको एकनामसा कहा गया तथा इनकी उत्पत्ति प्रजापति के कण से हुई।[90] इस प्रकार यह भी प्रतीत होता है कि इनका वासुदेव कृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध ा था वराहमिहिर ने इनकी दो चार और आठ भुजाओ का वर्णन किया है। उनके अनुसार[91] इनका स्थान बलदेव तथा कृष्ण के मध्य होना चाहिए।

Saci-(शचि) - इन्हे माहेन्द्री तथा इन्द्राणी भी कहा जाता है। जो कि इन्द्र की पत्नी है। यह स्त्रियो की आदर्श मानी जाती है तथा अविवाहित कन्याओ द्वारा पूजी जाती है। (VP, 9-14)। यह प्रथा भारत के कुछ भागो मे प्रचलित है। कुछ अवसर पर यह अपने पति के साथ भी पूजी जाती थी (XLV,80)। पार्वती, जो कि शिव की पत्नी तथा हिमालय की पुत्री थी, इसलिए इन्हे आद्रसुता (IV 30) तथा शैलसुता (VIII 24)[92] भी कहा जाता है। यह शिव की अर्द्धनारी के साथ भी दिखाई पडती है।

अन्य देवियो मे सरस्वती, लक्ष्मी, धरती, श्री स्वाहा, सिद्धि तथा कश्यप की पत्नी धनु सुरसा, विनता और कद्रु तथा अदिति, देवो की माता आदित्य तथा दिति का भी वर्णन किया गया है (XLVII 56-58)।

90- for relevant tert of the Harıvamısha vide JRASB (Third serıes), 1936, pp 40-2 not

91- एकानशा कार्या देवी बलेदव कृष्णयोर्मध्ये।
कटिसस्थितवामकरा सरोजमितरेण चोद्वहती।।
कार्या चतुर्भुजा या वामकराम्या सपुस्तक कमलम्।
द्वाभ्या दक्षिणपार्श्वे वरमिर्थब्यक्षसूत्र च।।
वामेऽयाष्टभुजाया कमण्डलुश्चापमम्बुज शास्त्रम्।
वरशरदर्पणयुक्त सव्यभुजा साक्षसूत्राश्च।।

92- cf CII, III No 33 P 146, L, where she ıs called ksıtıdharatanaya

गण देवता या देवताओं का समूह-

वराहमिहिर ने कुछ देवताओ के समूहो का वर्णन किया है जिन्हे अमरकोश मे 'गणा' देवता कहा गया है।[93] आदित्य ने इन्हे इन्द्र से सम्बन्धित माना है। इनकी सख्या ऋग्वेद मे सात या आठ तथा शतपथ ब्राह्मण मे 12 दी गई है। उत्तर वैदिक काल मे इन्हे बारह सूर्य देवता माना है और इनका सम्बन्ध एक वर्ष के 2 महीनो से किया है।

लोकपाल - पौराणिक मन्दिरो मे लोकपालो का महत्वपूर्ण स्थान था। इन्हे 'दिगिशा' (By, XX 1,TY,IX 2) दिग्श्वर (By, XVI 1) अथवा दीनानाथ (YY, VI 19) कहा गया है। वराहमिहिर के अनुसार इन्द्र, अग्नि, यम, नीति, वरूण, वायु, इन्दु और शकर पूर्व दक्षिणपूर्व, दक्षिण, दक्षिण पश्चिम, पश्चिम, उत्तर पश्चिम, उत्तर और उत्तर पूर्व दिशाओ के क्रमश देवता माने जाते थे। इन दिशाओ की पूजा दिशाओ की रक्षा के लिए ग्रहो द्वारा की जाती थी केतु को इस सूची मे शामिल नही किया गया है। इस प्रकार सूर्य, शुक्र, मगल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध और गुरू से सम्बन्धित इन्द्र, अग्नि, यम, नीरति, वरूण, वायु यक्ष और शिव क्रमश इनसे सम्बन्धित माने गये है, जो दिशाओ का स्वामित्व करते थे।

देवमोनि - भारतीय प्राचीन काल से ही देवयोनि के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। इनमे विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुहामास, सिद्धा का वर्णन हमारे लेखक द्वारा किया गया है। अमरकोश के अनुसार विद्याधर (XIII 8) अपने साथी के साथ पर्वत की चोटी पर रहते थे। विद्याधरो के युद्ध तथा उनके विनाश का भी वर्णन मिलता है। अप्सरा सुन्दरतम पवित्र दिव्यस्त्री (XLV 89) मानी

93- आदित्य–विश्व–वसवस्तुषिता भास्वरानिला।
महाराजिक–साध्याश्च रूद्राश्च गणदेवता ।। [Amarkosa] 1 10

जाती थी। ये पुष्यस्नान के समय पूजी जाती थी। बसन्त मे उनका दर्शन शुभ माना जाता था। यक्षो (XIII 8) को यातुधान भी कहते थे। उनके दर्शन को महामारी का कारण समझा जाता था। जिसको रोकने के लिए पापनाशक सस्कार की व्यवस्था दी गई है। इसके विपरीत हेमन्त मे इनका दर्शन शुभ माना है (XLV 91)। हेमन्त मे राक्षस का दर्शन भी शुभ माना है (राक्षस XIII 11) (हेमन्त XLV 19)। गन्धर्व को स्वर्ग का सगीतज्ञ माना गया है। उत्पल ने गन्धर्व के मुख को घोडे के समान वर्णित किया है। (अश्वमुखा नरदेवयोनय XIII 8)। किन्नरो को किपुरूष (XLVII 62) भी कहा जाता था तथा इनका मुख भी घोडे के समान बताया है। पिशाचो को राक्षसो से सम्बन्धित बताया है। गुह्यक, यक्ष, राक्षस, पिशाच, और भूतो की युद्ध मे विजय के लिए आराधना की जाती थी। (By, XV 1, 10-11)

नवग्रह नक्षत्र तथा समय का विभाजन :-

नवग्रहो की बिना किसी विशेष सम्प्रदाय के रूप मे पूजा की जाती थी। ग्रहो की गति के सम्बन्ध मे ऐसा विश्वास था कि इनकी गति सामान्य रूप से सासारिक घटनाओ मे तथा विशेष रूप से मानव जीवन पर तुरन्त प्रभाव डालती है। इसलिए इन ग्रहो की आराधना उनको अपने पक्ष मे करने के लिए उनसे विनय पूर्वक प्रार्थना किया जाना स्वाभाविक था। वराहमिहिर के अनुसार यदि किसी व्यक्ति से ग्रह प्रसन्न है तो वह ऊँचाई से कूदेगा, जहरीले सापो के बीच भी उसे कुछ नही होगा।[94] ग्रहशान्ति (XLII 37) तथा ग्रहयक्ष (XLIII 14,XIVII 29,By, XV 1,XVIII 1) युद्ध काल मे प्रस्थान करने से पहले किये जाते थे। ग्रहो की पूजा अन्य अवसरो पर भी की जाती थी। नक्षत्रो के समूहो को जमीन पर चिन्हित करके 'पुष्यस्नान' करके उनकी आराधना की जाती थी। (XLVII 26,29)। वर्षा और फसलो के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी

94- प्रीतै पीडा न स्यादुच्चाद्यदि पतति विशति यदि वा भुजगविजृम्भितम्। CIII 47

करने के लिए ज्योतिष उत्तर या पूर्व के शहर या गाव जाकर इन ग्रहो और नक्षत्रो को जमीन पर बनाकर उनकी पूजा करता था। (XXIV 6)। ब्रहस्पति, शुक्र और शनि की आकृतियो का सकेत एक दूसरे स्थान पर भी किया गया है लेकिन उनकी प्रतिमा के सम्बन्ध मे कोई वर्णन नही मिलता है। दिकपालो की तरह नवग्रहो के समूह को मध्यकालीन मन्दिरो, शिल्प विधा सम्बन्धी भागो मे मिले है।[95] चन्द्रमा के ग्रहण (V 19-20) के सम्बन्ध मे मान्यता थी कि बृहस्पति चक्र के नवे (VIII 23), युग के तीसरे वर्ष (VIII 24), मृगशीर्ष के तारामण्डलो और शनि चन्द्रमा और सूर्य के पुत्र माने जाते थे। क्रमश इन्हे सौम्य या चान्द्री (By, XVIII 11-13) अथवा चन्द्रात्मज (YY, VI 17) और सौरी (CIII 47,YY,VI 13)। ब्रहस्पति की अध्यक्षता जोवियन चक्र (VIII 23,26)के दूसरे युग के तिष्या (XCVII 4) तारामण्डलो पर मानी गई है। गुरू और शुक्र की पहचान ब्रहस्पति से की गई। जिन्हे देवताओ के गुरू तथा इन्द्र तथा शुक्र का कुलाधिपति माना गया है। राक्षसो के गुरू Faita occomplı [96] थे।

नक्षत्रो को सजा कर उनकी पूजा की जाती थी (XXIV 6,XLVII 26)। सभी तीन तारो के समूह एकत्रित होकर मानवाकृति बनाते है, उन्हे नक्षत्र पुरूष भी कहते है जो इस प्रकार है। मूल को नक्षत्र पुरूष का पैर, रोहिणी को पिण्डली, अश्विनी को घुटने, पूर्व और उत्तर आषाण को जघा, पूर्व और उत्तर फाल्गुनी गुप्त अग, कृतिमा को पिछला भाग पूर्व और उत्तर भाद्रपद को किनारा, रेवती को उदर, अनुराधा को वक्षस्थल, धनिष्ठा को पीठ, विशाखा को भुजाये हाथ, पुर्नवसु को उगलिया, आश्लेषा को नाखून, ज्येष्ठ को गर्दन, श्रावणा को कान, पुष्य को मुह, स्वाति को दात, शतभीषज को हसी, मघा को नाक, मृगशिरस को आखो, चित्रा को मस्तक भरणी को सिर तथा अद्रा को बाल (CIV 7-5) के रूप मे माना गया है। रूपसत्रव्रत मे उल्लेख

95- for late Gupta and medıgeval Graha relıefs cf DHI, PL-XXXI, fig 1-2, for textual evıdence on theır ıconojgraphy see khare, op at pp 140-43

96- cf VII 1 where Jupıter ın described as devapatı mantrın , YY, VI 7 where venue ıs styled dılısuta-gura

है, लोग अगले जन्म मे सुन्दर शरीर प्राप्त करने के लिए इनकी पूजा करते थे।

ज्योतिषीय ग्रन्थो मे ऋषियो के विषय मे भी वर्णन मिलता है। वराहमिहिर ने मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलत्स्थ, क्रतु, अगिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जगीस्वाय, भगन्दर, एकता, त्रिता, जाबालि, कश्यप, दुर्वासा, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतपस, विदुरथ, ऊर्व, समवर्तक, च्चवन, पराशर ईपायन, यवाक्रत का उल्लेख किया है। (XLVII63 67)।

प्रथम छ तथा वसिष्ठ को सप्तऋषि कहा गया। ऋग्वेद (IV 42 8) मे भी पारम्परिक सप्तऋषियो का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मणो मे इनहे सात कहा गया है। तारामण्डलो के साथ मिलकर यह भालू की आकृति बनाते है। वसिष्ठ की पत्नी अरून्धती का स्थान इन सात तारो मे मध्य मे माना गया है। वराहमिहिर ने सामान्य रूप से मुनियो का उल्लेख किया है। (XLVII 25, XLV 10) विशेष रूप से वेद व्यास का।

Other Objects of worshıp :-

पशु पक्षियो तथा वृक्षो मे भी शक्तियॉ मानी जाती थी तथा इनकी भी पूजा की जाती थी। नागपूजा का भी उल्लेख मिलता है। नागो का चित्र बनाकर उनकी पूजा का भारत मे प्रचलन था (XLV 14,XLVII 25, 31 62)[97] कुछ सुन्दर नाग प्रतिमाये मथुरा के आसपास मिली है और मथुरा सग्रहालय मे सुरक्षित है। यह माना जाता था कि मोती की उत्पत्ति तक्षक तथा वासुकी के परिवार से सम्बन्धित थी तथा ऐसा विश्वास था कि वर्षो के सम्बन्ध मे यह अद्भुत प्राकृतिक शक्ति रखते है (LXXX 25-6)। कुछ निश्चित प्रकार के पत्थरो पर इन नागो का वास माना जाता था तथा इनकी

97- eg chhargaou Naga of Huvıska's tıme vogal, catalogue of Archeologıcal Museum at mathura No C13, p 88, PI XIX.

उपस्थिति देश मे सूखा रोकने वाली मानी जाती थी (LIII 111)। पशु पक्षियो की गति के अनुसार यात्रा के शुभ और अशुभ फल का भी विवरण है। जब वर्षा ऋतु के पश्चात् Wegtial पहली बार देखा जाता है, तो इसे शुभ मानते है (XLIV 14)। नदियो समुद्र पर्वत भी पवित्र माने जाते थे। ये इन्द के सहयोगी थे।

यज्ञ - पाच महान यज्ञो का भी वर्णन किया गया है। ग्रहस्थ को प्रतिदिन दो यज्ञो को करना चाहिये जो कि वैश्वदेव तथा ब्रह्मयज्ञन (CIII 44 and YYVI 17) है। श्रॉतसूत्र मे अग्निहोत्र तथा अश्वमेघ का उल्लेख है।[98] उस समय श्रेष्ठ राजा अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर अश्वमेघ यज्ञ करता था। गुप्त शासक समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त तथा वाकाटक नरेश प्रवरसेन ने जिन्होने अवश्मेघ यज्ञ करके स्वय को औरो से अलग किया उत्पल ने दृष्टि का पुत्रकाम्या के रूप मे वर्णित किया है। दृष्टि इस प्रकार का यज्ञ था जिसको करने वाला अपनी पत्नी तथा पुजारी की सहायता से करता था। पशुबलि भी प्रचलन मे थी। पशुओ की बलि के लिए उन्हे बाधे जाने का विवरण मिलता है। वराहमिहिर ने वृहद्यात्रा मे युद्ध शत्रुओ को मारने का तथा पशुबलि दोनो का वर्णन किया है और दोनो पापो से मुक्ति का भी उल्लेख किया है।

यज्ञ की वेदी का भी वर्णन किया गया है। वेदी के स्थान के सम्बन्ध मे विस्तृत वर्णन किया गया है। एक वेदी जो नाप मे सही नही है अमगलकारी मानी जाती थी। ऐसा विश्वास था कि एक दोषयुक्त वेदी, पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा मध्य मे हो तो वह क्रमश शहर पुजारी, रानी तथा सेनाप्रमुख राजा के लिए अमगलकारी होती थी। सभी जातियो की वेदी की नाप अलग–अलग थे। वेदी अपने नाप से बडी या छोटी होती थी तो यज्ञ कराने वाले की मृत्यु का कारण समझी जाती थी। वेदी चौकोर और सही नाप की होनी चाहिए।

98- यक्ष्येऽश्वमेधेन विजित्य घात्रीमित्येवमभ्युघमिनो नृपस्य BY 12

पुजारी - ब्राह्मण पुजारी का कार्य करते थे। पुजारियो की दो श्रेणिया थी होत्र, अधवर्यु। ब्राह्मणो का सभी यज्ञो मे निपुण होने का सन्दर्भ मिलता है। शाही पुजारियो के सम्बन्ध मे विद्वानो का मत है कि उन्हे कुशल, वक्ता, शारीरिक रूप से दोषमुक्त तथा अनुशासित होना चाहिए।[99] कर्तव्यो के सम्बन्ध मे योगयात्रा मे वर्णन मिलता है (I 6) जिसके अनुसारा मत्री के उच्चारण, धार्मिक रीतिरिवाजो से शरीर की शुद्धि, मणिक्धन, पापनाशक, सस्कार अग्निपूजा, व्रत, यज्ञो द्वारा शत्रुओ को कम करने मे सफलता प्राप्त कर सकता है।

कोई भी हिन्दू सस्कार पुजारी को दक्षिणा दिये बिना सम्पूर्ण नही हो सकता। ग्रहण के समय दान दक्षिणा पुण्य का काम माना जाता है अनेक अभिलेखो मे सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय दान दक्षिणा का वर्णन किया गया है।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि यज्ञ सस्कारो का सम्बन्ध पौराणिक रीतिरिवाजो से है इन्हे अलग नही किया जा सकता है।

मूर्ति पूजा - मूर्ति स्थापना के पूर्व विविध प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान की रीति रिवाज से उनकी पूजा अर्चना की जाती थी। विभिन्न प्रकार की पवित्र सामग्रियो को मिलाकर तैयार किये गये जल से इसे प्रतिस्थापना के पहले स्नान कराया जाता था। भिन्न देवताओ की अलग–अलग व्यक्तियो को उचित माना गया है। भगवत विष्णु की मूर्ति की स्थापना मे, मग सूर्य की, राख लपेटे ब्राह्मण अर्थात् पाशुपत शिव की प्रतिस्थापना मे निपुण माने जाते थे। वराहमिहिर पवित्र मूर्ति स्थापना के लिए मगलवार के अतिरिक्त किसी और दिन माह मे शुक्ल पक्ष मे करना चाहिए।

देवता यात्रा - इस सन्दर्भ मे सक्षिप्त विवरण मिलता है। यह एक प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान है, जिसमे किसी विशेष देवता या देवी को रथ ले जाया जाता था।

99- दक्ष प्रगल्भोऽविकलो विनीतस्तादृग्रविधस्तस्य पुरोहितोऽपि। BY 1 4

शान्ति - शान्ति ब्राह्मणो द्वारा पाप या सकट को रोकने के लिए किया गया सस्कार माना जाता था। उत्पल के अनुसार वर्णित किया है कि वैदिक मत्रो का उच्चारण इस तथ्य को सामने रखते हुए किया जाता था कि अशुभ गोचर पदार्थों से होने वाली दुर्घटनाओ को यह दूर करते थे। शान्ति यज्ञ तो पापो के परिणाम को रोकने के लिए किया जाता था। उत्तर आषाढ के तारामडल, उत्तर भाद्रपद, उत्तर फाल्गुनी और रोहणी शान्ति के लिए उचित समझे जाते थे।

कोटिहोम - कोटिहोम दैवी विपदा को रोकने के लिए किये जाते थे मत्स्यपुराण के अनुसार नवग्रहहोम का प्रकार है जबकि भविष्य योग मे इन्हे शान्ति सस्कार कहा है। अग्नि पुराण के अनुसार इसे शान्ति सस्कार कहा है। अग्नि पुराण के अनुसार यदि कोई राजा ब्राह्मणो के द्वारा कोटिहोम कराता है, तो उसके शत्रु युद्ध मे उसके सामने टिक नहीं सकते और उसके देश मे सकट या महायज्ञ नही हो सकता। वर्षा, सूखा, चूहा, तोता, राक्षस आदि से यज्ञो के माध्यम से रक्षा की मान्यता थी और जो कोटिहोम कराता है उसकी सभी इच्छाए पूर्ण होती है और वह सशरीर स्वर्ग जाता है।

अध्याय 5

राजनैतिक संगठन

5. राजनैतिक संगठन

बृहत्सहिता देश के प्रशासनिक तन्त्र के सम्बन्ध बहुत विस्तृत जानकारी नही देती है। इस सन्दर्भ जीवन के इस महत्वपूर्ण अग के विषय मे विस्तृत जानकारी न होते हुये भी इस का वर्णन करना अनिवार्य है। अत बृहत्सहिता के अतिरिक्त अन्य पुराणो और पुरातात्विक स्रोतो के आधार पर हम इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित विवेचन करेगे।

शासन के इस विज्ञान को दडनीति[1] कहा जाता है तथा इसमे निपुण विदो को 'नीतिवृत्ति' तथा 'नीतिजन'[2] के नाम से सन्दर्भित किया गया है।

यद्यपि लोकतन्त्र से सन्दर्भित कुछ सदिग्ध जानकारी मिली है, इसके आधार पर इन लोगो को 'गण' 'सघ'[3] तथा इनके मुखियो को गणमुख्य, गणय तथ गणपति कहते थे (ganamukhya XV17, XVII24, ganp XXXII 18, ganapatı XVI 32)। यहाँ शासन की राजतन्त्र प्रणाली के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता है यौधेय राजाओ के सन्दर्भ[4] मे यह विवरण प्राप्त होता है कि स्पष्ट रूप से लोकतन्त्रवादी लोग पर शासन की राजतन्त्रात्मक प्रणाली का प्रभाव था। राजा राज्य की आत्मा होता था। इस सम्बन्ध मे यह रूचिकर है कि हमारे कार्य मे विशेष रूप से राजाओ के सम्बन्ध काफी जानकारी वर्णित है। अन्त पुरचित्र अथवा 'शाही हरम' का उल्लेख 'सहिता' मे किया गया है। 'इन्द्रमहा' 'निराजन' पुष्यस्नान तथा पट्टा–लक्षण विशेष

1- XIX 11 for the term see HDS III pp 5-99

2- X 17, XVI 22 cf the tıtles lıke kamandakcıya nıtısara, Sukrat ıtısara, Nıtıtakyamrta, etc vıde also k p Jayaswal Hındu polıty p 6, A S Altekar, state and Government ın Ancıent Indıa, p p 2-3

3- V76 refers to the great ganas (mahaganah and the sanghas of the Nısadas; Utpala ınvarıably, but wrongly, takes both these words to mean multıtude (samuha))

4- IX 11 cf the Bıjayagadh stone ınarrıtıon referrıng to the Maharaja Mahas senapatı of the Yaudhaeya-gana (CII III, X10, 58)

रूप से राजा से सम्बन्धित थे।[5] राजा के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से यह महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है कि प्रजा रूपी वृक्ष की समृद्धि, पोषण तथा क्षति के मूल राजा ही है। राजा से प्रजा के कल्याण की आशा की जाती थी तथा उनके कष्टो का कारण राजा के कुकर्म समझे जाते थे (III 15) उसे दूसरो के सामने अपने चरित्र को आदर्श रूप मे प्रस्तुत करना पडता था। इस प्रकार राजा जो कि सदव्यवहार से रहित, गर्म–मिजाज, द्रोही, कठोर तथा शत्रुता का निमित्त हो तिरस्कृत समझा जाता था और ऐसा विश्वास था कि वह अपने राज्य को बरबादी की ओर ले जायेगा। वराहमिहिर ने ब्राह्मण सम्प्रदाय के अनुसार धर्म–विरूद्ध तथा नास्तिको के मध्य तिरस्कृत राजा के गुणो का वर्णन किया है।[6] उसका जीवन चिन्ताओ से युक्त समझा जाता था तथा उसके पास खाली समय का अभाव रहता था। उसे अपनी भावनाओ को छिपाना पडता था तथा सदैव शत्रुओ से युद्ध के लिये तत्पर रहना पडता था। उसे राजकार्य सम्बन्धी बहुत से तथ्यो पर विचार करना पडता था, मत्रियो की सम्मति का अनुसरण करना पडता था सब पर सन्देहास्पद दृष्टि रखनी पडती थी। वास्तव मे उसका जीवन कष्टो से भरा था उसके जीवन को न केवल अपने शत्रुओ से खतरा रहता था अपितु उसे अपने मत्री,[7] पुत्री[8] रानी[9] से भी खतरा रहता था। वराहमिहिर दो ऐसी घटनाओ का उल्लेख किया है, जिसमे रानियो द्वारा अपने पति की हत्या का विवरण है।

राजा सभी शासकीय शक्तियो का केन्द्र होता था। प्रजा की उचित सुरक्षा और

5- chs 71-72 and 78 dealing with umbrellas Chowies and furniture ase also mainly intended fo the king The procedure worshipply Agastya is also particalarly described keeping the king in view (XII 13)

6- पाखण्डाना नास्तिकाना च भवन्त साध्यवाचाद प्रोज्झित क्रोधिशीत ईर्ष्यु क्रूरो विग्रहा सक्तचेता यास्मिन् राजा तस्य देशम्य नाश ।

7- III 32 , XVI 41 for some instances of kings killed by ministers see Harsa carita VI 5 Yasastilica campu III, pp 431 32

8- XVI 41 for an instance of a king killed by his own son vide Arthasastra 1 20 15 17, for the necessity of kings protectise agauest the princes vide ibid, 1 17

9- XXIV 34 for several instances of kings killed by or through the stratagains of queens vide Arthasastra 1 20 15, 17 , kamandakiya nit sara , VII, 54-4 , Harshacarita VI Nitivaleyamsta XXIV 35 36
K K Handiqui, yasastilika and Indian culture, pp 104 5

उसे समृद्धि की ओर ले जाना राजा का प्रधान कर्तव्य था। प्रजा की भलाई के लिए तथा अशुभ घटनाओ से उसकी रक्षा के लिये राजा के द्वारा 'शान्ति' कराने की आशा की जाती थी। प्राचीन भारतीय राजनीति के लेखको द्वारा प्रजा मे भय उत्पन्न करने के लिय राजा उन्हे सजा भी देता था उग्र (IV11) । प्राचीन भारतीय राजाओ की तीव्र आकाक्षा सभी राजाओ के बीच श्रेष्ठता प्राप्त करने की होती थी। (LXIII 1) तथा विश्व के श्रेष्ठ अथवा 'चक्रवर्तिन' का स्तर प्राप्त करने की रहती थी। (CIV13) इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर आधिपत्य स्थापित करना (सार्वभौम X 1 58 , सकलवानिनाथ LXVIIII 8)। इस प्रकार जो राजा अगस्त्य की पूजा करता था उस उचित रीति से सम्पूर्ण पृथ्वी का राजाधिराज समझा जाता था तथा अपने शत्रुओ पर विजयी माना जाता था (XII 17)। इसी रीति के अनुसार 'इन्द्रमहा' के अवसर पर किये जाने वाले 'होम' पवित्र चिन्हो तथा यज्ञ की अग्नि से युक्त राजा के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र, नदियो तथा पर्वतो पर आधिपत्य समझा जाता था। मडल सिद्धान्त राजा की विजय की इच्छा के ऊपर आधारित होता था। नियुक्त करने वाले तीन लोगो के विषय मे हमारे लेखक ने निम्न नाम वर्णित किये है –

विजिगिषु (XV16, XVI 38), अकरन्दर (XVI 7, XVII 6,7,8 BCIII 61) अकरान्दसार (XXXI 22) राजधानी की रक्षा करने वाले राजा के 'नगर' या पौर कहा जाता था।[10] वराहमिहिर ने राजा के सम्बन्ध मे एक रूचिकर वर्गीकरण दिया है, जो कि उनके एक दूसरे से सम्बन्धो पर आधारित था। बढते हुये क्रम के आधार पर उनके नाम इस प्रकार थे। मण्डलिका[11] अन्तराजित समस्तर्याथिनी जैसा कि हम ऊपर देख चुके है धार्मिक रीति जिसे 'पुण्य स्नान'[12] कहा जाता था, के अवसर पर अपने सम्मानीय स्तर के आधार पर राज्यो मे शासन करते थे।

10- Nagara - XVII 8, XXXIV 22, XXXVI 2, paura - XVII 6-8, 14, XVIII 3, pura bhibhrt XVIII 6
11- IV 15, XLII 36 XLVII 47, LXVIII 23,
12- XLVII 47 for bhodrasana see sapra pp 253-4

प्रत्यान्तिक राजा के सम्बन्ध मे भी विवरण मिलता है।[13] कुछ पूर्व काल के महान राजतन्त्र प्रणाली 'राजन' के शीर्षक पर आधारित थी जैसे शुग–मौर्य तथा सातवाहन। परन्तु गुप्तो ने इस प्रथा को अस्वीकार करके उत्तर भारत के विदेशी शासको द्वारा प्रचलित प्रभावकारी शीर्षक को स्वीकार किया। इसके पश्चात 'महाराजाधिराज' जिसको कि शीर्षक 'महाराज' राजाधिराज से लिया गया कुछ इण्डोग्रीक सीथियन, पार्थियन तथा कुषाण शासको द्वारा स्वीकृत किया गया। जहॉ तक उत्तर भारत का सम्बन्ध है यह सर्वश्रेष्ठ राजतन्त्र प्रणाली के रूप मे प्रसिद्ध हुयी, 'राजन' तथा 'महाराज' शीर्षक को जागीदारो द्वारा बहिष्कृत किया गया। इस तथ्य के प्रमाण स्वरूप हमारे लेखक ने अवन्ति के शासक द्रववर्धन का उल्लेख किया है जिन्हे 'महाराजाधिराजक' कहा गया।[14]

छोटा छाता तथा ध्वज शाही चिन्ह माने जाते थे। राजा के उत्तरदायित्वो के निर्वहन के लिये बहुत बडी सख्या मे अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। पट्टा, घर, साजसामग्री, छाते, तथा असबाब आदि से सम्बन्धित कार्यो के लिये राज्य के कुछ उच्च पदो का वर्णन भी मिलता है।[15] राजा के पश्चात उतरते हुये क्रम मे उनका वर्णन इस प्रकार है–मुख्य रानी।, युवराज, सेनापति तथा दड नायक। कभी–कभी रानी का शासन मे बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता था उदाहरणत वराहमिहिर ने वाकाटक रानी प्रभावती गुप्ता का उल्लेख किया है। भाष्यकारो ने राज्य के मनोरजन मे युवराज की भूमिका का वर्णन किया है।[16] कुछ वैशाली मुहरो से यह जानकारी प्राप्त होती है कि युवराज की ऊची स्थिति उसके अपने 'कुमारमय' तथा सेना के अधिकारी के होने से दर्शाती है। सेनापति की उच्च श्रेणी बालमुख्या, बालनायक,

---

13- LXVII 23, utpala is wrong in taxing pratyantika as the king of the cave dwellers (gahvara vasinam adhipatin) cf the Allahabad pillar inscription which state that samudragupta made fice pratyanta-mpatis his tributaries vide CII III p 8, 11, 22-3

14- LXXX V2 see supra, p 39

15- for these items see supra pp 229-30, 372 ff, 235-6, 251-2

16- युवराज = ऋद्ध–राज्य–भाग राज, XXX 19,
युवराज = ऋद्ध भोगी राजा, XXXIV10, युवराज प्रसिद्ध = ऋद्ध – राज्य माक, LXXII 4

बालापति तथा सेनापति के नाम से भी विख्यात थी। निस्सन्देह दडनायक की महत्वपूर्णता युद्धो के लगातार होने के कारण आवश्यक थी। इस विवरण से सम्बन्धित 'सेनापति' तथा दडनायक की मुहर भीटा[17] से प्राप्त हुयी है। तत्कालीन अभिलेखो मे भी इन शासकीय पदो का वर्णन 'महाबालाधिकृत' तथा दडनायक की उपाधि के रूप मे है।

मत्रियो की सभा परिषद का भी सम्मानीय स्तर था। मत्रियो को मत्री 'सचिव' नृपमात्य तथा 'महामात्य' कहे जाने के कई सन्दर्भ मिलते है। राजा को मत्रियो की सलाह से कार्य करना पडता है। पुरोहित तथा शाही पादरी का राज्य के कार्यो मे महत्वपूर्ण स्थान था। उसका प्रधान कर्तव्य धार्मिक रीति के अनुसार काम करना था। वह 'इन्द्रमहा' निरजन तथा 'पुष्यस्नान' जैसे धार्मिक सस्कारो को शुभ अवसर पर राजा के लिये कराते थे। जैसा कि पूर्व कालीन विवरण मे सोमवातसार' नामक ज्योतिष प्राचीन भारत के सिनकोनिन राज्य का था।

इसके अतिरिक्त राज्य के अन्य उच्च सार्वजनिक अधिकारियो मे विभिन्न विभागो के अध्यक्ष (LII 9) सरकारी कारखानो का निरीक्षक अथवा 'कर्मान्ताध्यक्ष' (LII 9) कोष अथवा शाही कोष का निरीक्षक, विभिन्न कार्यालयो के अधिकारी (Adhıkaranıka XXXVIII 2) तथा अन्य अधिकारी (अधिकृत LII 9, राजाधिकृत X 16, राजपुरूष LII 14, XCIV20, प्रवतराज पुरूष LII 8, राज मतृ X 18, राजोपसेविन XXXVIII 3, नृपअनुचर XIX3 नृप सेवक C 6) आदि का भी विवरण मिलता है। राजदूत (Duta) तथा चर[18] विदेशी कार्यालयो से सम्बन्धित थे। आरक्षक (XVI 19) प्राय पुलिस अधिकारी होता था, तथा कायस्थ (LXXXVI 12) राजा के राजस्व विभाग का लिपिक होता था।

17- ASI, AR 1911-12, Nos 31, 44-51 pp 52 55,

18- X, 10, XVI, 18, LXXXV 33, 34, LXXXIX 4, XCV 2 for detaıls about spıes see Artha, Sastra, I 11-4 , Manu, VII 122 184, kamandaka XII.26-31

सेनापति तथा दडनायक के अतिरिक्त सेना के दो और अधिकारियो का विवरण मिलता है। नायक (XXXV7), राजाध्यक्ष (LXXXV34,) जो कि गज सेना का मुख्य अधिकारी होता था।

प्राचीन भारतीय राजनीति के लेखको ने युद्ध के कारण किले की महत्वता का वर्णन विशेष रूप से किया है। वराहमिहिर ने तीन प्रकार के किलो का उल्लेख किया है–गिरिदुर्ग (XVI 617) सलिलदुर्ग (XVI 6) तथा आटविकदुर्ग (XVI 12)। सेना के पारम्परिक सप्तागो मे से तीन अगो का वर्णन वराहमिहिर ने किया है उदा० पैदल सेना, अश्वारोही तथा गजसेना। सेना शिविर स्कन्धावार निवेश (XCIV45) का भी विवरण मिलता है। इन शिविरो के लिये राख, हड्डी, बालू, बाल, जानवरो, चूहे के बिलो से मुक्त भूमि उपयुक्त होती है।

सैन्य अभियानो के लिये वर्षा ऋतु के बाद का समय उपयुक्त माना जाता था। सेना का नेतृत्व स्वय राजा करता था। हमे सुसज्जित सेना के सन्दर्भ मे भी जानकारी मिलती है। वराहमिहिर ने युद्ध से सम्बन्धित हथियारो का भी उल्लेख किया है (XLV19)। उनके अनुसार प्रहारन की चमक क्रूर युद्ध के भविष्य बताती है। आयुध के सम्बन्ध मे भी यही कथन मिलता है। प्रहारन तथा आयुध साधारणत एक दूसरे के पर्याय है। उत्पल ने हथियारो की कई प्रकारो का वर्णन किया है तथा आयुध के तीन प्रकारो का वर्णन किया है। तलवार, पाणिमुक्त, हाथो द्वारा फेकने वाला पहियो तथा यात्रमुक्त निश्चित दिशा मे फेकने वाले उदा० पत्थर तीर तथा भाले आदि। अत स्पष्ट होता है कि सामान्य रूप से हथियारो को आयुध कहते थे और प्रहारन एक प्रकार है।

तलवार- ब्रहत्सहिता के खडग लक्षण भाग मे खडग के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी मिलती है। 50 अगुल लम्बी तलवार अच्छी समझी जाती थी तथा छोटी 25 अगुल माप की। सामान्य नियम के अनुसार यदि तलवार मे कोई दोष हो तो वह अपशकुन

समझा जाता था जबकि बराबरी पर चिन्ह शुभ समझा जाता था। लेकिन बिल्वा फल के आकृति का चिन्ह, वर्धमान की आकृति, छाता, लिंग (Linga) कुण्डल, कमलध्वज, स्वास्तिक, चिन्ह पक्ष में समझे जाते थे। तथा छिपकली, कौवे, चिड़िया, सिरविहीन सूंड़ या वृश्चिक आदि के चिन्ह ऊपरी किनारे प्र अशुभ मान जाते थे। इसी प्रकार बहुत छोटी धुंधली ऊपरी किनारे पर टूटी हुयी दुर्भाग्यशाली समझी जाती थी। वराहमिहिर ने गाय की जीभ के समान, कमल पटल की तरह बॉस की पत्ती की तरह, नुकीली तथा गोल (मण्डलाकार) तलवारों का उल्लेख किया है। कौटिल्य तथा पादमगुप्त ने भी मण्डलाकार (figure .32)[19] तलवारों का उल्लेख किया है। हमें शिल्पकला में सांची, भरहुत, अमरावती तथा नागार्जुनकाण्डा से प्राप्त तलवारों का विवरण मिलता है। खून शुद्ध मक्खन, पानी, घोड़ी का मिश्रित दूध को तलवार को शुद्ध करने के लिये प्रयोग किया जाता था।

वराहमिहिर ने विषयुक्त अस्त्रों का भी उल्लेख किया है। विषायुद्या (V.40) बाण, बाणासन, धनुष, चक्र, हल, गदा, वज्र के अतिरिक्त और भी विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का वर्णन वराहमिहिर ने किया है।

19- गोजिह्वासस्थानों नीलोप्तलवंशपत्रसदृष्य।
करवीरपत्रशूल्नग्रामण्डलाग्राः प्रशान्ताः स्युः ।।

अध्याय 6

साहित्य एवं कला

6. साहित्य एवं कला

साहित्य - वराहमिहिर एक विश्व ज्ञान दर्शक लेखक तथा अपने समकालीन लेखको मे से न केवल खगोल शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र मे अपितु अन्य विभिन्न विषयो मे भी स्वाभाविक रूप से मुख्य माने जाते थे। उनके समान विद्वान भट्टोपाल ने दृढतापूर्वक उन्हे 'सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र का सम्पादक' माना है। (IX 7)।

वराहमिहिर बताते है कि खगोल शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र को आगम पर आधारित विज्ञान माना है। क्या प्राचीन लेखको की धारणाओ मे कुछ भिन्नता होनी चाहिए? अल मित्रा शास्त्री के अनुसार यहा पर केवल उनके अपने विचार व्यक्त करना तर्क सगत नही है, पर वह यहा पर इस सम्बन्ध मे मुख्य विचार व्यक्त करने की चेष्टा करेगे। इसका परिणाम अति उत्तम है और उनका बहुमूल्य सूचनाओ का खजाना है उनका कार्य तथ्य की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करना है तथा हमारे ज्ञान का मुख्य साधन है। इस विषय से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी नीचे दी जा रही है।

1- ज्योतिष - हमारे लेखक ने ज्योतिष विज्ञान को तीन स्कन्धो मे विभाजित किया गया है। इसकी सर्वप्रथम शाखा को तन्त्र कहा गया जिसमे सूर्य चन्द्र तथा नक्षत्रो इत्यादि गणना की गयी है। दूसरी शाखा को होरा कहा गया है, जिसमे कुडली अथा कुडली बनाने का वर्णन किया गया है। अन्त मे प्राकृतिक ज्योतिष जिसे अगविनिश्चय अथवा शाखा कहा गया, जिसमे सम्पूर्ण ज्योतिष के पाठयक्रम का वर्णन किया गया है। तथा ज्योतिष के पाठ्यक्रम का वर्णन किया गया है तथा 'सहिता' नाम दिया गया है।[1]

1- ज्योतिषमागशास्त्र विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वमेमेव विकल्पयितु किन्तु बहूना मत वक्ष्ये IIIX 7
ज्योति शास्त्रमनेकभेद विषय स्कन्धत्रयाधिष्ठित
तकात्स्न्योंपनयस्य नाम मुनिभि सकीत्यते सहिता।
स्कन्धेऽमिन गणितेन या ग्रहगतिस्तत्रामिधानस्त्वसौ
होरान्योडड्गविनिश्चयश्च कथित स्कन्धस्तृतीयोऽपर II 1 9

'सहिता' शब्द सम्पूर्ण समझने योग्य ज्ञान का अर्थ सूचित करता है। उत्पल ने गर्ग के एक श्लोक का वर्णन किया है जो इसके विस्तृत ज्ञान को बताता है। इस प्रकार जो ज्योतिष के तीनो विभागो शक्ति, जातक तथा शाखा का जानता है वह सहिता मे निपुण समझा जाता था[2] अल्बेरूनी (I 57) के अनुसार सहिता का अर्थ है जिसमे सब कुछ एकत्रित हो तथा किताब जिसमे सबका कुछ अश हो। उसने इस शब्द का विस्तृत अर्थ समचित किया है। लेकिन बहुत से ऐस अवतरण है जिनमे ज्योतिष की तीसरी शाखा का सक्षिप्त अर्थ दिया गया इसके पर्याय अग शाखा अथवा फलग्रन्थ है।[3] इस प्रकार वराहमिहिर बताते है कि वास्तविक रूप से ज्योतिषी वह है जो मूलग्रन्थ तथा गणितीय खगोल शास्त्र, प्राकृतिक, ज्योतिष, कुडली पर किये गये कार्य का अर्थ भलीभाति जानता हो।[4] तथा भाष्यकार ने सहिता को फलग्रन्थ के रूप मे वर्णित किया है। एक दूसरे स्थान पर यह कहा गया है कि वट व्यक्ति जिसे स्वाभाविक ज्योतिष का सम्पूर्ण ज्ञान ही सफल भविष्यवक्ता हो सकता है। इन्होने उस राजा को सलाह दी है जो कि विजय का इच्छुक है कि वह उस ज्योतिषी का सम्मान करे और सेवा करे जिसे कुडली शास्त्र, खगोल शास्त्र तथा प्राकृतिक ज्योतिष षास्त्र का सम्पूर्ण ज्ञान हो। वराहमिहिर के प्राकृतिक शास्त्र पर किये गये कार्यो को समहित कहा जाता है और ऐसा ही उन्होने (PS, XV 10) मे कहा है। इस प्रकार उन्होने कहा है 'सहिता के प्रारम्भिक राहु के चक्र के पाठ मे मैने पूरी तरह समझाया है कि राहु के अलावा क्या चन्द्र या सूर्य ग्रहण कारण होता है। यह मुख्यत B 5 के पाचवे पाठ से लिया गया है। इस प्रकार सहिता के दो अर्थ है। विस्तृत रूप मे यह शब्द सम्पूर्ण रूप से ज्योतिष विज्ञान को दर्शाता है, जिसे अन्यथा ज्योतिष सग्रह कहा जाता है।[5] जबकि यह सीमित शब्दो मे प्राकृतिक ज्योतिष शास्त्र को दर्शाता है। जैसा कि हम देख चुके है कि वरामिहिर ने इस शब्द को विस्तृत रूप से परिभाषि यिा है परन्तु अक्सर इसे

2- गणित जातक शाखा यो वेत्ति द्विजपुगव।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्ट सहितापारगश्च स।।

3- Aniga is use fo the third branch in B s, I 8, BY II 9

4- यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसहिता।
अभ्यर्च्य स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो ज्योषिणा।। II 19

5- स्कनधैस्त्रिमिर्ज्योतिषसग्रहोऽय मया कृतो दैवविदा हिताय।। BJ XXVII 6

सकीर्ण रूप मे लागू किया गया।

पूर्णता प्रकट या अर्द्ध प्रकट सिद्धान्तो की सख्या है पारम्परिक रूप से 18 है।[6] किन्तु हमारे लेखन को मात्र 5 के सम्बन्ध मे ज्ञान था। क्रमश पौलिस, रोमक, वशिष्ठ और पितामह[7]। इनमे से प्रथम दो के बारे मे लाटदेव[8] के द्वारा बताया गया है जो कि आर्यभट्ट के शिष्य थे।[9] हमारे लेखक ने स्पष्ट किया है कि 'सिद्धान्त' जो कि पौलिस से बना है सटीक है, जो रोमक से बना है। उसके समीप है, और सवित् सिद्धान्त और भी अधिक सटीक है जबकि शेष दो वसिष्ठ और पैतामह सत्य से अत्यधिक दूर है। इन्होने प्रत्येक सिद्धान्त को उनके मूल्य के अनुसार अलग–अलग स्थान प्रदान किया है। सिद्धान्त हिन्दू खगोल शास्त्रीय प्रथा के विकास को दर्शाता है। वराहमिहिर के अनुसार पैतामह वेदाग ज्योतिष के निकटतम है जो कि खगोल शास्त्र प्राथमिक कार्य है जो कि भारत ने हमे प्रदान किया है तथा भारतीय खगोल शास्त्र की प्राथमिकता स्थिति को दर्शाता है। वसिष्ठ शास्त्र की प्राथमिक स्थिति को दर्शाता है वसिष्ठ सिद्धान्त प्रत्यक्ष तथा तुलनात्मक रूप से अधिक विकसित है तथा प्राथमिक प्राय वैज्ञानिक खगोलिय कार्यो परवर्ती खगोलिय प्रथाओ के बीच की स्थिति है। पौलिस और रोमक प्राय ग्रीक खगोशास्त्र के भारत मे प्रचार के लिये उत्तरदायी है। 'सौर' प्रारम्भिक भारतीय वैज्ञानिक खगोलिशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ लेख है।

पौलिस, रोमक, वसिष्ठ, सौर, पितामह इन पाचो सिद्धान्त मे सम्बन्धी युग, वर्ष

6- सूर्य पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशर।
कश्ययो नारदो गर्गो मरीचिर्मुनिरगिरा ।।
लोमश पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो मृगु।
शौनकोऽश्टादशाश्चैते ज्योति शास्त्रप्रवर्तक ।।
(quoted ın sudhakara Dvıdedı Gunak Tarangını, P I)

7- तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवसिष्ठसौरपैतामहेषु पचस्वेतेषु
सिद्धान्तेषु BS, II, P 22
पौलिश–रोमक–वसिष्ठ–सौर–पैतामहाश्चपच सिद्धान्त PS, I 3a

8- पचभ्यो द्वावाद्यौ व्याख्यातौ लाटदेवेन। PS, I 3b

9- Bhaskara I ın hıs comm on Aryabhatıya,
Kalakrıya, verse 10, observes
एतद्–एव–आर्यभट्स्य शास्त्र–व्याख्यान–समय
पाण्डुरगस्वामी–लाटदेव–नि शकु प्रभ्रतिम्य प्रोवाच,
Cf P C Sengupta, khandakhadyaka, Engl Tr, Introd, P XIX

अमन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र प्रहर, महुर्त, नदी, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के काल विभाग, आदि, सौर सावन, नक्षत्र और चान्द्रमास, अधिमास तथा क्षयमास, साठ वर्ष के जोवियम चक्र का प्रारम्भ और अन्त, सूर्यादि ग्रहो की शीघ्रगति मन्दगति दक्षिणगति उत्तरगति, सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण मे स्पर्श और मोक्षकाल, ग्रहण की स्थिति, विभर्द वर्ण और देश, गृहयुति, गृहस्थिति, ग्रहो की योजनात्मक कक्षाए, पृथ्वी नक्षत्र आदि का भ्रमण अक्षाश लम्वाश द्युण्या, चरणखण्डकाल, राशियो का उदयभान एव छायागणित आदि विभिन्न विषयो का सयुक्त रूप से वर्णन किया गया है। इसे पश्चात कुण्डली का उल्लेख किया गया है। इसमे निम्नलिखित बिन्दुओ का समावेश किया है। राशियो का बलवान और निर्बल होना, होरा चक्र, द्रेष्काण चक्र, नवमाश, द्वादशाश, सातोग्रहो का स्थान उसके अनुसार उनकी शक्ति का वर्णन, ग्रहो के रग, स्वभाव धातु, द्रव्य, जाति, चेष्टा आदि से सम्बन्धित ग्रहो का विभाग, जन्म का समय, अकस्मात मृत्यु जीवन की अवधि, शकुन और इसके परिवर्तनो का वर्णन है। सूर्यादि ग्रहो की चाल, उनका स्वाभाव विकार, उदय अस्त, मार्ग–पृथक मार्ग, वक्र, अग्नवक्र नक्षत्र विचार तथा उनका फल, अगस्त्य की चाल सप्तऋषियो की चाल, इन सबका प्रभाव, पुरूष लक्षण एव साधारण, असाधारण सभी प्रकार के शकुन का इसमे उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त विवाह एव अन्य सस्कारो के शुभ समय की गणना का भी विवरण मिलता है।

वर्तमान मे वराहमिहिर के पूर्व कालीन प्रचलित ग्रन्थो मे जातक और विवाह पटल भी उपलब्ध है। दोनो होरा के अन्तर्गत आते है।

ब्रहज्जातक मे वराहमिहिर ने कई परिभाषिक शब्द तथा अपने समय के लेखको उल्लेख किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय भी बहुत बडी सख्या मे इस विषय से सम्बन्धित कार्य हुआ है। उत्पल के अनुसार लग्न निकालने की प्रक्रिया द्वारा प्रतिस्थापना सस्कार, यात्रा, विवाह और इस तरह के अन्य कार्यो मे शुभ और

अशुभ फल देने वालो ग्रह तथा नक्षत्रो की स्थिति का वर्णन होरा मे किया गया है।[10] परन्तु यह परिभाषा हमारे लेखक के समय सर्वमान्य नही थी जबकि होरा शास्त्र मे विवाह को भी सयुक्त किया गया। उन्होने 'यात्रा' को पृथक रूप से निर्देशित किया है। इस प्रकार 'सहिता' का प्रभुत्व यात्रा पर माना जा सकता था। अपने कथन की पुष्टि कुछ निश्चित बिन्दुओ द्वारा कर सकते है, जिसके अनुसार अग्नि के भावी लक्षण, हाथी और घोडे से शकुन बताना, विजय और शकुन के लिये स्नान तथा प्रतिष्ठा करना इन का विवरण 'यात्रा' और 'सहिता' दोनो मे किया गया है।

'यात्रा' के अन्तर्गत शुभ-अशुभ, तिथि साप्ताहिक दिन, करण, मुहुर्त, कुडली, तााारामडल अग फडकना, स्वप्न, विजय के लिये स्नान, ग्रह के लिये यज्ञ, हाथी और घोडो के सकेत, अच्छा या बुरा भविष्य बताना, सेना के लिये भूमि, अग्नि का रग और उपयोग परिस्थितियो के अनुसार, मन्त्रियो दूतो तथा आटविको का वर्णन आता है।

प्राकृतिक ज्योतिष विज्ञान जैसे सहिता, शाखा अग और फल ग्रन्थ मे निम्नलिखित विषयो का वर्णन है सूर्य तथा अन्य ग्रहो की गति, इनके प्राकृतिक अप्राकृतिक लक्षण, रग, उदय तथा अस्त, उनक मार्ग तथा उसका वक्र होना तारो और नक्षत्रो का योग आदि का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

इसके अतिरिक्त ग्रहो की अध्यक्षता वाले वर्षो पर उनका प्रभाव, बादलो के गर्भाधान के लक्षण, चन्द्रमा का रोहिणी, स्वाति, पूर्वआषाढ तथा उत्तर आषाढ से योग, शीघ्र वर्षा के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी, फूलो और लताओ की उत्पत्ति से शकुन, कृत्रिम सूर्य, आभामडल, सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय सूर्य को ढकने वाले बादलो की कतार वायु धूमकेतु, दिकदाह, भूकम्प, गन्धर्वनगर राशि के आधार पर सूर्य की गति के अनुसार मूल्यो मे उतार चढाव, फसलो की उत्पत्ति के लिये शकुन, इन्द्र का ध्वज,

---

10- प्रतिष्ठा-यात्रा-विवाह-आदिनाम् लग्न'-ग्रह-वशेन च
शुभ-अशुभ-फलम् जगती यया निश्चयत सा होरा,
utpala on 1, 9

इन्द्रधनुष वास्तुविद, हस्तविद्या, कौओ से शकुन, अर्न्तचक्र वाताकार, मन्दिर शिल्प, मूर्ति–शिल्प, प्रतिभा–लक्षण प्रतिभा प्रतिस्थापना, शकुन तथा अपशकुन का कम करना मिश्रित, तत्व, मुर्गे, कछुवे, गाय, बकरी, घोडे हाथी तथा स्त्री व पुरूष के चिन्ह इन सबका साधारण मनुष्य तथा राजा के जीवन मे इन सबके प्रभाव का वर्णन मे इन ग्रन्थो मे किया गया है।[11]

सहिता को दो वर्गो मे विभाजित किया गया है अग तथा उपाग (Cf 11 6 इससे अगोपाङ्ग शब्द मिलता है)। गर्ग के अनुसार भाष्यकारो ने अग के अन्तर्गत, नक्षत्र, तारो तथा राशि के 12 चिन्हो को इसमे वर्णित किया है।[12] इसके अतिरिक्त शेष का वर्णन 'उपयोग' मे किया गया है। इस प्रकार पशु, स्त्री तथा पुरूष के चिन्ह, स्त्रियो पर इसका प्रभाव, मणियो का निरीक्षण, प्रकाश का प्रतीक दन्त खोदन, पहिये, तलवार, छाता, काच आसान आदि को सास्कृतिक इतिहास मे इनकी कीमत वर्ग के अनुसार की गयी है। इस प्रकार हम कह सकते है कि ज्योतिष ग्रन्थो मे हर क्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत रूप मे वर्णित किया है। इस वर्ग के पूर्वकालीन कार्यो मे तथा पौराणिक चरित्रो के द्वारा हमे कुछ जानकारी प्राप्त हुयी है। हमे विश्वास है कि वराहमिहिर हमारे सम्बन्धित प्रश्न, उनके उत्तर, कथाये तथा नक्षत्रो के उदभव आदि को स्वीकृति देगे जिनका कि किसी विज्ञान मे स्थान नही है। इन बिन्दुओ पर व्याख्या करते समय उत्पल ने गर्ग तथा पराशर को उदधृत करते हुए नक्षत्रो के उदभव का पुराणो तथा धार्मिक अभिप्राय द्वारा विस्तृत रूप से वर्णित किया है। गर्ग तथा कश्यप को उद्घृत करते हुये उत्पल ने इन ग्रहण के प्रभाव का वर्णन किया है। (Vol 84 85) मे चन्द्रमा के मण्डल के उत्तरी अथवा दक्षिणी किनारे पर ग्रहण के अन्त मे होने वाले परिणामो का

11- BS, 11, pp 13-4

12- तथा च भगवान् गर्ग
अधिकृत्य ग्रहर्थादि जगतोयेन निश्चय ।
तदङ्गमुत्तम विन्धादुपाङ्ग शेषमुच्यते इति ।।
cf utpala ——— तथोपाङ्गानि तत्रैव पठितानि् पुरूषलक्षणस्त्रीलक्षणवस्त्रो
पानच्छेदरत्नलक्षणदीपदन्तका ठलक्षणादीनि। एतदुक्त भवति। ग्रहनक्षत्र–
राशिनाश्रित्य यदुक्त तान्यङ्गानि परिशिष्टान्युपाङ्गानि इति।

वर्णन किया है। (V 84-85) उत्पल का कथन है कि गणितीय ज्योतिष के नियमो इसके विरूद्ध है वराहमिहिर ने यहा पर प्राचीन लेखको के विचार की पुन उत्पत्ति करते हुये कश्यप को उद्घृत किया है।[13] इसी प्रकार का कथन भाष्यकारो ने V 89-90 दिया है, जिन ग्रहणो के रूकावट के परिणाम का वर्णन किया है, जिन्हे मध्यविदर्शन तथा अन्त्यविदर्णन कहा जाता था।[14] यह कहा गया है (VII 21)? कि जब बुद्ध, श्रावण, घनिष्ठ रोहिणी, मार्गशीर्ष तथा उत्तरआषाढ द्वारा प्रवेश करता है इनमे से किसी कि द्वारा काटा जाता है तो वह वर्षा के अभाव तथा महामारी का कारण होता है।[15]

अब हम क्रमबद्ध तरीके से ब्रहत्सहिता मे सन्दर्भित लेखको एव उनके कार्यो को प्रस्तुत करेगे तथा जो भी थोडी बहुत जानकारी हम विभिन्न स्रोतो से एकत्र कर चुके है वह भी प्रस्तुत करेगे।

1- अत्रि - Ch XLV के अनुसार 'उत्पात' 'UTPATAS' अशुभ घटनाओ का सक्षिप्त वर्णन है।[161] गर्ग ने इसकी व्याख्या 'अत्रि' के रूप मे की है। इन्होने दो तर्क प्रस्तुत किये है गर्ग द्वारा प्रवीण व्यक्ति माने गये अत्रि ने 'उत्पात' पर काम किया है अथवा गर्ग ने अत्रि स निर्देश प्राप्त किया है। उनका 'यात्रा' मे प्रवीणता के रूप मे भी वर्णन है। (By XXIX)

2- असिता - (XI 1) 'केतुकार[162] के लेखक के रूप मे उनका नाम है। भाष्यकारो के अनुसार (XXI 2) असिता ने बादल के गार्भाधान (गर्भ–लक्षण) के बारे मे भी वर्णन किया है। XIX 1[17] मे इन्हे देवल और कश्यप के साथ इन्हे अग्नि के चिन्हो के सम्बन्ध मे सन्दर्भित किया गया है।

13- एतोदौत्पातिकम् यतो गणितगोलवासनया
दक्षिणोत्तरयोर्द्धिशोर्ग्रासमोक्षौ न भवत ।
कदाचिदपि आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसोणोक्तम्।

14- एतदत्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरूद्धम।

15- विचरन् श्रवणघनिष्ठाप्राजापत्येन्दुवैश्वदेवानि।
मृदनम् हिमकरतनय करोत्यवृष्टि सरोगमयाम् IIVII 2

16_1- यानत्रेरूत्पातान् गर्ग प्रोवाच तानह वक्ष्ये। XLVI

16_2- गार्गीय शिखिचार पाराशरमसितदेवलकृत च। XI

17- श्लोकाश्चासित–देवल कश्यपमुनिचोदितान् वक्ष्ये। BY, XIX 1

3- बाद्ररायण (XXXIX 1)- बाद्ररायण ने सूर्य का वृश्चिक तथा वृष राशि मे प्रवेश के समय होने वाली ग्रीष्म बसन्त कालीन फसलो की उत्पत्ति के लिये अच्छे और बुरे 'योगो' को बताया है जो कि इस सम्बन्ध मे प्रवीण मान जाते है।[18] 'उत्पल' के अनुसार (XXI 2) बाद्ररायण 'गर्भ लक्षण' के भी विशेषज्ञ माने गये है। उत्पल ने अपने भाष्य मे विभिन्न स्थानो पर बाद्ररायण को सन्दर्भित किया है। (YYIX) VI 2 तथा XI 5 ।[19]

बलदेव (LII 125) - वराहमिहिर ने वर्षा ऋतु के सम्बन्ध मे बलदेव के विचारो पर परामर्श लिया है।[20]

भागुरी (XLVII 2) - ऐसा प्रतीत होता है कि भागुरी ने वृद्ध गर्ग से पुष्य–शान्ति सीखी है XLVII 2 ।[21] उन्हे शकुन के लेखक के रूप म भी सन्दर्भित किया गया है। (LXXXV 1)।

भारद्वाज (LXXXV.2) - शकुन के प्राचीन लेखको मे इनका नाम वर्णित है। अवन्तिके राजा महाराजाधिराज द्रव्यवर्धन के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि इनके निबन्ध मुख्यत भरद्वाज के निबन्धो पर आधारित है। भाष्यकारो ने घर के दरवाजे की स्थिति के सम्बन्ध मे एक अनुष्टुभ छन्द का उद्धरण दिया है। (LII 75-76)

भृगु - (LXXXV 43) - भृगु के अनुसार चाष पक्षी तथा उदविलाव का दाये से बाये उडना दोपहर मे यात्रा के लिये शुभ है।[22]

ब्रहद्रथ (LX 1) - यह कहा जाता है कि पराशर द्वारा दिये गये 'गो लक्षण' से सम्बन्धित ज्ञान को सक्षिप्त रूप मे वर्णित किया है।

18- वृश्चिकवृ प्रवेशे भानोर्ये बादरायणेनोवत्ता।
ग्रीष्मशरत्सास्थाना सदसद्योगा कृतास्त इमे।। XXXIX 1

19- JBBRAS, 1948-49, P 5

२० मेघोद्भव प्रथममेव मया प्रविष्ट ज्येष्ठामतीत्य
बलदेवमतादि दृष्ट्वा। LIII 125

21- या व्याख्याता शान्ति स्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे।
ता प्राप्य वृद्धगर्ग प्राह यथा भागुरे शृणुत ।।XLVII 2

22- चाष सनकुलो वामो भृगुराहापराहणत । LXXXV 436

ब्रहस्पति (XXIV 2) - यह कहा जाता है कि बृहस्पति ने चन्द्रमा का रोहिणी के साथ योग तथा वर्षा एव फसलो की उत्पत्ति के सम्बन्धो मे नारद को ज्ञान दिया।

देवल- यह बताया गया है कि देवल के अनुसार रिज्वी, अतिवक्र, वक्र एव विकल की गति का प्रभाव बुद्ध पर क्रमश 30, 24, 12 तथा 6 दिन तक रहता है[23] और उत्पल वास्तव मे 5 अनुष्टुभ अवतरण इनसे उदघृत करते है।

द्रव्यवर्धन (LXXXV 2) - यह बताया जाता है कि शकुन मे वराहमिहिर ने महाराजाधिराज का, द्रव्यवर्धन, अवन्ति के राजा के कार्य जो कि भरद्वाज के साथ विचार–विमर्श करने के बाद प्रस्तुत किये थे, पर विचार किया।[24] इस समय अवन्ति दोनो ही जगहो पश्चिमी मालवा तथा पौराणिक राजधानी उज्जयिनी के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

गर्ग- गर्ग के अलावा अन्य किसी भी प्रवीण मनुष्य का ब्रहत्सहिता मे इतना अधिक उल्लेख नही है। XI 1 'सिखीपारा' का उल्लेख है। तथा उत्पल ने अनेक पद्य इनसे उद्घृत किये है, जिनमे से एक के अनुसार केतु (XI 15) का स्थान 1000 है। XXI 2 के अनुसार बादलो का गर्भाधान गर्ग पर आधारित है।

कपिस्थला - शकुन के लेखक ऋषम के द्वारा अनुसृत किया गया। (LXXXV 1)

कश्यप - कश्यप का नाम गर्ग, पाराशर, वज्र तथा अन्य लेखको के साथ वर्षा के लेखक के रूप मे लिया जाता है। (XXIV 2) के अनुसार इन्होने चन्द्रमा का रोहिणी के साथ मिलन अपने शिष्यो के समूह को पढाया था। कई पदो मे वराहमिहिर ने 'अन्य' (XI 1) आदि (XVII 3, XXI 5, LXXXV) एव एक (XXXII 1 , XLV 5, XCIV 62) इनका प्रयोग किया है जो कि उत्पल के अनुसार कश्यप के लिये प्रस्तुत किया है।

23- ऋज्यतिवक्रा वक्रा विकला च मतेन देवलस्यैता
पचचतुर्द्व्येकाहा ऋज्व्यादीन षड्भयस्ता ।। VII 15

24- LXXXV 2

मनु - XLII 39 मे मनु का उल्लेख 7 मे से 5 सक्रकुमारियो क निर्माण के सम्बन्ध मे किया है। मनु 'धर्मशतृकार' के समान थे या भिन्न थे यह आज के ज्ञान के आधार पर निश्चित करना मुश्किल है।

माया- यह कहा जाता हे माया ने चन्द्रमा के रोहिणी से मिलने के अच्छे एव बुरे परिणामो के बारे मे अपने शिष्यो को सूचना प्रदान की (XXIV 2) ILV29) एव LVI 8 मे शिल्पकारो से उनका सम्बन्ध वर्णित किया है। बृहत्जातक मे इन्हे आयुर्वेद से सम्बन्धित सन्दर्भित किया है। VII 1

नारद - कुछ लेखको की धारणा के विरूद्ध कि 101 केतु है तथा कुछ लेखक जो कि 1000 केतु के अस्तित्व को मानते थे। नारद के अनुसार केवल एक केतु है जो कि अनेक आकारो मे दिखायी देता है।[25]

पैतामह सिद्धान्त (BS, 11, P 22, PS 1 3) - वराहमिहिर के अनुसार कि उनके समय तक 'पैतामह सिद्धान्त' अशुद्ध तथा अत्यधिक अपूर्ण हो चुका था क्योकि इसक द्वारा की गयी गणना निरीक्षण द्वारा प्राप्त किये गये परिणाम से मेल नही खाती थी। यह सिद्धान्त जैसा कि सक्षिप्त रूप मे वराहमिहिर द्वारा बनाया गया है ज्योतिषी वेदाग के पदचिन्हो पर आधारित है।

पाराशर - अत्यन्त प्राचीन पारम्परिक हिन्दू खगोलशास्त्री पाराशर को विभिन्न स्थानो पर हमारे लेखक द्वारा सन्दर्भित किया गया है। (VII 8) के अनुसार इन्होने बुध की सात प्रकार की गतियो का वर्णन किया है तथा उनके इस कार्य का 'पाराशर तन्त्र' मे वर्णन है।[26] वराहमिहिर ने 'केतुकार' अध्याय को लिखने से पहले पाराशर के इस विषय से सम्बन्धित कार्य पर विचार–विमर्श किया था। XVII 3 के अनुसार पाराशर

25- शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम्।
बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारद केतुम ।। X1 5

26- JBBRAS, XXIV - XXVB P 15
प्राक तविमिश्रससिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्या।
सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रै कीर्तित गतय ।। VII 8

परस्पर विरोधी नक्षत्रो के चार प्रकार मानते है एव एक गद्य अवतरण मे उत्पल ने इनके नाम 'मेदन', अरोहण, उल्लेखन एव रश्मि–ससर्ग माने है। XXI 2 मे पराशर के गर्भ–लक्षण तथा वर्षा के शुभ लक्षणो को सन्दर्भित किया है।

पौलिस सिद्धान्त (B S II, p 22) - वैज्ञानिक हिन्दू खगोलशास्त्र के लेख प्रमाणो मे पौलिस एक मात्र है वराहमिहिर ने गणना की सटीकता के लिये इस सिद्धान्त का विशेष रूप से वर्णन किया है।

रोमक सिद्धान्त (BS, II p 22) - रोमक पौलिस के गणना के सन्दर्भ मे काफी समीप था और पौलिस की ही भाति लतादेव द्वारा इस पर टिप्पणी की जा चुकी है। इसका नाम पश्चिम की ओर सकेत करता है और इस तथ्य के आन्तरिक प्रमाण मिलते है कि यह किसी विदेशी स्रोत से निकाला गया है।

ऋषभ - यह कहा गया है इन्होने शुक्र, बृहस्पति, कपिस्थल, गरूत्मत, भगुरी एव देवल के विचारो को ध्यान मे रखते हुये स्वय का कार्य शकुन प्रस्तुत किया है। (LXXXVI)[27]

ऋषिपुत्र - हमारे लेखक ऋषिपुत्र का नाम मुख्यत केवल एक बार ही लेते है। XLV 82 मे बताया गया है कि लेखक ऋषिपुत्र द्वारा रचे गये पद जो कि विभिन्न ऋतुओ की स्वाभाविक प्रक्रिया को समझाते है। जो 'उत्पात' से प्रभावित नही हो और जिन पर बुराईयो का कोई प्रभाव नही है, उद्धरण करेगे।[28]

शुक्र - शकुन के लेखको की सूची मे इनका पहला नाम है जिनके विचार ऋषभ द्वारा ध्यान मे रखे गये थे जब उन्होने इसी विषय मे स्वय का कार्य रचा था। (LXXXV 1)

सप्तऋषि (LXXXV 3)– यह कहा जाता है कि वराहमिहिर ने दूसरो के साथ सात सिद्ध पुरूषो को विचारो को भी ध्यान मे रखकर अपना शकुन का अध्याय रखा था।

27- यक्ष्दक्रशुक्रवागीश कपि ठलगरूत्मताम्।
मतेम्य प्राह ऋषमो भागुरैदैवस्य च।। LXXXV 1

28- ये च न दोषान् जनयन्त्युत्पातास्तान तुस्वभावक्रतान्।
ऋषिपुत्रकृतै लोकैविघादेदै समासोक्तै ।।

सारस्वत - LIII 99 मे यह बताया गया है कि आर्य मे 'दकारगल' का प्राथमिक सन्दर्भ मुनि सारस्वत पर आधारित है तथा भाष्यकार वास्तव मे अनुष्टुभ मे इनके द्वारा लिखे गये 31 पद उद्धरण करते है। LIII के 6-7 (3 पद), 9-10(2), 16(2), 17(2), 21-22(2), 24(1), 29-30 ($2\frac{1}{2}$), (2), 37 ($1\frac{1}{2}$), 58(1), 63-64(2), 67($1\frac{1}{2}$), 83 (2), 85(2), 40 ($1\frac{1}{2}$), 95($1\frac{1}{2}$), 96($1\frac{1}{2}$) अध्याय मे उद्धत है।

सौर सिद्धान्त (BS, 11, P. 22) - XVII 1 के अनुसार लेखक पहले ही अपने कारण के सूर्य सिद्धान्त खण्ड मे भविष्यवाणी के साधन की कब और कैसे ग्रहो मे विरोधाभास होगा का उल्लेख किया है। इसकी गणना पौलिस और रोमक सिद्धान्त को वराहमिहिर द्वारा महत्व दिया गया है यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि उन्होने सूर्य तथा चन्द्रमा की गणना 5 अलग सिद्धान्तो मे दी है तथा ग्रहो की गणना मात्र सूर्य सिद्धान्त मे दी है।

सिद्ध सेना - XXI 5 के अनुसार कुछ लोगो की यह अवधारणा है कि बादलो का गर्भाधान कार्तिक माह की पूर्णमासी के बाद आरम्भ होता था, और भाष्यकार हमे यह मानने को तत्पर करते है कि यहॉ पर सिद्ध सेना एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है, जिनसे अनुष्टुभ मे पद उद्धरण किया है। इनका उल्लेख बृहज्जातक VII 7 मे आर्युदाय के सन्दर्भ मे किया गया है।

शुक्र - यह शकुन के लेखक है जिनके विचार ऋषभ द्वारा ध्यान मे रखे गये है XLIX 23 24 मे तलवार की धार तेज करने के लिये 'उषान' का नुस्खा दिया है। उत्पल के अनुसार 'उषान' शुक्र के लिये प्रयुक्त किया है। शास्त्र मे 'उषान के मन्त्र जो कि क्षत्रिय ध्वज तथा अस्त्र बनाने के लिये प्रयुक्त किय जाते थे वह शत्रु के विनाश के लिए उपयुक्त थे।

वज्र - वज्र को स्पष्ट रूप से बृहत्सहिता मे मात्र एक बार सन्दर्भित किया है। XXI 2 मे यह बताया गया है कि वराहमिहिर ने मानसून की सूचना पर अपने खण्ड को लिखने के पहले अन्य वज्रो का परामर्श लिया है।

वसिष्ठ - XXII4-8 मे बादलो के गर्भ–धारण के दिन का जो उल्लेख किया गया है वह वसिष्ठ का दिखायी पडता है अगर हम XXII 3 के शब्दो पर विश्वास करे। LVII 8 मे यह कहा जाता है कि वसिष्ठ की यह धारणा थी कि मूर्ति मे ऑख के किनारे तथा कान के छेद के बीच मे चार अगुल की दूरी होनी चाहिए थी और उत्पल ने इस तथ्य पर आधा अन्दुष्टुभ उद्धरण किया है। अल्बेरूनी के अनुसार वसिष्ठ को यह नाम एक तारामडल (ग्रेट बीयर) के कारण मिला है जो कि विष्णुकन्द द्वारा निर्मित था।

भवन निर्माण एव शिल्प कला - ब्रहत्सहिता के 52वे अध्याय के प्रारम्भिक पद मे यह बताया गया है कि वास्तु शास्त्र का ज्ञान ऋषियो की पीढियो से चला आ रहा है तथा 55 वे अध्याय के अन्तिम अवतरण मे गर्ग मनु तथा औरो[29] द्वारा मन्दिर के वास्तु शास्त्र के विषय मे एक विस्तृत निबन्ध लिखा है। गर्ग, मनु माया तथा वसिष्ठ जिनमे विचार पहले ही वर्णित कर चुके है, के अलावा हमारे पासा नगनपात (LVII 4) तथा विश्वकर्मा के विषय मे भी सन्दर्भ है।

दण्डनीति - उत्पल के अनुसार II 4 'यदि कोई चाहे समुद्र पार करके दूसरे किनारे पर पहुॅच सकता है यदि हवा उसका साथ दे किन्तु यदि कोई ज्ञानी नही है तो वह मस्तिष्क के जरिये कालपुरूष के अत मे भी नही पहुॅच सकता यानि कि ज्योतिष शास्त्र एक अथाह सागर है।' यह तथ्य हमारे लेखक ने आचार्य विष्णुगुप्त से लिया है। वराहमिहिर ने विवेचक दृष्टि से विष्णुगुप्त देवास्विन एव सिद्धसेन के आयुर्दाय पर आधारित विचारो को देखा है और उत्पल दो आर्य चाणक्य एव विष्णुगुप्त के नाम से उद्घृत किये है। XIX 11 मे ज्ञान की चार शाखाये क्रमश वर्त, ज्ञायि, 505 नीति तथा आन्विषकी जो कि बुद्ध के वर्ष मे समृद्ध हुयी थी, का उल्लेख कया है तथा मन्द की दण्डनीति का नाम इसी सन्दर्भ मे लिया गया है।

29- प्रासाद लक्षणम् = इदम् कथितम्
समासाद = गर्गेणयद् = चिरचितम् तद् = हि –
अस्ति सर्वम्, मनु = आदिर्मि = चिरचितानि प्रयूनि
यानि तत् समास्पर्शन् प्रति मय–आत्र कृतो= धिकार LV 31

कन्दर्पिक - B S chs 74 75 और 77 मे कामशास्त्र के शुभगणकरण कन्दर्पिक और पुसस्त्रीसमायोग का वर्णन मिलता है। इसकी तुलना वात्सायन के कामसूत्र से की जा सकती है जो पूर्वोक्त जानकारी प्राप्त करने का एक मात्र स्रोत है।[30] ch 75 मे कादर्पिक उपचार के विषय मे जो वर्णन मिलता है वह कामसूत्र मे भी मिलता है। कामसूत्र के III 1 16, 111 4,10,III 433-34,III 5 9, IV4, IV19,V5 11, के अध्यायो मे हानि पहुचाने वाली स्त्रियो के चरित्र के विषय मे वर्णन किया गया है। अच्छी स्त्रियो के विषय मे LXXVII 4-6, 12, 12 के अध्यायो मे तथा कामसूत्र के III 3 24 ff, IV1 मे कुछ भिन्न वर्णन मिलता है। कामसूत्र मे विवाह के सम्बन्ध मे भी वर्णन मिलता है कि विवाह कब किया जाना चाहिए।

दर्शनशास्त्र - ब्रहत्सहिता I 6-7 मे क्रमबद्ध ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ मे विभिन्न नियमो का उल्लेख है। I 6 मे यह बताया गया है कि मूल रूप से पहले पूरे ब्रह्माण्ड मे अन्धकार था तथा मौलिक अवस्था के जल से सुनहरा अडा निकला जिसके दो भाग थे, पृथ्वी तथा स्वर्ग, और इससे रचयिता निकला सूर्य एव चन्द्रमा जिसकी ऑखे थी और वे भी यह मनु द्वारा I 5-13 मे दिय गये विवरण का सुधरा रूप है जो कि भाष्यकारो द्वारा उदघृत किया गया है। I 7 मे अनेक दार्शनिक सिद्धान्तो का सकेत दिया गया है।

धर्म - सावित्र शास्त्र जिसमे देवताओ की मूर्तियो की प्रतिस्थापना की प्रक्रिया के बारे मे बताया गया है, का सन्दर्भ LIX 22 मे मिलता है। हमे इस तथ्य का कोई ज्ञान नही है कि इस कार्य को कब और किसके द्वारा किया गया पर यह वराहमिहिर से पुराना है जो कि इसे विशेषज्ञ मानते थे।

30- See also H C Chakladar, Socıal lıfe ın ancıent Indıa, Astndy ın vatsyayana, kamasutra, pp 23 24

हस्तविज्ञान - LXVI 1 के अनुसार कि एक ज्योतिष जो कि दूसरो का भूत एव भविष्य उनका शारीरिक रूप देखकर बताने की विद्या पाना चाहता था को सामुद्र का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए था। उत्पल सामुद्र को हस्त विज्ञान के कार्य के रूप मे मानते थे तथा पूरे साढे बीस पद अनुष्टुभ मे इससे सम्बन्धित लिखे है। इस कार्य के लेखक के बारे मे कोई भी जानकारी नही है। इस तथ्य की जानकारी भारत के हस्तशास्त्र के इतिहास पर प्रकाश डालेगी।

दशमलव माप विधि - हमारे लेखक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होने 63 से अधिक विभिन्न माप वृहत्सहिता मे प्रयुक्त किये है, जिसमे कि आर्य सर्वाधिक प्रिय है। इस विषय मे इनसे पहले का कोई भी लेखक इनकी तुलना नही कर सकता। ब्रहत्सहिता के अध्याय CII मे विभिन्न ग्रहो की कुडली की स्थिति के परिणाम को विभिन्न मापको द्वारा दर्शाया है तथा प्रत्येक अवतरण मे हर मापक का वर्णन है। इस अध्याय के अन्तिम अवतरण मे वराहमिहिर दशमलव माप पर प्रचुर मात्रा के किये गये कार्यो का सन्दर्भ देते है पर बताते है कि जा मापक पहले दिये गये अवतरणो मे थे वह साधारणत सभी व्यवहारिक कार्यो के लिये पर्याप्त है, इसलिये इन्होने जो भी मापक सुनने मे अच्छे लगते है, एक साथ एकत्र किये है।

ऊपर किये गये निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न विषयो पर आधारित विस्तृत शास्त्र की उत्पत्ति वराहमिहिर के काल मे हुयी थी। सन्दर्भित कार्यो मे से अधिकतर–विलुप्त हो गये है, जो कि अनमोल है।

कला - भारतीय कला की परम्परा वैविदयपूर्ण तथा अति प्राचीन है। कला अनात्मा पर आत्मा की छाप है। मन के भावो को अधिकतम सौन्दर्य के साथ दृश्य रूप मे प्रकट करना ही कला है। कला एक प्रकार से मनोभाव तथा बाह्यरूप को सयुक्त करने वाला माध्यम है। कला द्वारा मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है। वास्तु की नही।[1] इसका प्रारम्भ सिन्धुघाटी मे लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व से होता है। सिन्धुघाटी से लेकर नन्दवश के उदय के पूर्व 326 ई०पू० तक का समय भारतीय कला का आदि युग था। इसके उपरान्त मौर्यकला से लेकर हर्ष के समय तक इस कला का मध्ययुग था। इस युग के दो भाग है। पहले भाग के अन्तर्गत मौर्य, शुग, कण्व और सातवाहन युग की कलाकृतियॉ है तथा दूसरे भाग मे पहली शती ई० से लेकर सातवी शती ई० तक (कनिष्क से हर्ष तक) की कलाकृतिया है। हर्ष के बाद भारतीय कला की महत्ता का चरमयुग आता है। इसके भी दो भाग है – पूर्वकला, (700 ई० से 900 ई० तक) तथा उत्तरकाल (900 ई० से 1200 ई० तक)। भारतीय कला एक ओर यह निरन्तरता की कहानी है तो दूसरी ओर उसमे नाना कलाओ की हल्की सी झलक होती है।

गुप्त काल मे भवन निर्माण कला अपने उन्नत अवस्था मे पहुच चुकी थी। इस काल मे नागर और द्रविड शैली प्रधान रही।

वास्तु - सस्कृत मे वास्तु का अर्थ वह जगह जहा घर बनाया जाता है, से था।[2] अर्थशास्त्र मे वास्तु के अन्तर्गत स्थल, उद्यान, सेतुबन्ध, तालाब इत्यादि की मान्यता

1- In art man reveals himself and not his object His objects have their place in books of information and science पर्सीनेलिटी – R N Tagore

2- Cf Astadhyauy, VI 3 73 , Agrawala, India as kwon to Panini P 337 Brachmejalesutta (Engl Trausl By Rhyo Davids) p p 16-18 for Astadlayanagrihyasutra 11 7 1, Anara 11 3 19 (a building site), Halayudha V 290 (Vastu in Masculine denotes a house sile and in neuter a house proper), P K Acharaya dictionary of Indian Architecture, p 548

है।[3] वात्स्यायन के अनुसार वास्तुविद्या 64 कलाओ मे एक कला है हालाकि वरामिहिर रहने के लिए बनाये गये घर को ही वास्तु मानते है।

मापन - वराहमिहिर पाच घरो की परिकल्पना के आधार पर समाज के विभिन्न वर्गो के लिए माप निर्धारित करते है।

राजा के पाच घरो की माप इस प्रकार है – चौडाई क्रमश 108, 100, 92, 84 और 76 हस्त (Cutnt) तथा लम्बाई, चौडाई से 1/4 ज्यादा।[4]

सेनापति व अन्य वर्गो के घरो की माप क्रमश 64, 58, 52, 46 तथा 40 के घरो की माप लम्बाई चौडाई से 1/6 भाग ज्यादा होती थी।[5] इसी प्रकार अन्य वर्गो के घरो की माप इस प्रकार मिलती है।

	चौडाई (हस्त मे)					लम्बाई हस्त मे
वर्ग	1	2	3	4	5	क्रमश चौडाई के अनुपात मे
सेनापति	64	58	52	46	40	क्रमश 1/6 ज्यादा
मत्री	60	56	52	48	44	क्रमश 1/8 ज्यादा
युवराज	80	74	68	62	58	क्रमश 1/3 ज्यादा
राजकुमार	40	31	34	31	26	क्रमश 1/2 ज्यादा
सामन्त	48	44	40	36	32	---------

3- Grham Ksetram = aramas = sdabandhas= latakam = adharava vasta
4- Figure in brackets refer to the serial number of verses in ch L11
5- Cf Matrya CCLIV 18-9

राजा एव युवराज के घरो के माप के अन्तर के आधार पर प्रतिप्तियो, वैश्याओ एव कलाकारो के घरो के आकार का निर्धारण होता था। इस वर्ग के घर का अधिकतम आकार 28 हस्त × 28 हस्त 8 अगुन ही होता था।[6] ज्योतिष, पुरोहित एव वैध के पाचो घर क्रमश 40, 36, 32, 28, 24 हस्त चौडे एव चौडाई से 1/6 भाग ज्यादा लम्बे होते थे। कर्मान्ताध्यक्ष के घर की माप युवराज एव मत्री के घर के अन्तर के बराबर होती थी (युवराज मन्त्री विवरम् कर्मान्त–आध्यक्ष–दूतान्तर)। कोषाग्रह रतिभवन एव नृप के घर की माप राजा एव सेनापति के घर क अन्तर के बराबर होती थी। (नृप सेनापति ग्रह के अन्तर मानेन कोष–रति–भवन, 14, अध्यक्ष–अधिक्रतानाम् सवैषा कोष–रति–तुल्यम्, 9)[7] इस वर्ग की उत्तम सरचना 44 हस्त × 60 हस्त 8 अगुल होती थी। वाण की हर्षचरित[8] तथा कादम्बरी[9] मे वास ग्रह का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण मिलता है।

वर्णानुसार पच गृहो की चौडाई इस प्रकार है – 32, 28, 24, 20 एव 16 हस्त। मात्र ब्रह्मणो को पाचो घर बनाने का अधिकार था। क्षत्रिय अन्तिम चार, वैश्य अन्तिम तीन एव शुद्र को अन्तिम दो घर का अधिकार था लम्बाई की माप क्रमश चौडाई से 1/10, 1/8, 1/6 एव 1/4 ज्यादा होती थी। राज्य सरकार के कर्मचारियो के घर उनके वर्ग के अनुसार निर्धारित थे। सकर वर्ग के लोग माता पिता के जाति के अनुसार निर्धारित माप के योग के आधे के बराबर घर बनवा सकते थे। उदाहरणार्थ – पाराशव जाति

6- According to the Matsya- purana(CCLIV21-2), however The houses of fendatory chiefs and amatyas should measure 48,44, 36 and 32 cubets in width, the length exceeding the bradth by ¼ It abo gives somewhat different proporation for the hauses of chmbertain artistes and prostitutes the best structure of the doss measuring 25h J6h (CCLI 23-24)

7- Cf Matsya, CCLIV 30-31

8- VS Agarwala, Harsacarita, A cultural study (Hindi) PP64, 85, 95, 208

9- VS Agarwalas, Kadambari, A study (Hindi) PP M 81

का पहला घर 26 हस्त चौडा हो सकता था।

पशुग्रह तपस्वियो के घर अन्नगृह, शास्त्रागार इत्यादि के लिए कोई स्थायी निर्धारण नहीं था। कहीं कहीं कुछ भवनो की माप मे अपवाद भी मिलते है। रतिभवन की माप राजा तथा उसके सैनिक के घर की माप के अन्तर के बराबर होनी चाहिए। (LII 14)[10]

शाला तथा आलिन्द मापने की विधि - सभी ग्रहो के शाला की माप सभी जातियो के पाचो गृहो की चौडाई मे 70 हस्त जोड कर उसे 35 से भाग देकर निकाली जाती थी।

अलिन्द[11] की माप सभी जातियो के पाचो ग्रहो की चौडाई मे 70 हस्तजोड का उसमे 14 से भाग देकर निकाली जाती थी। चारो वर्गों के पाचो ग्रहो की शालाओ कर निर्धारण क्रमश इस प्रकार था –

(i) 4 हस्त × 17 अगुल

(ii) 4 हस्त × 3 अगुल

(iii) 3 हस्त × 15 अगुल

(iv) 3 हस्त × 13 अगुल

(v) 3 हस्त × 4 अगुल

10- But cf Matsy, CCLIV 28-30, where thelagth of a vaisya's house is said to esceed the width by 1/3 rd

11- In lexicious alinda denoties a room in the outer gateway of a building for which alder words were praghana, cf Panini,III 3 79, Amara 11 2 12 According to some the word 'alinda' irgininated in the gupta period or a little easlie cf Agrawala Haracarita, A study p 204 But utpala takes duda a mean a lettien-covered path beyond the wall of a hall andfcing thecourtuyard
अलिन्दशब्देन्न शालाभित्तेर्ब्राह्म या गमनिका जालकावृताङ्गणसम्मुखा क्रियते सा ज्ञेयेति

चारो वर्गो के पाचो गृहो के आलिन्द का निर्धारण इस प्रकार होता था –

(1) 3 हस्त × 19 अगुल

(11) 3 हस्त × 8 अगुल

(111) 2 हस्त × 20 अगुल

(1v) 2 हस्त × 18 अगुल

(v) 2 हस्त × 3 अगुल[12]

वीशिका - वीशिका घर के बाहर बनी होती थी। इसकी चौडाई शाला के 1/3 भाग होती थी (शाला त्रिभगतुल्या कर्तव्या वीचिका बहिर–भवनात्)। यही वर्णन विश्वकर्मप्रकाशिका मे भी मिलता है, यह स्पष्ट रूप से ब्रहत्सहिता सेही उर्द्धत किया गया है। (शाला – त्रिभाग–तुल्य च कर्तव्या वीशीका बही)। वीथिका के पूर्व पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर के आकार को क्रमश सोष्णियश, सायाश्रय,[13] सावष्टम्भ तथा सुस्थित कहा जाता था।[14]

भूमि - एक से अधिक मजिल वाले घरो के निचली मजिल की ऊँचाई, चौडाई की 1/16 भाग मे चार हस्त जोडकर होना चाहिए तथा ऊपर की अन्य मजिले क्रमश 1/12 भाग घटती जानी थी।

भित्ति - भित्ति की मोटाई तथा चौडाई की 1/16 भाग के बराबर होनी चाहिए। प्रथम राजसी महल की दीवार की मोटाई 6 हस्त × 18 अगुल होनी चाहिए। शुक्रनीति के

12- हस्तद्वात्रिशादिषु चतुश्चतुस्त्रित्रिकत्रिका शाल ।
सप्तदशत्रितयतियित्रयोदशक ताड्गुलाम्यधिका ।।
त्रित्रिद्विद्विद्विसभा क्षयक्रमान्दड्गुलानि चैतेषाम्।
ब्येका विशतिरष्टौ विशतिरष्टदश त्रितयम्।। LII 18-19

13- Sreyocchraya of Matoya purana (CCLIV 37)

14- cf Visvakarna - Prakasa II 154 -155

अनुसार दीवार की मोटाई कमरे की चौडाई की 1/6 भाग होनी चाहिए (कोष्ठ—विस्तारसष्ठ आम्ब—स्थूल सा, च प्राकृतिता 1 229)

द्वार - राजा, सेनापति तथा अन्य वर्गों के ग्रहो की चौडाई बढती जाती है अगुल मे द्वार की ऊँचाई उसकी चौडाई की आधी होती थी। सामान्यत द्वार दीवार के बीचोबीच होता था तथा यह किसी मुख्य बिन्दु के सम्मुख होता था (LV 10)। किसी तरह के वेध से बचने के लिए एव स्वच्छ वातावरण को ध्यान मे रखते हुए द्वारा का सडक, वृक्ष, कुआ, स्तम्भ मन्दिक इत्यादि के सम्मुख होना वर्जित था।[15] इनसे द्वार की निम्नतम दूरी द्वार की ऊचाई की दुगुनी होनी चाहिए। द्वार न तो स्वत खुलना चाहिए और न ही स्वत बन्द होना चाहिए। निर्धारित नाप से न तो छोटा न ही बडा हो और न ही झुका होना चाहिए। यदि द्वार मे यह कमिया हो तो वह स्वामी तथा अन्य सदस्यो के लिए अशुभ मानी जाती थी।[16] मुख्य द्वार को कई तरह से अलकृत किया जाता था जैसे घडा फल या डाक, पत्तिया आदि को बना कर। मत्स्य पुराण (CCLV 18-19) के अनुसार मुख्य द्वार की प्रतिदिन अक्षत तथा जल से पूजा की जाती थी।

स्तम्भ - स्तम्भ के आधार की चौडाई इसकी ऊँचाई की नौ गुना का 1/80 वा भाग होती थी। आधार के ऊपर की चौडाई क्रमश 1/10 भाग घटती जाती थी।[17] स्तम्भ के नौ भाग होने चाहिए। आधार को 'वहन' और उसके ऊपर के भाग को 'घट' कहा जाता था

15- The malsya purana (CCLV 10-14) lıst of vedhas also ıncludes a peg A house a house of an out caste and refuge Some of these rules appear to have been meant to secure prıvacy and peace The Gobhıla-grhyasutra, IV 7 17 9 Speaks of a back door wıth dısapproved and states that the maın door of a house should not face that of another house and that the door should be such that through ıt the ınmater or valuables of the house are not vısıble to outsıders Naprtyag = dvaram Kurvıta, anu dvaram ca graha dvaram yatha na samlokı syat

16- cf Matsya - purana, CCLV 15-18

17- कृत्वा स्वभवनोच्छ्राय सदा सप्तगुण बुधै । अशीत्यश पृथुत्वे स्यादग्रे नवगुणे सति।।
(Matsya CCLV 1-2)

क्योकि इसका आकर कुम्भ जैसा होता था। आठवे और अन्तिम भाग को क्रमश 'पद्म' के उत्तरोष्ठ कहा जाता था।[18] इनके मध्य के भाग पाच भागो मे विभाजित थे। ये स्तम्भ अधिकतर नक्काशीदार व गढे हुए होते थे। स्तम्भ को दड के आधार पर विभिन्न नामो से पुकारा जाता था। जैसे रूचक, वज्र, द्विवज्रक, प्रलन्क तथा व्रत्त का दड के अनुसार इसका आकार तीन किनारो वाला 16 किनारो, 8 किनारो 32 किनारो वाला तथा गोल होता था (cf Matsya CCLV 2-3)। मत्स्य पुराण के अनुसार इन पाचो महास्तम्भो को कमल, लाताओ, कुम्भो, पत्तो शीशा आदि से अलकृत किया जाता था। (एत पञ्च महास्तम्भ प्रशास्त सर्ववास्तुतषु, पद्यम–बालि–लता–कुम्भ–पत्र दर्पण–रूपिता (CCLV 4)।

स्तम्भ के ऊपर भारतुलाये तिर्यक रूप मे स्थापित की जाती थी। इनके ऊपर तुलादण्ड रखे जाते थे जिन्हे तुलोपतुला कहा जाता था। स्तम्भो के आकर कालानुसार बदलते रहते थे।

चतुष्शालका - गुप्त काल मे घर की सामान्य योजना का कन्द्र आगन होता था जिसके चारो तरफ शाला, एकशाला, द्विशाला, त्रिशाला तथा चतुष्शाला होती थी। पाच तरह के चतुष्शाला भवनो का उल्लेख मिलता है। –

(1) नन्द्यावर्त (LII 32) (3) सर्वतोभर्द (5) वर्धमान

(2) स्वास्तिक (4) रूचक

(1) सर्वतोभद्र - यह मुख्य रूप से राजसी तथा मन्दिरो से सम्बन्धित होता था।[19] सर्वतोभद्रिका के वर्णन से सम्बन्धित दो कुषाण कालीन अभिलेख मथुरा से प्राप्त

---

18 स्तम्भ विभज्य नवधा वहन भागोघटोऽस्य भागोऽस्य।
पद्म तथोत्रो ठ कुर्याद् भागेन भागेन।। LII 29

19- cf Matsya Purana CCLIV 1

हुए है। [20]

(2) **नन्द्यावर्त्त** - नन्द्यावर्त्त मे बडे कक्ष की दीवार से लगी हुई वीथिका होती थी। यह पश्चिम को छोडकर सभी दिशाओ की तरफ जाती थी।[21]

(3) **वर्धमान** - इस भवन मे सामने बरामदा होता था जिसे द्वारालिन्द कहते थे। इसमे दक्षिण दिशा को छोडकर सभी दिशाओ मे द्वार होते थे।[22]

(4) **स्वास्तिक** - इसमे प्रवेश द्वार पूर्व मे होता था। इसमे चारो दिशाओ मे एक –एक बरामदा होता था।

(5) **रूचक**- पूर्व तथा पश्चिम के अन्त दो बरामदे होते थे। उत्तर दिशा को छोडकर सभी दिशाओ मे द्वार होते थे।[23]

त्रिशालका - इसके सम्बन्ध मे निम्न वर्णन मिलते है –

(i) **हिरण्याभ**[24]- यह तीन बडे कक्षो से युक्त होता था परन्तु उत्तर दिशा मे कक्ष नही होता था।

(ii) **सुकक्षेत्र** - इस ग्रह मे पूर्व कक्ष नही होता था।

(iii) **चूली** - इसमे दक्षिण दिशा मे कक्ष नही होता था।

20- El 11 p 203, No XVI, P 209 NO XXXVII In a Mathura Incor of Vikrama 1080, Caturbimba is used in place of Sarrvatobhadrika, cf El, ii P 211, No XXXIX

21- cf Matsya Purana CCLIV 2

22- cf Matsya Purana CCLIV 3 In s Indian works this term was applied to a class of Joinery, phallus and satas, cf Manasara, XVII 84, XXXV 4, LII 4, Kamikagama XXXV 88

23- cf Matsya, CCLIV -4

24- cf Matsya Purana, CCLIV 4, where it is styled 'Dhanyaka'

(iv) **पक्षघ्न** - इसमे पश्चिमी कक्ष नही होता था।

द्विशालका - द्विशालका निम्न नामो से जाना जाती थी –

(1) सिद्धार्थ

(2) यमसूर्य

(3) दण्ड

(4) वात [25]

(5) गृहचुली

(6) काच

इनके कक्ष क्रमशः इन दिशाओ मे होते थे :-

(1) पश्चिम तथा दक्षिण

(2) पश्चिम तथा उत्तर

(3) उत्तर तथा पूर्व

(4) पूर्व तथा दक्षिण

(5) पूर्व तथा पश्चिम

(6) दक्षिण तथा उत्तर

25- Dhana of Matsya CCLIV 11

स्थान - ऐसी भूमि जिसकी मिट्टी मुलायम हो तथा समतल एव सुगन्धित हो, जो अन्दर से खोखली न हो तथा जहा अच्छे पेड पौधे हो भवन निर्माण के लिए उपयुक्त होती है। भवन निर्माण हेतु स्थान मत्री तथा दुष्ट व्यक्तियो के घर के समीप न हो, मन्दिर, चैत्य, पेड शमशान समीप तथा सडके के सामने न हो। घर के पूर्व, दक्षिण पूर्व, दक्षिण, दक्षिण पश्चिम और उत्तरपश्चिम मे पानी न हो। घर के उत्तर और पूर्वोततर मे पानी हा सकता है। तीन तरह के नियमो द्वारा मिट्टी की पहचान की जाती थी –

(1) जमीन के बीचोबीच Cubit व्यास का एक गहरा गढ्ढा खोदकर मिट्टी को फिर से भरने पर यदि गढ्ढा नही भरा तो सबसे खराब जमीन मानी जाती थी और यदि भर गया तो मध्यम और यदि ज्यादा भरा हो तो उत्तम कोटि की भूमि मानी जाति थी।

(2) यदि गढ्ढे मे पानी भरकर उतने समय के लिए छोड दिया जाये जितने मे कि सौ कदम चला जा सके और पानी न घटे जो जमीन उत्तम मानी जाती थी।[26]

(3) यदि एक आधक भरे मिट्टी का वजन 64 पलस हो तो भूमि उपयुक्त होती है।

जाति एव स्थान - जाति के अनुसार चारो वर्गो के गृह क्रमश उत्तर, पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम मे होते थे। चारो किनारो पर पतिच्चुत लोग होते थे। क्योकि ऐसा विश्वास था कि चारो किनारो पिशाचो द्वारा नियन्त्रित होते थे। पूर्वोत्तर कोने से बाये की तरफ से क्रमश करनी, विदारी, राक्षसी, तथा पूतना नियन्त्रक थी। यहा तक कि भूमि की

26- cf ibid 1 62 the Manasara shows a strict attude in the matter According to it the it was filled with water If there remained some water after 24 hours the selected side was considered to be fit for receiving a building cf PK Acharya Dictionary 8 453

विशेषताए भी जाति विशेष के लिए आधार बनती थी। चारो वर्गो के लिए क्रमश उत्तर पूर्व, दक्षिण एव पश्चिम की तरफ झुकी हुई भूमि रग मे क्रमश श्वेत लाल, पीला तथा काला उपयुक्त माना जाता था। यहा तक कि भूमि को चुनने का आधार उसकी सुगन्ध तथा स्वाद भी था क्रमश मक्खन, खत्त, भोजन एव सुरा की महक तथा स्वाद मे क्रमश मीठा, कषाय, खट्टा एव तीखा वर्गो के हिसाब से निर्धारित था। ब्राह्मण किसी भी दिशा मे, क्षत्रिय उत्तर छोडकर किसी भी दिशा मे वैश्य उत्तर और पूर्व छोडकर किसी भी दिशा की तरफ भूमि पर भवन निर्माण कर सकता था।

जबकि स्थान के चुनाव मे कुछ भ्रामक तरीको का भी वर्णन मिलता है, जैसे चारो कोनो पर कच्ची मिट्टी मे दीया जलाकर छोड दिया जाये और फिर जिस दिशा का दीया सबसे देर तक जले वहा उस दिशा से सम्बन्धित जाति के लिए गृह उपयुक्त होता था या वर्गो के रग के अनुसार चार रगो के फूल को मिलाकर रात भर रख दिया जाये, जिस रग का फूल सबसे देर मे मुर्झाये भूमि उसके लिए ही उपयुक्त होती थी।

गृह परीक्षण के पश्चात भूमि की जुताई एव बुवाई होती थी तथा इसका परीक्षण किया जाता था कि भूमि कितनी उपजाऊ है। ब्राह्मण एव गाय की उपस्थिति मे भूमि का शुद्धिकरण किया जाता था। ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त मे भूमि का स्वामी देवी देवताओ को सम्मानित करता था। जाति के अनुसार वह अपना सिर, हरम, जाघ या पैर छूकर निर्माण कार्य के पूर्ण पक्ति खीचता था।

पदविन्यास - वराहमिहिर 81 तथा 64 वर्गो के दो स्थल योजना के विषय मे बताते है जो कि 45 देवताओ के द्वारा नियन्त्रित होते है। जिसमे 32 बाह्य तथा 13 आन्तरिक नियन्त्रक देवता थे। 81 वर्ग के स्थल योजना मे बीच के 9 वर्ग (नवकोष्ठकाधिप) ब्रह्म स्थान होते थे। शेष मे 20 देव एक वर्ग थे जिन्हे 'पदिक' कहते थे। बीस अन्य देवो को

2वर्गो का स्थान प्राप्त था जो द्विपद के नाम से जाने जाते थे तथा चार अन्य को तीन वर्ग का स्थान निर्धारित था, जिन्हे त्रिपद कहा जाता था।

वराहमिहिर व्रत्ताकार, त्रिभुजाकार इत्यादि योजनाओ के बारे मे वर्णन नही करते। उत्पल भरतमुनि के सन्दर्भ वराहमिहिर की इस कमी को पूरा करते है।[27]

वास्तुनर - भवन स्थल वास्तुनर के शरीर का निर्माण करता है। वास्तुनर के अवतरण के बारे मे प्रचलित कहानी के अनुसार एक बार किसी जीव ने स्वर्ग एव पृथ्वी को अपने शरीर से रोका तथा अचानक देवताओ के झुण्ड ने उसे गिरा दिया। शरीर के जिन भागो को देवताओ ने छुआ था वह उसके नियन्त्रक हो गये वास्तुनर पुरूष होता है। अत इसका बिम्ब पुरूषीय होना चाहिए। उसका आकार पूरे स्थल को ढकने योग्य होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त चतुष्शाला भवन मे देवग्रह पूर्वॉन्तर मे, रसोई दक्षिण पूर्व मे **भडारगृह दक्षिण**- पश्चिम मे तथा अन्नागार एव कोषागार पश्चिमोत्तर मे होना चाहिए। विकर्ण के साथ शयन ग्रह निषिद्ध था। उत्पल के अनुसार यदि ग्रह का मुख पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर की तरफ हो तो आगन का प्रवेश क्रमश उत्तर, पूर्व, दक्षिण एव पश्चिम की तरफ होना चाहिए।

वज्रलेप, वज्रतल, वज्रसघात - भवन निर्माण की वस्तुओ मे पक्की ईट, लकडी, पत्थर इत्यादि के अतिरिक्त वराहमिहिर ब्रहत्सहिता के 56वे अध्याय मे चार प्रकार के लेपो का वर्णन मिलता है। दो वज्रलेप वज्रतल एव वज्रसघात वज्रलेप कच्चे तिण्डुक कपित्थक फल (LVI 5-6) रेशम के पेड के फूल शलकी के बीज, धनवन की भूसी तथा

27- Utpala on LII 55-6
अगाचार्येण चतुरस्रे क्षेत्रे वास्तुनर — — — — — पितामहो विनिर्दि टान्त्रय
क्षेत्रेऽप्यय विधिरिति।

बच को पानी के द्रोण मे 1/8 भाग तक उबालकर और अन्तत श्रीवासक, रस, गुग्गुल बल्लातक कुण्डुरूक इत्यादि के साथ मिलकर बताया जाता था। वज्रतल गाय, भैस, बकरी के सीगो गर्दन के बाल भैस एव गाय के चर्म, बिम्ब एव कपिला के फल एव रस (LVI 1) को मिलकार बनाया जाता था। वज्र सघात शीशे की आठ तहो, घटो की धातु की होता है। लौह की एक तरह से बनता था।

स्थपति - अन्त मे शिल्पकारो के विषय मे कहा जा सकता है। परवर्ती कार्यो म शिल्पकारो के विभिन्न वर्गो का उल्लेख मिलता है। समरागण सूत्रधार मे शिल्पकारो के चार वर्गो का वर्णन मिलता है। स्थपति, सूत्रग्राहिन, वर्धकिन और तक्षक। इनकी योग्यता का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से किया गया है जबकि मानसार मे इनकी पौराणिक उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। उनकी उच्च योग्यता के कारण उनका कार्य समाज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था। समाज मे इनका उच्च स्तर था।

मन्दिरकला - मन्दिर कला को प्रासादलक्षणध्याय के नाम से जाना जाता है (Ch LV)।

प्रासाद- प्रासाद शब्दका सर्वप्रचलित प्रयोग मन्दिर के सन्दर्भ मे किया जाता है। इसके प्रसग अमरकोष[28], मत्स्यपुराण इत्यादि मे मिलते है। सुरालय[29], सुरभवन[30] देवालय[31], देवतायतन[32], देवकुला[33], देवग्रह[34], देवागार[35] इत्यादि शब्द प्रसाद को ही इगित करते है। मन्दिर शब्द पहले रहने के लिए बने भवनो के लिए प्रयुक्त होता न कि प्रासाद के अर्थ मे।

28- Chs (CCLXIX - CCLXX)
29- IX 42, LVII 2, XCV 4
30- LXXVII 4
31- LII 118 cf devanam alayah in LV 2
32- LV 1,9,10
33- LII 87, LXVII 49, YY (VR pandits sed) XV 20
34- LII 116
35- LVII 3

प्रासाद का निर्माण सामाजिक व धार्मिक प्रतिष्ठा के साथ–साथ उत्सर्ग तथा मोक्ष के भाव से जुडा होता था। धार्मिक सरचना के लिए ईंट और पत्थर के प्रयोग ने वास्तुविदो मे एक नयी शक्ति का सचार किया।

स्थलनिर्धारण - प्रासाद निर्माण के लिए ऐसे स्थल का चुनाव किया जाता था जहा प्रचुर मात्रा मे जल वृक्ष व उपवन हो। इसलिए जगल, नदी, पहाड और जलप्रपात इत्यादि से घिरे स्थलो को उपयुक्त माना जाता था। नगरो मे जहा मे चीजे उपलब्ध नही थी वहा तालाब खुदवाना एव उपवन इत्यादि के निर्माण से स्थल के प्राकृतिक सौन्दर्यीकरण पर अधिक बल दिया जाता था। इसके पीछे यही मान्यता थी कि देवी देवता ऐसी ही जगहो पर निवास करते है। मनमोहक कमल के फूलो से अच्छादित तालाब जो सूरज की किरणो से अठखेलिया करते नयनाभिराम दृश्यो से युक्त हो, जहा हसो का विचारण उनका कलख पौधे की छाया मे विचरण करने पशु हो, जहा जलतरगो की धुन पर मत्स्य नृत्य का स्नेहिल दृश्य हृदय को मोहित करने वाला ऐसा वातावरण देव निवास के लिए उपयुक्त होता है। भारतीय सस्कृति की ऐसी समृद्धता का उदाहरण कई प्राचीन प्रासादो मे मिलता है। उदाहरणार्थ देवगढ का दशावतार मन्दिर जो बेतवा नदी के किनारे व उत्तर, दक्षिण पश्चिम से पहाडी से घिरा है, भुवनेश्वर के विश्वप्रसिद्ध जगन्नाथपुरी एव कोणार्क का सूर्य मन्दिर जो बडे तालाबो से युक्त है या अजन्ता एलौरा की गुफाए कार्ले एव कन्हेरो के चैत्य बिहार सभी प्रकृति की अनुपम सौन्दर्य मे स्थित थे।

स्थल योजना - नौ रेखऐ आर–पार, नौ उर्ध्वाकार एव कोने पर विकर्ण द्वारा प्रासाद स्थल को 64 भागो मे बाटा जाता था। ब्रह्मा बीच के 4 खण्डो को ग्रहण करते है जिन्हे ब्रह्म स्थान कहा जाता है। ब्रह्मा के चारो तरफ के चार वर्ण एव बाहरी भागो के दोनो

किनारो के स्थल मे $1\frac{1}{2}$ खण्ड अन्य देवो के लिए निर्धारित होते थे। शेष बीस देवो को दो–दो वर्ग नियम होते है। जिन्हे द्विपद कहा जाता था।[36] इन समस्त देवो की भवन निर्माणकाल मे विभिन्न चरणो मे पूजा की जाती थी। जिसका सन्दर्भ मत्स्य पुराण मे मिलता है। यह स्थल योजना वस्तुत वास्तुविदो द्वारा ही प्रयोग की जाती थी न कि ज्योतिषियो द्वारा प्रवर्तित की गयी। समकालीन प्रासाद वास्तुकला इसका उदाहरण है।

मापन - मूलत देव स्थल के विभिन्न भागो का विस्तार आवासीय भवन के विस्तार से भिन्न था। जैसे कि आवासीय भवन की चौडाई एक ऊँचाई बराबर होनी चाहिए जबकि मन्दिर की ऊँचाई, चौडाई से दो गुनी एव समतल भाग या 'कटि' जिस पर प्रासाद बनाया जाये ऊँचाई का तिहाई होना चाहिए।[37] गर्भग्रह पूरी चौडाई का आधा होना चाहिए। देवगढ के प्रासाद की सरचना लगभग इसी सिद्धान्त पर आधारित है जो कि 18'6" × 18'6" वर्ग मे है। इसकी ऊँचाई 40 फीट से कम नही है।

द्वारपथ की चौडाई गर्भगृह की चौडाई की 1/4 होती थी आवासीय द्वारो की ऊँचाई (चौडाई की तिगुनी) के विपरीत प्रासादो के द्वार की ऊँचाई चौडाई की दुगुनी होती थी।

अजन्ता की 1,4 एव 5 न० की गुफाओ मे द्वारपथ जो कि द्वार की चौडाई के दूने हे से पता चलता है कि कुछ हद तक इन आयामो को अपनाया गया है। देवगढ कके

36- अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगस्तिर्यक।।
ब्रह्म चतुष्पदोऽस्मिनर्धपदा ब्रह्मकोणस्था ।।
अष्टौ च बहिष्कोणेष्वर्धपदास्तदुमयस्थिता सार्धा ।
उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विशतिस्ते हि।।
चतु षश्टिपद कार्य देवतायतन सदा। [LII 55-6, LV-10]

37- यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणातत्समुन्नति ।
उच्छ्रायाद् यस्जतृतीयाशस्तेन तुल्यकटि स्म्रता।। [LV 11]

प्रसाद मे द्वारपथ की माप 6'11" × 3'4$\frac{1}{2}$" है जो लगभग इस सिद्धान्त का ही अनुसरण है।

द्वार किसी प्रमुख बिन्दु के सामने दीवार के मध्य मे होना चाहिए। द्वार के बारे मे समस्त सावधानिया रखनी चाहिए जो कि आवासीय द्वार के लिए बताई जा चुकी थी।

अलकरण - गुप्तकाल के प्रासादो मे द्वारपथो का बडा सूक्ष्म अलकरण मिलता है। हमे सज्जा के कई प्रकार मिलते है। द्वार के किनारे का 3, 5, 7 या 9 की उर्ध्वाकार सरचना से समाविष्ट होना या प्रतिहार की प्रतिकृति दोनो तरफ बना होना। हस, जीवक, करवाक, कारन्दव, श्रीवृक्ष, स्वास्तिक, शुभ–घट, प्रेमशील युगल तथा पक्षियो आदि की सरचना से सजाया जाता था। गुप्तकाल के मन्दिरो मे गगा जमुना नदियो एव साथ मे मकर की प्रातकृति भी मिलती है।

प्रासाद के प्रकार - वराहिमिहिर 20 तरह के प्रासादो का उल्लेख करते है–

(1) मेरू (2) मन्दर (3) कैलाश

(4) विमानचन्द (5) नन्दन (6) समुद्रग

(7) पद्म (8) गरूण (9) नन्दीवर्धन

(10) कुजर (11) गुहराज (12) वृष

(13) हस (14) सर्वतोभद्र (15) घट

(16) सिह (17) वृत्त (18) चतुष्कोण

(19) षोडशाश्री (20) अष्टाश्री (BS, LV 17-9)

मेरू का षट्भुज आकार मे सबसे बडे प्रासाद के रूप मे वर्णन मिलता है। मेरू 12 मजिल का, रग बिरगी खिडकियो वाला व चार प्रवेश द्वार वाला 22 हस्त चौडा प्रासाद होता है। मेरू प्रासाद का सन्दर्भ भोज के समराण सूत्रधार मे भी मिलता है, जिसके अनुसार इसकी चौडाई 33 से 50 हस्त के बीच होती है। और यह प्रासादो का अधिपति प्रासाद कहा जाता है। इसके सिर्फ क्षत्रिय ही बना सकते है। कलचुरी राजवश के शासक यशकर्ण ने काशी मे करणमेरू नामक प्रासाद निर्मित करवाया, जिसका वर्णन इस प्रकार है।

कनकशिखरवेल्लद्वैजयन्ती समीरग्लपितगगनखेलत्खेचरी चक्रखेद ।

किमपरमिह काश्या यस्यदुग्धाब्धिबीचीवलयवहलकीर्त्ते कीर्त्तन कर्ण्णमेरू।।

EL XXII P 212, CII, IV pp 293, 303-304

मन्दर छ मुखा 30 हस्त चौडा एव दस मजिल का मन्दिर होता है। (त्रिशाधस्त आयामोदशभूमो मन्दर शिखर युक्त LV21)

कैलाश षट्भुज आकार मे 28 हस्त चौडा एव 8 मजिल का मदिर होता है (कैलाशो= पि शिखरवान अष्टाविशो = षटभूमश = च)[38]

विमानचन्द एक खास तरह का छ दिशाओ का 21 हस्त चौडा मन्दिर होता है जिसमे जालीदार खिडकिया होती है। कश्यप इस मदिर को 8 मजिला मानते है।

षट्भुज मन्दिरो मे अन्तिम नाम नन्दन प्रासाद का आता है जो 32 हस्त चौडा छ

38- cf Kasylpacited by utpala -
अष्टभौमश्च कैलासो हस्ताष्टाविशति स्मृत ।
22- षडश्रि शिखरोपेत प्रासादस्तु तृतीयक ।।

मजिल का तथा 16 गुम्बदो वाला प्रासाद है।

समुद्ग यह आकार मे गोल तथा हरे चने के तरह होता था। यह प्रासाद एक मजिल और श्रग वाला तथा आठ हस्त चौडा होता था। श्रग शिखर के सामन ही होता था।

पद्म प्रासाद का आकर आठ कमल के पुष्प के समूह के समान था तथा शेष समुद्रग के समान ही था (LV23 cf utpala) गरूड प्रासाद आने नाम के अनुसार गरूड पक्षी के समान ही था। यह 24 हस्त चौडा होता था तथा सात मजिल का और 20 आमलक का होता था यह मदिर आयातकार होता था। नन्दिवर्धन का आकार गरूड प्रासाद के समान था। परन्तु इसमे गरूड प्रासाद के समान पख तथा पूछ नही थी यह 24 हस्त चौडा होता था तथा सात मजिल का और 20 आमलक का होता था। कुजर प्रासाद का आकार हाथी के पीछे के आकार क समान होता था यह तल पर चारो तरफ 16 हस्त का होता था। यह प्रासाद एक मजिल का होता था तथा छत तीन चन्द्रशाला से युक्त होती थी।

गुहराज प्रासाद का आकर गुहा के समान होता था यह 16 हस्त चौडा होता था तथा छत तीन चन्द्रशाला से युक्त होती थी।[39] वृष गोलाकार प्रासाद था तथा 12 हस्त चौडा और यह मात्र एक मंजिल का होता था (वृष, एकभूमि, श्रङ्ग द्वादशहस्त समन्ततो वृन्त LV-26)

हस प्रासाद राजहस के आकार का होता था। यह 16 हस्त चौडा तथा एक मजिल का होता था।

39- कुञ्जर इति गजपृष्ठ षोडशहस्त समन्ततो मूलात्।
गुहराज षौडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ।। [LV25]

घट कुम्भ के आकर का प्रासाद था यह 8 हस्त चौडा तथा एक मजिल का था। सर्वतोभद्र 26 हस्त चौडा तथा चार प्रवेश द्वार वाला था इसमे 5 मजिल थी।[40]

सिह, यह एक मजिल का प्रासाद था तथा 8 हस्त चौडा होता था। यह प्रासाद सिह के चित्रो से अलकृत था।

वृत्त, चतुष्कोण षोडशाश्री तथा अष्टाश्री प्रासाद का आकार उनके नाम के अनुसार ही था। वृत वृत्ताकार, चतुष्टकोण वर्गाकार, षोडशास्त्री, 16 दिशाओ वाला और अष्टशास्त्री आठ भुजाओ वाले प्रासादो को कहते है। ये सभी प्रासाद अन्दर से अन्धकारमय होते है। भूमरा का शिवमन्दिर चतुष्कोणीय है। उडीसा के रामगढ मे मुण्डेश्वरी मन्दिर अष्टकोणीय मन्दिर का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

40- द्वारैर्युत चतुर्मिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्र ।
बहुरूचिरचन्द्रशाल षड्विश पञ्मामश्च ।। [LV27]

शिल्प, संगीत तथा चित्रकला

शिल्प कला - यहा वनसप्रशाध्याय (Ch LVIII) का वर्णन करना आवश्यक है, जिसमे प्रतिमा बनाने के लिए लकडियो की आवश्यकता का उल्लेख है। शमशान भूमि पर उगे वृक्ष, सडक के किनारे प्रसाद के समीप उधान एव तपोवन मे, चैत्य वृक्ष, नदियो के सगम पर उगे वृक्ष, सावधानपूर्वक पोषित, वृक्ष झुके हुए किसी वृक्ष के अत्यधिक समीप वृक्ष, किसी भी तरह से क्षति पहुँचाऐ गये वृक्षो को तक्षणमाला या मूर्तिकला के लिए उपयुक्त माना गया। देवदारू, चन्दन, शमी, मधुक, वृक्ष ब्राह्मणो के लिए उपयुक्त बताये गये है। क्षत्रिय को अरिष्ट, अश्वथ, खदिर और बिल्व वृक्ष की मूर्तियो को अधिष्ठित करने का अधिकार था। वैश्यो को जीवक, खदिर, सिन्धुक और स्यन्दन तथा शूद्रो को तिन्दुक, केसर, सर्ज, अर्जुन आम्र वृक्षो की मूर्तियो अधिष्ठित कराने का अधिकार था। चुने हुए वृक्षो को काटने से पहले कुछ कर्मकाण्डो को सम्पन्न किया जाता था। वृक्ष के तनो को पहले कई भागो मे बाटा जाता था, जिससे कि किसी मूर्ति का उर्ध्वस्थ एव निम्नस्थ वृक्ष के सदृश्य हो।[41]इसकी अगली रात्रि को शिल्पी वृक्ष पर निवास करने वाली आत्माओ (पिशाच, नाग, असुर गज, विनायक इत्यादि) की अराधना करता था तथा मन्त्रोचार से उनका निवास बदलवाता था। प्रात काल जल का छिडकाव किया जाता था तथा मक्खन से साफ की गई तथा मधु लगायी गई कुल्हाडी से वृक्ष को काटा जाता था।

वर्गीकरण - वराहमिहिर मूर्ति एव लिङ्ग को प्रयुक्त वस्तुओ के आधार पर सात भागो मे बाटते है –

41- लिग वा प्रतिमा वा द्रुभवत् स्थाप्या यथादिश यस्मात्
तस्माच्चिहनयितव्या दिशो द्रुमस्योर्ध्वमथवाडध ।। [LVIII 7]

(1) दारूमयी (2) मृण्मयी (3) मणिमयी

(4) स्वर्णी (5) रजतमयी (6) ताम्रमयी

(7) शैली [42]

कुछ परिवर्तन के साथ यह वर्गीकरण मत्स्य पुराण शुक्र नीतिसार और समरागण सुराध्याय मे भी मिलता है।

प्राचीन काल मे अलग–अलग देवताओ के लिए अलग–अलग सामग्रियो का प्रयोग उयुक्त समझा जाता था। जैसे, ताम्र स्फटिक, चन्दनख, शख या लौह, स्वर्ण, लौह, नाग और कास्य क्रमश सूर्य, चन्द्र, मगल, बुध, ब्रहस्पति, शुक्र, शनि राहु और केतु के लिए निर्धारित थे।

प्रतिमाभित्ति - प्रत्येक देवता की मूर्ति हेतु अनुपात निर्धारित था। वराहमिहिर अनुपातो के लिए अगुल का प्रयाग करते थे। वराहमिहिर एक 108 अगुल ऊँची प्रतिमा का वर्णन करते हुए बताते है कि प्रतिमा के मुख की लम्बाई अैर चौडाई पूरी प्रतिमा की 12 अगुल होनी चाहिए। उत्पल इसकी व्याख्या करते हुए कहते है कि पूरी लकडी या प्रस्तर को 12 प्रमुख खण्डो एव पुन हर खण्ड को 9 भागो मे विभाजित करने पर 108 अगुल या ईकाईयो से प्रतिमा प्रयुक्त होती है। उत्पल अगुल से सम्बन्धित मात्र अगुल की ईकाई भी बताते है, जो शिल्पी या धनी भक्त जो प्रतिमा निर्माण करवा रहा हो की मध्यमा के मध्य भाग के बराबर होता है।

42- आयु श्रीबलजयदा दारूमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा।
लोकहिताय मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति।।
रजतमया कीर्तिकरी प्रजाविव दि करोति ताम्रमया।
भलाभ तु महान्त शैली प्रतिमाऽथवा लिगम् [LIX 4-5]

राम और बालि की 120 अंगुल की प्रतिमाएं अपवाद है। प्रतिमा को उनके अनुपात के आधार पर उच्चतम, मध्यम एवं निम्नतम (क्रमशः 108, 96 और 84 अंगुल) वर्गीकृत किया जाता है। ये वैखानसागम, करनागम इत्यादि में वर्णित नवतल, अष्टतल एवं सप्तलं के विचार से सम्बन्धित थे।

हस्त किसी मूर्ति की ऊँचाई मापने का उच्च स्तर की मापन इकाई थी। वराहमिहिर के अनुसार हस्त की प्रतिमा शुभ, दो हस्त की धन प्रदान करने वाली एवं 3 या 4 हस्त की प्रतिमा कल्याण एवं सम्पन्नता प्रभाव करने वाली होती है।

प्रासाद में प्रतिष्ठापित होने वाली प्रतिमा प्रासाद द्वार की 1/8 होनी चाहिए, जिसमें 1/3 भाग पाद स्तम्भ एवं बाकी 2/3 भाग की प्रतिमा होनी चाहिए।

प्रतिमा को पूर्णतः सुसज्जित करने के प्रावधान का वर्णन करते हुए वराहमिहिर कहते है कि प्रतिमा को उसी तरह के आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत किया जाना चाहिए। जिस भूभाग से वह प्रतिमा सम्बन्धित हो। प्रतिमा अपने आप में पूर्ण हो अन्यथा यह अनिष्ट की द्योतकक होती है। उदाहरणार्थ यदि कोई प्रतिमा दाहिने या बाये और झुकी हो ता वह व्यक्ति की जिन्दगी या पत्नी के लिए घातक हो सकती थी।

तालिका :-

अवयव	माप (अंगुल में)
– मुख (लम्बाई एवं चौड़ाई)	12 या 14 अंगुल
– नासिका, मस्तक (उर्ध्वाकार)	प्रत्येक 4
चिबुक, गला	

–	दोनो हनु (Jaws) एव चिबुक (chin)	2
–	मस्तक (क्षैतिज)	8
–	कनपटी (मस्तक से नीचे की तरफ)	2
–	कर्ण (चौडाई)	4
–	आखो एव कर्ण के बीच की दूरी	$4\frac{1}{2}$
–	निचले ओष्ठ की चौडाई	1
–	ऊपर के औष्ठ की चौडाई	1
–	ऊपर के ओष्ठ पर पडने वाला गढ्ढा (चौ०)	$\frac{1}{2}$
–	मुख (लम्बाई)	4
–	खुले मुह की चौडाई	3
–	नासापुट	2
–	नासिका की ऊँचाई नासापुट से	2
–	दोनो आखो की पुतलियो के बीच की दूरी	4
–	आखो के गढ्ढो की लम्बाई	2

सगीत एवं चित्रकला - वराहमिहिर को स्वर एव वाद्य[43] सगीत के विषय मे जानकारी थी। वे सगीत से सम्बन्धित व्यक्तियो का उल्लेख करते है। गायन के सगत के लिए

43- (Vadya Bj XVIII 1, Vadıta, XXXIII 23, Vadıtra, XLIII 16, LXXXV 22)

वीणा, बासुरी, इत्यादि वाह्य यन्त्रो का प्रयोग किया जाता था। गायन एव यन्त्रो से उत्पन्न ध्वनियो की तुलना करायी जाती है। सगीत धार्मिक उत्सव मे प्रमुख स्थान रखता था।

चित्रकला को चित्रकर्म (LVII 14) के रूप मे जाना जाता था तथा इसको बनाने वाले को चित्रकार (V 74, IX30) चित्राज्ञ (X 10) तथा आलेख्याज्ञ (XVI 17)। कपडे को चित्रकला की सामग्रियो मे बताया है (YY, VI, 10)। चित्रकला के लिए सुगन्धित रगो का प्रयोग होता था (XLVII 27)। चित्र बनाने के लिए जिन वस्तुओ की आवश्यकता होती थी, उनमे विभिन्न प्रकार के रग तथा अनेक प्रकार की कूचियॉ प्रमुख थी। गेरू, कुकुम, पीला, नीला, काला सफेद तथा हरा रग मुख्यत प्रयुक्त होते थे। ये रग स्थानीय खनिजो से तैयार किये जाते थे। कूचियो को वर्तिका तथा तूलिका कहा जाता था। कभी–कभी खडिया तथा गेरू से भी खाका चित्र बनाया जाता था। रग तथा कूचियॉ को जहा रखते थे उसे प्रतोलिका, वर्णिकाकरड एव वर्ण मजूषा कहा जाता था।

इस प्रकार उपर्युक्त सक्षिप्त सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय स्थापत्य कला का एक अत्यन्त सुदीर्घ इतिहास है। गुप्तकाल अद्वितीय क्रियाशीलता का काल था। अनेक साक्ष्यो तथा ज्योतिषीय ग्रन्थो से भारतीय कला का चूडान्त निदर्शन मिलता है। इसका प्रभाव अधिकाश देशो की कला मे भी दृष्टिगोचर होता है।

छन्द

वराहिमिहिर पद बनाने मे निपुण थे उन्होने वृहत्सहिता मे 63 से कम छन्दो का प्रयोग नही किया है। आर्या छन्द उनका सबसे प्रिय था। जिन छन्दो को उन्होने प्रयुक्त किया है वह निम्न है तथा उन पदो की सख्या जो मिलती है वह उनके आगे दी हुई है।

मुखचपला	जघनचपला	शार्दूलविक्रीडत
श्रगधरा	सुवदना	सुव्रता
शिखरिणी	मन्दाक्रान्ता	वृषमचरित
उपेन्द्रवज्रा	उपजाति	प्रसम
मालती अपर्वकृत	विलम्बतगति	सुपष्पताग्र
इन्द्रवश	स्वागता	द्रुतपद
रूचिर	प्रहरष्णीय	दोयक
मालिनी	भ्रमराविलासित	मन्तमयूर
मणिगुणनिकार	हरिणलुप्त	ललितपद
शालिनी	रतोद्वत	विलासिनी
बसन्ततिलिका	इन्द्रवज्रा	अनवसिता
लक्ष्मी	प्रमिताक्षरा	स्थिर
तोटक	वशपत्रपतित	ललित
भुजङ्गप्रचात	पुटा	वैश्वदेवी

उर्मिमाला	वितान	भुजङ्गविज्रम्भित
उद्गता	गीतयात्रा	उपगीति
आर्या	नरकुटक	विलास
आर्यागीति	पथयात्रा	वक्त्र
श्लोक	अनुष्टुप	वैतालिय
औपचन्दासिक	वृष्टिप्रयात–दण्डक	वरणकदण्डक
समुद्रदण्डक	विपुला आर्या	

अन्त मे कहा जा सकता है कि वराहमिहिर ने छन्दो पर प्रचुर कार्य किया है।

अध्याय 7

ज्योतिष ग्रन्थों में वर्णित तत्कालीन दैनिक जीवन

7– दैनिक जीवन में ज्योतिष

बृहत्सहिता मे प्राकृतिक ज्योतिष शास्त्र पर विस्तृत वर्णन किया गया। प्राचीन काल मे लोगो को ज्योतिष शास्त्र पर अत्यधिक विश्वास था। यहॉ पर हम इस विषय पर सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते है।

वैदिक सभ्यता 'शकुन' 'भविष्यवाणी' तथा भविष्य बताने पर विश्वास रखती थी। 'छान्दोग्य उपनिषद' (VII 1 24) के अनुसार 'दैव तथा 'नक्षत्र विद्या' का अर्थ प्राकृतिक व्यवधान तथा ज्योतिष से सम्बन्धित माना गया है। नारद ने भी विज्ञानो की सूची मे इसे सम्मिलित किया है। पाणिनि ने भी शरीरिक चिन्हो से भविष्य कथन तथा भविष्य वक्ता द्वारा भाग्य बताने पर लोगो के विश्वास का सन्दर्भ दिया है। उत्पल की 'ऋग्याणदिगण' मे सामवातसार, मुहुर्त तथा निमित्त आदि अध्ययन के विषय मे विवरण मिलता है।

प्राचीन भारत के सिनकोनिन राज्य मे सामवातसार–ज्योतिष के कार्यालय सामवातसार,[1] सामवतसरिका,[2] सामवतसार पाथिन,[3] देवाकन,[4] देवविद,[5] देवचिन्तक[6] आदि विभिन्न नामो से विख्यात थे। वराहमिहिर ने ज्योतिष के कारणो का विस्तृत वर्णन किया है वे एक ऐसे व्यक्तित्व है जिन्होने भारतीय ज्योतिष को व्यक्तिगत फलादेश मात्र तक सीमित न रखकर मानव जीवन के सभी पहलुओ से बडी सफलता व कुशलता से वर्णन किया है।

उन्होने राज्य तथा समाज मे सामवतसार' की महत्वता तथा योग्यता का वर्णन

किया है। उनके अनुसार राजा को विद्वान सामवतसार का सम्मान करना चाहिये तथा उसकी उचित सुरक्षा करनी चाहिये तथा चार अन्य ज्योतिषी को उसकी सहायता के लिये नियुक्त करना चाहिये। वराहमिहिर के अनुसार–यदि राजा विद्वान ज्योतिष का सम्मान नही करता है, तो वह विंनाश की ओर अग्रसर होता है। वह आगे कहते है कि न तो माता–पिता न सम्बन्धी मित्र राजा तथा उसके भ्रत्यो की कुशलता के लिये इतने उत्सुक होते है जितना कि एक विश्वसनीय ज्योतिष। उनके अनुसार जहा पर सामवतसरिका नही है, उस देश मे समृद्धि तथा प्रसिद्धि नही रहती है।[7] गौतम धर्मशास्त्र (XI 15 16) विष्णु धर्मशास्त्र (III 75) याज्ञवल्क्व स्मृति (I 307, 333,III172 2) विष्णुधर्मोन्तर (III 4 5 16) तथा कामन्दक्य नीतिशास्त्र (IV33) राजा को ज्योतिष पर निर्भर रहने की विनती करती है।[8] कौटिल्य जो कि ज्योतिष पर बहुत ज्यादा विश्वास नही रखते थे उन्होने भी कर्तान्तिक, नैभित्तिक तथा मुहुर्तिका का शाही अधिकारियो की सूची मे उल्लेख किया है। जैन साहित्य थानाग सामब्याग तथा उत्तराध्यायन सूत्र मे भी पापकर्मो को सूचित किया है तथा उन्हे निषिद्ध माना है।[9] मनु (VI 50) ने भी कहा है कि ब्राह्मणो को किसी भी स्थिति मे निमिन्त, नक्षत्र तथा अगविद्या धर्मशास्त्र का सम्पादन नही करना चाहिये। लेकिन कठोर विरोध के बावजूद भी इन कलाओ की सामान्य लोक मे अत्यधिक प्रसिद्धि थी। सासरिक जीवन पर ज्योतिषीय तथ्यो पर बढते हुये प्रभाव ने ब्राह्मण लेखको के विचारो मे परिवर्तन किया जिसका प्रभाव राजा का ज्योतिषो पर विश्वास के रूप मे दिखायी पडा।

वराहमिहिर ने 'सामवातसार' को उच्च आदर्श का स्थान दिया है। उनके अनुसार ज्योतिष की तीन शाखाओ गणित, कुडली, प्राकृतिक ज्योतिष तथा आवश्यक बौद्धिक योग्यता मे निपुण होने के साथ वे शारीरिक आर्कषण से युक्त समझे जाते

7- II 22, 11
8- cf Mahabharata II 5 42
9- Angavijja, Introduction by Dr Moti Chandra, p 35

थे। ऐसा विश्वास था कि शारीरिक अवस्था किसी के गुण दोष का प्रथम मापदण्ड थी। सामवात्सार बनने के इच्छुक व्यक्ति को कुशाग्र बुद्धि तथा विनम्र होना चाहिये था। इस प्रकार "यह सम्भव है कि एक व्यक्ति हवा के सहारे समुद्ध को पारकर दूसरे किनारे पर पहुच जाये किन्तु असाधु व्यक्ति मानसिक रूप से भी उस महान सागर के अन्त तक नही पहुँच सकता जिसे काल पुरूष कहा जाता था" यही ज्योतिष है।[10] लेकिन ज्योतिष जो कि अनुचित अभ्यास का आश्रय जैसे जादू टोना तथा देवताओ पर अधिकार करके भविष्यवाणी करते थे, जो स्वय के भौतिक लाभ के लिये यह कार्य करते थे। वराहमिहिर ने इस प्रकार के लोगो को 'नक्षत्र–दूषक' कहा है तथा उनकी भर्त्सना की है। (cf II 1, 2, 17) वराहमिहिर ने अपने समय की ज्योतिषीय विश्वासो की अत्यधिक विस्तृत सीमा वर्णित की है। उन्होने केवल सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह तारा मडल, शशिचन्द्र सम्बन्धी चिन्हो की भविष्यवाणी का ही नही अपितु अगो की गति की व्याख्या शारीरिक चिन्ह असाधारण मनुष्य के चिन्ह तथा शकुनो आदि का भी वर्णन किया है। अब हम इन सबको सक्षिप्त वर्णन करेगे।

सूर्य- सूर्य की स्वाभाविक गति के अच्छे परिणाम होते है लेकिन उसकी असमान्य गति सकट का कारण समझी जाती थी (III 4)। यह मान्यता थी सूर्य मकर तथा कर्क राशि मे जाने के पूर्व अपनी गति की पुनरावृत्ति करता है तो वह दक्षिण पश्चिम के लिये उत्तर तथा पूर्व की अपेक्षा विनाशकारी होता है। दूसरी तरफ सूर्य के लिए, अस्त होते समय दोनो राशियो को पार करने के सम्बन्ध मे यह विश्वास था वह फसलो की समृद्धि और सफलता की उन्नति करेगा। (III 5)। ऐसा विश्वास था कि non eclipse days[11] एक ग्रह जिसे त्वाष्ट्र Tvastr कहते थे, सौर नक्षत्र मडल को अन्धकारयुक्त करती है, जिसका परिणाम सात राजओ तथा आयुध अग्नि तथा दुर्भिक्ष

10- II 4 fro exalations of the atrology Cf II, 3, 5, 7, 9, 12, 13, 14, 21

11- I C the day then the 8th and 14th of each for night of a lunar month and the fill and how moon days

द्वारा उनकी प्रजा का विनाश होता था (III 6)[12]। धूमकेतु जो कि 'तामसफिलकस' के नाम से जाने जाते थे तथा राहु के पुत्र समझे जाते थे, जब सूर्य के गोले मे दिखाया देते थे तो मान्यता थी कि इनका बुरा परिणाम जैसे दुर्भिक्ष चोरी, विदेशी आक्रमण, राजा की मृत्यु, विभिन्न महामारियो का फैलना माना जाता था, जिसको कि धूमकेतु के आकार स्थिति तथा रग के निरीक्षण द्वारा पहले से बताया जा सकता था। विभिन्न शुभ और अशुभ परिणाम सूर्य की अवस्था तथा रग से, इन्द्रधनुष से, बादलो से घिरे हुये आभा मडल से, धूमकेतु की अवस्था तथा स्थिति से पुर्वानुमानित किये जाते थे।

चन्द्रमा - चन्द्रमा दक्षिण के तारामडल ज्येष्ठ, मूल, दो आषाढ विशाखा तथा अनुराधा को पार करता हुआ अपशकुन समझा जाता था तथा अग्नि से भय, जगलो, जलचरो तथा बीजो के विनाश का कारण समझा जाता था। जबकि विशाखा तथा माघ के मध्य द्वारा पार करता हुआ शुभ समझा जाता था। चन्द्रमा के दस असामान्य आकार जिन्हे नौसामास्थान लागल, दसतलागल, साम, दड, कार्मुक युग पर्सवास्यिन, अवार्जित तथा कुड कहते थे, इनके अच्छे और बुरे परिणामो का वर्णन किया गया है (IV8-15)। चन्द्रमा की विभिन्न आकृति, आकार तथा रग के अपने प्रभाव का भी वर्णन है। (IV16-20, 24-32)। यह माना जाता था यदि चन्द्रमा ग्रहण के समय किसी उल्कापात द्वारा, काटा जाये तो उसकी छाया राजा की मृत्यु का कारण है, उस समय जहाँ चन्द्रमा स्थित है।

ग्रहण- यद्यपि चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण का कारण चन्द्रमा का क्रमश पृथ्वी और सूर्य के बीच मे प्रवेश करना था (V8 Also cf V4-7,9-13) परन्तु साधारणतया यह विश्वास था इसका कारण दैत्य राहु था जो कि कश्यप ऋषि तथा सिहिका का पुत्र

12- cf parasara cited by utpala

था। यह मान्यता था कि विष्णु द्वारा, दैत्य तथा देवो के मध्य अमृत के लिये युद्ध मे उसका सिर काट दिया था, वह एक गृह बन गया था (VI)। ऐसा विश्वास था वह भी चन्द्रमा तथा सूर्य के समान था तथा ब्रह्म के वरदान के कारण स्थायी होने पर भी दिखायी वही पडता था (V2)[13]। कुछ लोगो के अनुसार राहु की केवल सिर तथा पूछ देखी जा सकती है। अन्य लोगो के विचारो के अनुसार वह सर्प की आकृति मे होता था। चन्द्रग्रहण समय की निश्चित गणना के बाद होता था तथा प्राचीन कालीन लेखको ने सकट के रूप मे इसके प्रभाव को स्वीकार किया है। छ (six) महीने के समय, तथा ग्रहण का घटित होना, ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्रकुबेर, वरूण, अग्नि तथा यम की उतरते हुये क्रम मे अध्यक्षता की मान्यता थी। ग्रहण का होना विभिन्न अच्छे तथा बुरे परिणामो का शकुन बताने की मान्यता थी। यह मान्यता थी कि सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण का एक ही महीने मे होना राजा के विनाश का कारण होता था, जो कि महाभारत मे भी वर्णित है। भीष्म पर्व (3 32-3) के अनुसार सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण भारत युद्ध का कारण था। साथ ही साथ सूर्य तथा चन्द्र का राहु द्वारा ग्रसित होने का परिणाम अर्जुन तथा सैन्धव के मध्य युद्ध के रूप मे वर्णित है। (अश्वमेधिकपर्व 77 15 Also cf उद्योग पर्व 143 11)। धूल भरी आधियो का होना, भारी ओस, (हिमपात) भूकम्प, उल्कापात रगबिरगे बादल तथा अन्य अद्‌भुत घटनाओ का होना एक सप्ताह के अन्दर ग्रहण के अशुभ परिणाम समझा जाता था जबकि स्पष्ट वर्षा फसलो की समृद्धि के रूप मे समझी जाती थी। (V82 6)।

मगल बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि - इन पाचो ग्रहो की गति भी इसी प्रकार के परिणाम की द्योतक थी। ऐसी मान्यता थी कि ग्रसित बुद्ध स्वतन्त्र होकर सूर्य से दृष्टिगोचर होता है तो शहर पर आक्रमण होता है। अन्य विश्वासो के अनुसार बुध का

13- The story under reference may be briefly summariesed as follows-Being angery at the untively request of simhika for a son, kasyapa gave her a dreadful son who come to be known as Rahu, Inmediately after his birth, he fought a battle in which he was defeated by Aditis sons Enraged ———————edipse the two luminarics and this indicate good and bad thing for the world , cf parasara cited by utpala on V 2

पश्चिम मे दिखायी देना चढाई करने वाली सेना का शहर मे आधिपत्य होना दर्शाता था। जबकि बृहस्पति का एक वर्ष मे तारा मडलो से होकर गुजरना अच्छे और मिले जुले परिणाम प्रकट करता था। इससे अधिक तारो से होकर गुजरना फसलो के विनाश का कारण था। सूर्यास्त से पहले शुक्र का दिखायी देना भय अकाल तथा बीमारी का कारण माना जाता था। जबकि दिन क मध्य मे इसका चन्द्रमा के साथ देखा जाना शहर तथा राजा की सेना मे मतभेद का कारण माना जाता था। शनि नक्षत्र जो स्थित हो, वह विभिनन देशो, लोगो, व्यवसाय तथा लोक समुदाय के लिए सकट लाने वाला माना जाता था (X 1-18)। एक समय मे विशाखा मे ब्रहस्पति अथवा दोनो का एक ही तारामडलो मे होना सकट के रूप मे समझा जाता था (X 19)।

केतु- केतु अथवा पुच्छल तारा को आग के सादृश्य वर्णित किया गया है किन्तु वास्तव मे वहा कोई अग्नि नही है। केवल जुगनू या हीरे जवाहरात आदि है जो कि अग्नि के सदृश दिखायी पडते है। (XI 3) केतु के प्रकट होने तथा छिपने की गणित द्वारा गणना नही की जा सकती। तीन प्रकार के केतु का वर्णन मिलता है, जो कि स्वर्गीय, वायुमडल सम्बन्धी तथा लौकिक है। (XI 2) ।[14] विभिन्न विशेषज्ञो द्वारा केतु की सख्या 101 अथवा 1000 मानी गयी है। नारद इसे एक ही मानते है, जो अनेक रूप तथा आकार मे प्रतीत होता है। वायुमडलीय पुच्छल तारे ध्वज के डडे, आयुध, गृह घोडे तथा हाथियो की आकृति मे तथा जो नक्षत्र के रूप मे वह स्वर्गीय तथा जो इनसे अलग थे। वे लौकिक माने जाते थे (XI 4) केतु को अच्छा तथा बुरा प्रभाव इसके उदय तथा अस्त के द्वारा निश्चित किया जाता था लोगो की यह मान्यता थी कि केतु का प्रभाव इसके दिखायी पडने के तीन सप्ताह बाद से शुरू होता था। केतु छोटा, स्पष्ट चमकदार, सीधा, सफेद वर्षा के बाद थोडे समय के लिये दिखायी दे वह

14- For the enumeration of 1000 ketus see XI 10-28

शुभ माना जाता था, जबकि इसके विपरीत दिखायी देने वाले को धूमकेतु कहते थे तथा वह अशुभ समझा जाता था, विशेष तौर पर जब यह इन्द्रधनुष के सादृश्य हो इसी तरह केतु जिन्हे 'अस्थिकेतु' (XI 30) कपालकेतु (XI 31) रौद्र (XI 32) कालकेतु (XI33 36) श्वेतकेतु (XI 39) रश्मिकेतु (XI 40) तथा समवर्त (XI 51 2) कहा जाता था, बुरे परिणाम वाले माने जाते थे। जिन्हे कुमुद (XI 43) मणिकेतु (XI144 5) फलकेतु (XI46) पदमकेतु (XI 49) तथा अवर्त (XI 50) कहा जाता था, वह समृद्धिशाली होते थे। वामकेतु ध्रुवकेतु का मिश्रित प्रभाव की मान्यता थी अशुभ केतु हल्के तथा बहुत से तारो का स्पर्श करने वाले विभिन्न देशो के राजा का विनाश के कारण समझे जाते थे।

कैनोपस (अगस्त्य) - यदि भद्दा, धुयेयुक्त भूरा, छोटा, किसी धूमकेतु अथवा पुच्छल तारे द्वार तोडा हुआ हो तो वह सूखा, भय अकाल, युद्ध तथा महामारी आदि का कारण होता है ऐसा विश्वास था (XII 21,19)। जबकि जो सोने अथवा चादी के समान हो वह इसके विपरीत परिणाम देता है (XI 20)। फसलो की उत्पत्ति तथा मूल्यो मे उतार चढाव मे ज्योतिषीय तथ्यो पर निर्भर होते है ऐसा माना जाता था।[15]

अच्छे तथा बुरे परिणाम ग्रहो की आपसी टकराहट, चन्द्रमा का दूसरे ग्रहो से योग तथा विभिन्न ग्रहो की वर्ष के ऊपर अध्यक्षता के कारण होती थी। (Chs XVII XX)

सन्ध्या - सूर्य के आधे अस्त होने के समय के बीच को तथा धुधले तारो का परिलक्षित होने का समय, तथा सूर्य के उदय होने के मध्य अस्पष्ट तारो की झलक को सन्ध्या कहा जाता था। इसका अच्छा तथा बुरा प्रभाव पक्षियो तथा जगली जानवरो की गति, हवा, सूर्य तथा चन्द्रमा के चारो तरफ का आभामडल, पेड के

15- Supra Ch V section 4

आकार के बादलो तथा इन्द्रधनुष से निश्चित किये जाते थे। इस प्रकार जगली जानवर का जोर से लगातार भयातुर होकर सन्ध्या समय चिल्लाना गाव के विनाश का सूचक था। पक्षियो का सूर्य की ओर मुह करके चिल्लाना देश के विनाश का सूचक था।[16] दड का मध्य मे दिखना राजा तथा चारो वर्ण के विपक्ष मे माना जाता था। वृक्ष के आकार के बादलो का अचानक अदृश्य होना राजा की मृत्यु की भविष्यवाणी जबकि उसी तरह छोटा वृक्ष युवराज तथा मन्त्री की मृत्यु की भविष्यवाणी करता था (XXX 19)[17]। दिग्दाह का दावानल, भूकम्प धूमकेतु, सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणो का आभामडल, इन्द्रधनुष, गन्धर्व नगर प्रतिसूर्य (Mock-sun) आदि भी सामरिक जीवन मे विभिन्न तरीको से अपना प्रभाव डालते थे (Chs 31 38)।

भूकम्प - भूकम्प के सम्बन्ध मे लोगो का विश्वास था कि वह समुद्र मे रहने वाले विशाल जल–जन्तुओ की गति के कारण पृथ्वी का भार उठाने से थके हाथियो की श्वास द्वारा, वायुमडलीय हवा के कारण होते थे। इसके अतिरिक्त अन्य मान्यताये भी थी।

उल्का अथवा धूमकेतु के सम्बन्ध मे मान्यता थी कि वह स्वर्गीय सुख का आनन्द लेने के पश्चात लोगो के रूप मे नीचे गिरते है।

उत्पात[18]- यह माना जाता था कि मनुष्य के दुश्कर्म के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक व्यवधान होते थे (XLV1), जो कि तीन प्रकार स्वर्गीय, वायुमडलीय लौकिक के होते थे। मनुष्य के गलत कर्म के परिणाम स्वरूप देवताओ का अप्रसन्न होना इन उत्पात (UTPATAS) का कारण माना जाता। राजा का यह कर्तव्य था किन दुष्प्रभावी को रोकने के लिये शान्ति (Santis) कराये (XLV3)।

16- The collection of the sun beames clouds and wind assuming the form of a staff was called danda (XXX.16)

17- See also XXX 23, 25, 27-9, 30 for the time of these effect, See XXX 31

अग विद्या - शारीरिक अगो की गति के अनुसार शकुन बताने को अग विद्या या विज्ञान कहते थे। यह अत्यन्त प्राचीन है। पूर्वकालीन बौद्ध ब्राह्मण तथा जैन साहित्यो मे इसका वर्णन है। इस विज्ञान की प्रसिद्धि के सम्बन्ध मे वराहमिहिर का कथन है जो इस विद्या मे निपुण होता था वह राजा तथा लोगो द्वारा सदैव सम्मानीय होता था (L 44)। शकुन बताने के अच्छे तथा बुरे परिणाम के लिये शकुन वक्ता को स्थान, दिशा, अगो के गति के सम्बन्ध मे काफी पूछ ताछ करनी पडती थी। इस पूछताछ के लिये उचित समय तथा दिशा तथा स्थान का चयन बहुत ध्यान से करना पडता था। इस उद्देश्य के लिये बाग या जगल जो कि फूलो, फलो तथा छायादार वृक्षो से घिरा हो, ब्राह्मण तथा साधुओ की कुटिया तथा स्वच्छ जल का तालाब हो, उचित समझा जाता था (L 2for an unsuitably place see L 3 5) शकुन बताने के उद्देश्य से अगो को पुल्लिग, स्त्रीलिग तथा नपुसक लिग मे विभक्त किया जाता था। अन्य अच्छे तथा बुरे प्रभाव, मुहॅसो की स्थिति, व्रण, तिलक, मस्से (Masaka) शुभ चिन्ह तथा शरीर के विभिन्न भागो के बालो के घेरे (avarta) द्वारा भी माने जाते थे ऐसी जनमान्यता थी।[19]

पुरूष तथा स्त्रियों के चिन्ह + कुछ विशेष लोग पुरूष तथा स्त्रियो के चिन्ह के आध ाार पर भूत तथा भविष्य बताते थे उनका समाज मे बडा सम्मान था। किसी व्यक्ति, ऊॅचाई, वजन, सार, रग, आवाज, प्रवृत्ति, साहस शरीर के अग तथा छाया का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके भविष्य बताते थे (LXVII 1)[20]। इन लोगो को सामुद्रविड तथा लक्षणाजन (LXVII 89) कहा जाता था। यदि किसी मनुष्य के अगूठे के मध्य मे जौ का चिन्ह हो तो वह समृद्धिशाली होगा ऐसा माना जाता था। अगूठे के जड से

18- cf Angavijja, ch 53

19- Ch 51 on pitaker Laksana is declared by utpala to be spurious Atah param = api kealtpitaka-laksanami pathani, tad= apy = asmabhir = vyakhyayate but varahmihira mentions it as one opf the topics deatt with in a samhita (ch II, p 73)

20- cf Angavijja, ch 37

निकली चौडी रेखा पुत्र तथा पुत्रिया सूचित करती है। कलाई से निकली हुयी ती रेखाये जो की पहली ऊगली तक पहुॅचती है, 100 वर्ष की आयु की द्योतक थी इसके विपरीत छोटी रेखा कम आयु की। जनमान्यता के अनुसार यही तीन रेखाये हथेली तक पहुॅचती है तो वह राजा बनाती है। स्त्री के हाथ की रेखा जो कि कलाई से प्रारम्भ होकर बीच की ऊॅगली तक पहुॅचती है वह राजसी ठाट–बाट की प्रतीक है। इसी तरह की अन्य मान्यताए भी प्रचलित थी।

पॉच महापुरूष - वराहमिहिर ने वृहत्सहिता के 68 अध्याय मे पॉच महापुरूषो (पच पुरूष प्रशस्त) के चिन्हो का वर्णन किया है। ऐसा विश्वास था कि पॉच महापुरूष जिन्हे हस, सश, रूचक भद्र तथा मालव्य कहा जाता था, का जन्म ब्रहस्पति, शनि मगल बुद्ध तथा शुक्र की सुदृढ स्थिति मे तथा लग्न से चौथे 7 सातवे तथा दसवे ग्रह मे थे तब हुआ था[21]। इन महापुरूष के सम्बन्ध मे कहा जाता था, कि इन्होने सूर्य से शक्ति, शारीरिक सुन्दरता तथा मानसिक शक्ति चन्द्रमा से तथा चारित्रिक विशेषताये गृह नक्षत्रो से प्राप्त की है। ब्राह्मण परम्परा के अनुसार यह पाच महापुरूष राजा बनते थे।

वे मनुष्य जो मिश्रित चारित्रिक गुणो वाले होते थे, तथा राजा नही बन सकते थे, सख्या मे पॉच होते थे। जो कि वामनक, जाघन्य, कुब्ज, माण्डलक तथा सन्सिन। वे क्रमश भद्र, माण्डलक हस रूचक तथा सश के सहायक होते थे। ऐसा माना जाता था कि नये वस्त्र धारण करना एक या अन्य नक्षत्र मे शुभ और अशुभ परिणाम प्रकट करता था। यह कहा जाता था कि चारा कोनो वाले वस्त्रो को

21- तराग्रहैर्बलयुतै स्वक्षेत्रस्वोच्च्यत्रै चतुष्टयगै ।
पचपुरूषा प्रशान्ता जायन्ते तानह वक्ष्ये।।
जीवेन भवति हस सौरेण शश कुजेन रूचकश्च।
भद्रो बुधेन बलिना मालव्यो दैत्यपूज्येन।।
LX III 1-2 cf Raghuvamısa, III 13

भगवान, दो चौडे किनारे वाले को मनुष्य तथा शेष बचे हुये वस्त्र दैत्य धारण करते थे (LXXX 9)। जब कपडा गन्दा, कीचडयुक्त, कटा, जला या फटा हो अथवा दैत्यो के भाग का हो तो पहनने वाले की बीमारी या मृत्यु की भविष्यवाणी करता है। इस मान्यता की प्रसिद्धि तथ्यो द्वारा जैनो के 'उत्तराध्यायन सूत्र' मे भी वर्णित है।

विशेष नक्षत्र, तिथि, करन तथा साप्ताहिक दिन भी शुभ माने जाते थे तथा विभिन्न कार्यों के लिये निर्धारित किये जाते थे।

शकुन- मनुष्य के जीवन मे होने वाली भविष्य की घटनाओ का पक्षियो तथा जानवरो की गति को देखकर अनुमान लगाया जाता था, विशेषतया यात्रा के दौरान। सन्त तथा दिप्त शकुन क्रमश अच्छे या बुरे भविष्य के द्योतक थे। जब दो शकुन एक साथ देखे जाते थे तो एक वह जो श्रेष्ठ गति, शक्ति, स्थिति जोविल मूड (Jovial mood) साहसी और आवाज तथा स्वय की दृढ स्थिति मे हो, दूसरे की अपेक्षा शक्तिशाली होता था। शकुन के सम्बन्ध मे यात्री का बाये तथा दाये, आगे तथा पीछे, दिशा मे जाने का वर्णन भी किया गया है। पक्षी का शान्त दिशा की ओर चिल्लाना किसी मनुष्य के पहुॅचने या लाभ की भविष्यवाणी करता था। जबकि आधी की दिशा मे चिल्लाना अनचाहे व्यक्ति से मिलना या दुख की सूचना देता था। इससे सम्बन्धित अत्यधिक विस्तृत विवरण मिलता है। भारतीय जीवन के विख्यात लक्षणो मे युगो के दौरान विश्वास की दृढता, भविष्यवाणी, शकुन आदि अत्यन्त प्रचलित रूप मे थे। उदाहरणत कुत्ते का सूखी हड्डी के टुकडे को मुह मे लेकर अथवा सूर्योन्मुख होकर भौकना अथवा रात्रि के दौरान घर मे प्रवेश करना भविष्यवणी करता था क्षति अभी है। ठीक इसी प्रकार छीकना भी अशुभ माना जाता था (XCIV60)

योगयात्रा के अनुसार शीशा, दूध दही, शहद, घी, झडा सोना कोच शख सफेद, बैल फल, अक्षत, गन्ना, खाद्य पदार्थ, कीमती पत्थर यात्रा के दौरान शुभ माने जाते थे।

अग्नि लक्षण–अग्नि पूजा मे पूजारी सामवतसार[22] से सम्बन्धित होता था। पहले अग्नि मे आहुति दी जाती थी तत्पश्चात शकुन पर विचार किया जाता था। अग्नि जो कि सुगन्धित, चमकदार मोटी ज्वालो से युक्त तथा शुभ पदार्थो की आकृति जैसे पताका, घोडा, कमल, फूल रथ की आवाज, समुद्र, बादल, हाथी, तथा महक जैसे हाथी का मद (XLII 31-33-6), पृथ्वी, कमल तथा चावल घी अथवा शहद वाली शुभ मानी जाती थी। यह कहा जाता था कि अग्नि पूजा के अन्त मे अग्नि अपने चारो तरफ प्रभा युक्त चमकदार तथा इसकी लपटे दायी ओर मुडती है तो वह राजा की विषय की सूचना देता है। (XLII 32)

22- XXII 30 XLIII 13, XLVII 78, 80

अध्याय 8

उपसंहार

उपसंहार

गत अध्यायो मे किए गये विवेचन के आधार पर ज्योतिष ग्रन्थो का इतिहास लेखन मे योगदान स्वय सिद्ध है। जैसा कि पूर्व मे कहा गया है ज्योतिष का सम्बनध सीधे जीवन से है क्योकि कोई भी ज्योतिषी यदि कोई भविष्यवाणी करता है और वह जीवन मे घटित नही होती तो उस ज्योतिषी का सम्मान भी नही रहता। अत प्रत्येक ज्योतिषी का यही प्रयास रहता है कि वह घटित होने वाली भविष्वाणिया करे। अत ज्योतिष ग्रन्थो मे फलित ज्योतिष के सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते समय तत्कालीन सामाजिक जीवन के विविध आयामो की झलक स्वमेव समाविष्ट हो गयी। ज्योतिष के ग्रन्थो का सीधा इतिहास से कोई सम्बन्ध बता पाना बहुत सरल कार्य नही प्रतीत होता। परन्तु इस विषय के शोध कार्य के माध्यम से मेरा यह प्रयास रहा है कि ज्योतिष मे जहा कही भी समाजिक परितर्वन के सकेत हो एकत्र कर इस क्षेत्र के विभिन्न दिशाओ की स्थापना एव अध्ययन किया जाये।

इस दृष्टिकोण से इतिहास लेखन के ज्योतिषग्रन्थो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रस्तुत शोध कार्य मे सामाजिक परिवर्तन के समस्त आयामो पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

हमे प्रचीन इतिहास की जानकारी साहित्य, सिक्के, शिलालेखो, अभिलेखो तथा ज्योतिष ग्रन्थो के आधार पर होती है। चूकि ज्योतिष ग्रन्थो की प्रमाणिकता स्वय सिद्ध है तथा यह पूर्णत वैज्ञानिक है। इसमे ग्रन्थकारो के स्वय के पूर्वाग्रहो विचारो एव निष्ठाओ का कोई स्थान नही होता है। जैसा कि मध्यकाल एव आधुतनिक काल के

लेखको मे देखने को मिलता है। किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित न होने के कारण एव देश काल एव परिस्थिति से स्वय को अलग रखने के कारण इनसे प्राप्त ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्य तथा तटस्थ होते है। अत इस शोध प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारत मे ज्योतिष ग्रन्थो के आधार पर होने वाले सामाजिक परिवर्तनो का पक्षपात रहित होकर विषयवस्तु को नवीन एव सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को एक नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसका अवलोकन करके यह कहा जा सकता है कि समाज अर्थ धर्म कला एव साहित्य के क्षेत्रो का इन ग्रन्थो मे विस्तृत विवरण मिलता है तथ प्राचीन भारत मे हुये सामाजिक परिवर्तनो का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ज्योतिष ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। प्रथम अध्याय के रूप मे प्रस्तावना को प्रस्तुत किया गया है, जिसके अन्तर्गत इतिहास लेखन की पुनरावृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। इतिहास की कोई भी उपलब्धि अन्तिम नही होती। कोई भी इतिहासकार यह नही कह सकता कि उसका कार्य अन्तिम है। इसके अतिरिक्त इसी अध्याय मे शोध की आवश्यकता पर सक्षिप्त वर्णन किया गया है तथा शोध विषय के चयन पर भी अत्यन्त सक्षिप्त रूप से विवरण प्रस्तुत किया है।

इसमे दूसरे अध्याय के रूप मे सामाजिक परिवर्तनो का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत चारो वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र वर्ण सकर एव मिश्रित जातियो का विशद विवेचन किया गया है। ज्योतिष ग्रन्थ के अनुसार वर्षा ऋतु के सूर्य की सफेद लाल पीली एव काली किरणो का क्रमश ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एव शूद का विनाश करने वाली मानी गयी है। सूर्य एव चन्द्र ग्रहण के समय किन जाातियो को कष्ट होता है इन सबका विवरण प्रस्तुत किया गया है। भारतीय समाज को सुसस्कृत

एव सुव्यस्थित करने के लिये आश्रम व्यवस्था का निर्माण हुआ। तत्कालीन समाज मे स्त्रियो की दशा का विस्तार से वर्णन किया गया है, जिसके अन्तर्गत विवाह, सती प्रथा, बहुविवाह आदि पर भी दृष्टि डाली गयी है। जनजीवन मे प्रचलित खान–पान, वस्त्र एव आभूषण आदि का भी सक्षिप्त वर्णन इसमे किया गया है। इस समय तक चिकित्सा विज्ञान उन्नत अवस्था मे था बृहत्सहिता के आधार पर इस सम्बन्ध मे विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय के रूप मे आर्थिक इतिहास का वर्णन किया गया है। समाज का उत्कर्ष मनुष्य के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता समुन्नति एव सुख सुविधा पर निर्भर करता है। आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि, पशुपालन, कला, व्यापार, विदेशी व्यापार, वाणिज्य, क्षेत्रीय उत्पाद्य माणिक्य उद्योगो पर होता है। अथर्वेद मे पृथ्वीवन्य को कृषि का आरम्भ करने वाला कहा गया है। सिन्धु सभ्यता के विभिन्न उपकरणो से इस तथ्य के प्रमाण मिलते है जिस तरह धीरे–धीरे गृह निर्माण, बर्तन बनाने की कला एव औजारो के निर्माण मे विकास हुआ। आर्थिक क्षेत्र के सभी वर्गो का ज्योतिष ग्रन्थ एव अभिलेखो तथा उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के रूप मे धार्मिक परिवर्तनो को उल्लेख किया गया है। वराहमिहिर के ग्रन्थो से हमे तत्ककालीन धार्मिक जीवन की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। यह समय प्रगतिवादी धार्मिक विचारधाराओ का था यद्यपि नास्तिक लोगो ने जैसे बौद्ध और जैन ने समाज के कुछ वर्गो को अपने पक्ष मे ले लिया था, फिर भी ब्राह्मणवाद उत्थान पर था वैदिक देवताओ मे इन्द्र वरूण एव अग्नि का स्थान विष्णु और शिव ने ले लिया था। इन्द्र अपने विभिन्न नामो से जाने जाते थे। ऋग्वेद की 250

ग्रन्थो को इनकी गाथा का वर्णन है। साहित्य इनका स्थान भक्तिकाल तक रहा। ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड का रचयिता, प्रथम मुनि एव मानव जाति का पितामह माना है। ब्रह्मदण्ड, गणक, चर्तुसार नामक पुच्छल तारे इनके पुत्र कहे गये है। विलक्षणता से युक्त न्याय की देवी को इनकी पुत्री कहा गया है। इन्हे देवताओ का प्रमुख माना जाता था तथा इन्द्र को इनकी आज्ञा माननी पडती थी। वराहमिहिर को त्रिदेव की अभिधारणा का ज्ञान था। ये ब्रह्मा विष्णु एव शिव के रूप मे थे परन्तु महत्वत्ता मे विष्णु एव शिव इनके अग्रणी थे। विष्णु को अद्‌भुत शक्ति एव प्रतापी माना। वराहमिहिर ने इन्हे नारायण, हरि, केशव, माधव, मधुसूदन आदि नामो की सज्ञा दी है। विष्णु के विभिन्न अवतारो मे वराह अवतार सबसे प्रसिद्ध था। शिव जिनको रूद्र, हर, शकर शम्भू ईशान आदि नामो से वर्णित किया गया है। उत्पल द्वारा इनके अद्धगौरीश्वर स्वरूप का भी वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त पाशुपत, कापालिक, सूर्य, अग्नि, यम, कुबेर आदि अन्य देवताओ के विषय मे भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है उत्तर वैदिक कालीन देवताओ मे बलदेव की प्रतिमा का वर्णन मिलता है। वराहमिहिर के अनुसार यह एक हाथ मे हल धारण किये हुये, नशीली ऑखो वाले, तथा एक कान मे कुण्डल धारण किये है। प्रद्युम्न की पहचान कामदेव से की है। शिव देवता के परिवार के रूप मे गणेश स्कन्द आदि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त देवियो की शक्ति के रूप मे पूजा की जाती थी। इनकी सख्या वराहमिहिर ने सात बतायी है तथा मथुरा सग्राहालय मे सुरक्षित इन सप्तमातृ का उल्लेख उनके चिन्ह एव सवारी के साथ किया गया है। एक अन्य देवी एकनामसा का भी वर्णन मिलता है जिन्हे यशोदा की पुत्री बताया गया है। अन्य देवताओ का भी विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। नव ग्रहो की बिना किसी विशेष सम्प्रदाय के रूप मे पूजा की जाती थी। ग्रहो की गति के सम्बन्ध मे विश्वास था कि इनकी गति सामान्य रूप से सासारिक घटनाओ मे एव विशेष रूप से मानव जीवन पर

प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त पक्षियो एव नागपूजा का भी प्रचलन था।

राजनैतिक सगठन को पाचवे अध्याय के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध मे बृहत्सहिता से विस्तृत जानकारी नही प्राप्त होती है। अन्य स्रोतो से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है राजनैतिक सगठन शासन का महत्वपूर्ण अग था। शासन के इस विज्ञान को 'दण्डनीति' कहा गया। इसमे निपुण विदो को 'नीतिवृन्ति' एव 'नीतिजन' के नाम से सन्दर्भित किया गया । शासन की राजतन्त्रात्मक प्रणाली के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। यह कहा जा सकता है कि लोकतत्रवाद पर राजतन्त्रात्मक प्रणाली का प्रभाव था। राजा राज्य की आत्मा होता था। 'इन्द्रमहा' 'पुष्य–स्नान' एव 'निराजन' तथा पट्टा–लक्षण मुख्य रूप से राजा से सम्बन्धित थे। राजा के सम्बन्ध मे यह महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है कि प्रजा रूपी वृक्ष की समृद्धि, पोषण तथा शक्ति का मूल राजा ही है। मण्डल सिद्धान्त राजा की विजय की इच्छा पर आधारित था। राजा के अतिरिक्त रानी का भी महत्वपूर्ण स्थान होता था। वाकाटक रानी प्रभावती गुप्ता का उल्लेख कई अभिलेखो मे मिलता है। राजा की कार्य मे सहायता के लिये मन्त्रि परिषद के अतिरिक्त अन्य विभागो मे भी अधिकारियो की नियुक्ति की जाती थी। युद्ध की महत्वता के कारण सेना के उच्च अधिकारी सेनापाति एव दण्डनायक का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। सैन्य अभियानो के लिये वर्षा ऋतु के बाद का समय उचित माना गया है। इसी प्रकार वराहमिहिर ने सैन्य अभियानो के समय होने वाली शुभ एव अशुभ घटनाओ का जो वर्णन किया है उसका भी विवरण प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य एव कला को छठे अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है। वराहमिहिर ने खगोल शास्त्र एव ज्योतिष शास्त्र को आगम पर आधारित विज्ञान माना है। साहित्य

मे ज्योतिष शास्त्र का विवरण प्रस्तुत किया गया है। ज्योतिष विज्ञान को तीन स्कन्धो मे विभाजित किया गया है। इसकी सर्वप्रथम शाखा को तन्त्र कहा गया जिसमे सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रो की गणना की गयी है। दूसरी शाखा को 'होरा' कहा गया जिसमे कुडली अथवा कुडली बनाने का वर्णन है। अन्त मे प्राकृतिक ज्योतिष जिसे अग विनिश्चय अथवा शाखा कहा गया, जिसमे सम्पूर्ण ज्योतिष के पाठयक्रमो का वर्णन किया गया है तथा इसके सहिता नाम दिया गया। भाष्यकारो ने सहिता को फल ग्रन्थ के रूप मे वर्णित किया है। वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित पचसिद्धान्तो का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। कुण्डली के अन्तर्गत राशियो का बलवान और निर्बल होना, होरा चक्र, द्रेष्काण चक्र, नवमाश, द्वादशाश सात ग्रहो का स्थान उसके अनुसार उनकी शक्ति का वर्णन जन्म का समय, अकस्मात मृत्यु जीवन की अवधि और इसके परिवर्तनो का वर्णन है। वर्तमान मे वराहमिहिर के प्रचलित ग्रथ जातक और विवाहपटल भी उपलब्ध है, जो 'होरा' के अन्तर्गत आते है। उत्पल के अनुसार लग्न निकालने की प्रक्रिया द्वारा प्रतिस्थापना, सस्कार, यात्रा, विवाह और इस तरह के अन्य कार्यो मे शुभ और अशुभ फल देने वाले गृहो तथा नक्षत्रो की स्थिति का वर्णन 'होरा' मे किया गया है। इसके अतिरिक्त वृहत्सहिता मे वर्णित लेखको एव उनके कार्यो को भी विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त दर्शन शास्त्र के माध्यम पृथ्वी की उत्पत्ति एव सूर्य चन्द्रमा के सम्बन्ध मे जनकारी प्रस्तुत की गयी है। धर्म, हस्त विज्ञान दशमलव माप आदि का भी सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। वराहमिहिर पदो की रचना मे अत्यन्त निपुण थे उन्होने 65 छन्दो को बृहत्सहिता मे प्रयुक्त किया है। जिनके नामो का उल्लेख भी इस अध्याय मे किया गया है। कला का वर्णन भी इसी अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। भारतीय कला की परम्परा वैविध्यपूर्ण तथा अत्यन्त प्राचीन है। कला द्वारा मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है। वास्तु की नही। इसका प्रारम्भ सिन्धु

घाटी से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व से होता है। सिन्धु घाटी से लेकर नन्द वश के उदय के पूर्व 326 ई० पू० तक का समय भारतीय कला का आदि युग था। इसके पश्चात मौर्य कला से लेकर हर्ष का समय इस काल का मध्ययुग था। हर्ष के बाद भारतीय कला का चरमयुग आता है। गुप्तकाल मे भवन निर्माण कला अपनी उन्नत अवस्था मे पहुँच चुकी थी। कला के अन्तर्गत वास्तु का वर्णन है, जिसका अर्थगृह होता है। इसमे विभिन्न वर्णो के आधार पर गृह का वर्गीकरण किया गया है और वर्णो के आधार पर ही इनकी सीमा निर्धारित की गयी है। इसके अतिरिक्त, स्तम्भ, चातुष्शालका, सर्वतोभद्र आदि का विस्तृत विवरण किया गया है। भवन निर्माण के लिये उपयुक्त भूमि का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। वज्रलेप, वज्रतल एव वज्रसघात के अन्तर्गत भवन निर्माण की वस्तुओ मे पक्की ईटे, लकडी, पत्थर इत्यादि का उल्लेख है। इस अध्याय मे मन्दिर का भी वर्णन विशद रूप से किया गया है। वराहमिहिर ने 20 तरह के प्रासादो का उल्लेख किया है। इसी अध्याय के अन्तर्गत शिल्प, सगीत तथा चित्रकला का भी विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। अनेक साक्ष्यो तथा ज्योतिषीय ग्रन्थो से भारतीय कला का घूडान्त निर्दशन मिलता है इसका प्रभाव अधिकाश देशो की कला मे भी दृष्टिगोचर होता है।

ज्योतिष ग्रन्थो मे वर्णित तत्कालीन दैनिक जीवन को सातवे अध्याय के रूप मे वर्णित किया गया है। बृहत्सहिता मे प्राकृतिक ज्योतिष शास्त्र पर विस्तृत वर्णन किया गया। प्राचीन काल मे लोगो को ज्योतिष शास्त्र पर अत्यधिक विश्वास था। वैदिक सभ्यता 'शकुन' भविष्यवाणी तथा भविष्य बताने पर विश्वास रखती थी। छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार दैव तथा नक्षत्रविद्या का अर्थ प्राकृतिक व्यवधान तथा ज्योतिष से सम्बन्धित माना गया है। इसके अन्तर्गत 'सामवातसार' की महत्वता एव योग्यता का वर्णन किया गया है। ज्योतिष का लोगो के ऊपर अत्यन्त गहरा विश्वास

था। गौतम धर्मशास्त्र, विष्णु धर्मशास्त्र, याज्ञवल्क्व स्मृति आदि राजा को ज्योतिष पर निर्भर रहने की विनती करते है। वराहमिहिर द्वारा वर्णित सूर्य–चन्द्रमा ग्रह तारामडल का ही नही अपितु अगो की गति की व्याख्या शारीरिक चिह्न शकुन आदि का वर्णन भी इसी अध्याय मे विस्तृत रूप से किया गया। अग्नि के लक्षणो मे भी विचार किया गया है।

उपसहार को आठवे अध्याय के रूप मे निरूपित किया गया है। सम्पूर्ण शोध कार्य को अत्यन्त सक्षिप्त रूप से इसमे प्रस्तुत किया गया है। अन्त मे ज्योतिष ग्रन्थो के आधार पर समाज का जो रेखाचित्र उभर कर सामने आता है। उसके आधार पर समय–समय पर समाज के विभिन्न वर्ग जैसे आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था साहित्य कला एव अन्य क्षेत्रो पर इन ग्रन्थो से पूर्व की सामाजिक स्थिति मे स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है एव परिवर्तन की जो प्रक्रिया देखने को मिलती है वह सतत् जारी है।

सम्बन्धित ग्रन्थ

1- ज्योतिषीय ग्रन्थ

वृहद्यात्रा – सम्पादक वी० आर० पण्डित, बम्बई (अप्रकाशित)

बृहज्जातक – सम्पादक सीताराम झा, भट्टोपाल की टीका सहित, बनारस, 1934

– चिदम्बर अय्यर द्वारा अग्रेजी अनुवाद मद्रास, 1885

– ए०एन०एस०द्वारा सस्कृत अनुवाद

वृहत्सहिता – सम्पादक सुधाकर द्विवेदी भट्टोपल की टीका सहित भाग–2, बनारस, 1895-97

– सम्पादक एच० केर्न० कलकत्ता 1865

लघुजातक – हिन्दी अनुवाद, वाराणसी 1958

लघुविवाहपटल – सम्पादक वी० आर० पण्डित, बम्बई

पञ्चसिद्धान्तिका – सम्पादक सुधाकर द्विवेदी सस्कृत टीका सहित, वाराणसी 1889

समाससहिता – अजयमित्र शास्त्री द्वारा पुर्नलिखित

योगयात्रा – सम्पादक जे०एल० शास्त्री, लाहौर, 1944

– सम्पादक वी० आर० पण्डित, बम्बई

इण्डिया एस सीन इन द वृहत्सहिता ऑफ वराहमिहिर – अजय मित्र शास्त्री

ज्योतिशास्त्र

यवन जातक (स्फुजिध्वज)

वृद्धयवन जातक (वराहमिहिर) – व्याख्याकार डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र, भाग 1 – 2

सारावली (कल्याण वर्मा) – सम्पादक डॉ० मुरलीधर चर्तुवेदी हिन्दी व्याख्या सहित

मूल ग्रन्थ

ऋग्वेद – श्रीपाद वर्मा, औधनगर बम्बई, 1940

अर्थशास्त्र – कौटिल्य

याज्ञवल्पय स्मृति – मिताक्षरा पाचवा सस्करण बम्बई 1944

नारदसूक्त

सूत्रास्थान –

अश्वचिकित्सा(नकुल) – अश्ववैधक से उर्द्धत, बी० आई० कलकत्ता 1887

अश्ववैद्यक – बी०आई०कलकत्ता 1887

चन्द्रशेखर(रत्नदीपिका) –

यशास्तिलिका चम्पू –

अग्निपुराण – एम०एन०दत्त द्वारा अनुवादिक भाग 1-2 कलकत्ता 1903-04

शतपथ ब्राह्मण – जे एग्गलिग द्वारा अनुवादित पाच भागो मे एस०बी०ई XII, XXVI, XI III और XLVI

वायु पुराण – राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री द्वारा अनुवादित हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

विष्णु पुराण – मूल ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित गीता प्रेस गोरखपुर

ब्रह्मपुराण

ब्रहद्धर्मपुराण

गौतमधर्मसूत्र – हरदत्त की टीका सहित ए०एस०एस०पूना 1931

मालविकाग्निमित्रम् – बी०एस०एस० द्वितीय सस्करण, बम्बई 1889

राजतरागिणी (कल्हण) – एम०ए० स्टेन द्वारा सम्पादित दिल्ली 1960

बॉधायन धर्मसूत्र – चिन्ना स्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित वाराणसी 1991

धर्मशास्त्र का इतिहास (पी०वी०काणे)

मेधातिथि टीका –

तैतरिय सहिता

शुक्रनीति – बी०के० सरकार द्वारा अग्रेजी द्वारा अग्रेजी अनुवाद द्वितीय सस्करण इलाहाबाद 1923

आपस्तम्ब ग्रह्यसूत्र – सम्पादक टी० गणपतिशास्त्री सहित हरदन्त की टीका, त्रिवेन्द्रम 1923

भविष्य पुराण – वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई 1910

2- संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थ

चरकसहिता (चरक)	–	सम्पादक जे० विद्यासागर द्वितीय सस्करण कलकत्ता 1896
		हिन्दी अनुवाद छठा भाग जामनगर 1949
महाभारत	–	नीलकण्ठ की टीका सहित, पूना 1929-33
मनुस्मृति	–	सम्पादक–जयन्त कृष्ण हरिकृष्ण दूबे, भारतीय विद्या भवनम्
	–	सम्पादक जे० जौली लन्दन, 1887 कुल्लूक की टीका सहित
मत्स्य पुराण	–	राम प्रताप त्रिपाठी, शास्त्री द्वारा अनुवादित ASS, पूना 1907
शुक्रनीतिसार	–	बी०के०सरकार द्वारा अग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, 1890
अमरकोश (अमरसिह)	–	रामाश्रमी की टीका सहित एन०एस०पी० बम्बई 1944
आर्यभट्ट	–	परमदिश्वर की भट्दीपिका टीका सहित, सम्पादक, ए० केर्न, 1874
हर्षचरित (बाण)	–	शकर की व्यवस्था बी०एस०एस० बम्बई 1909
दशकुमार चरित (दण्डी)	–	एन०एस०पी० बम्बई 1951
रघुवश (कालिदास)	–	मल्लिनाथ की टीका सातवा प्रकाशन एन०एस०पी० बम्बई 1929
कामन्दक्यनीतिसार (कामन्दक)	–	सम्पादक आर०एल०मित्रा
कामसूत्र (वात्सायायन)	–	सम्पादक यशोधर जयमगला वाराणसी 1929

शिलालेख

फ्लीट जे० एफ० – इसक्रिप्शन ऑफ द अर्ली गुप्त किग एण्ड देयर सकसेसर, CII, III, कलकत्ता 1888

लूदरर्स एच० – भरहुत इसक्रिप्शन CII, II (ii) 1963

मिराशी वी०वी० – इसक्रिप्शन ऑफ द वाकाटक CII, V, 1963

आधुनिक कार्य

अय्यगर के० वी०आर० – सोशल एण्ड पॉलिटिकल सिस्टम ऑफ मनुस्मृति, लखनऊ 1949

अय्यर वी० जी० – क्रोनोलोजी ऑफ एन्शियन्ट इण्डिया

अल्टेकर ऐ० एस० – पोसिशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन वाराणसी 1956

भण्डारकर आर०जी० – वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम, कलेक्टेड वर्कस Vol IV पूना 1929

चक्रधर एच०सी० – सोशल लाइफ इन एन्शियन्ट इण्डिया, ए स्टडी इन वात्स्यायनास कामसूत्र द्वितीय सस्करण कलकत्ता 1924

शर्मा आर०एस० – एन एर्पोच टू एस्ट्रोलॉजी एण्ड डिवीनेशन इन मेडिवल इण्डिया।

– इण्डियन फ्यूडलिज्म

शर्मा आर०एस०तथा झा डी०एन० – द इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

झा डी०एन० – अर्ली इण्डियन फन्यूडलिस्म

नरपति जयचर्या सवोर्दय – मिलिट्री एस्ट्रोलॉजी ऑफ नरपति

ओम प्रकाश	–	प्राचीन भारत का सामाजिक एव आर्थिक इतिहास चौथा सस्करण
शर्मा राम शरण	–	पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामजिक परिवर्तन, देवराज चानना व्याख्यान माला का प्रथम व्याख्यान 1969
मिश्र जय शकर	–	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, छठा सस्करण
ओझा ए०पी०	–	समाजिक स्तरीकरण
यादव बी०एन०एस०	–	सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नोर्दन इण्डिया
यादव बी०एन०एस०	–	इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस प्रेसिडेन्शियल एड्स बम्बई

3 - जरनलस

- एनलस ऑफ द भण्डारकर ओरयिन्टल रिसर्च इन्स्टीयूट, पूना
- ऐशियाटिक रिसर्चस
- आरक्यूलोजील सर्वे ऑफ इण्डिया, एनवल रिपोर्ट
- आरकिओलॉजीकल सर्वे ऑफ साउथ इण्डिया
- एपिग्राफिया इण्डिका
- इण्यिन कल्चर
- जरनल ऑफ द ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बडौदा
- जनरल ऑफ इण्यिन हिस्ट्री
- जनरलस ऑफ ओरियन्टल रिसर्च, मद्रास
- जनरल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट
- जनरल ऑफ द यूनिवर्सटी ऑफ बम्बई